आत्मकथा
सीमांत गांधी ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां के
क्रान्तिकारी जीवन की रोमांचक कहानी

आत्मकथा

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां

भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के तूफ़ानी दिनों में महात्मा गांधी के अति प्रिय शिष्य और साथी खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां का नाम 'सीमांत गांधी' और 'बादशाह खान' के रूप में देश के कोने-कोने में लोकप्रिय था, और आज भी भारतवासियों के हृदय में उन्हें आदर और श्रद्धा का स्थान प्राप्त है। विभाजन के बाद भारत स्वाधीन हुआ, पाकिस्तान की स्थापना भी हुई, लेकिन बादशाह खान ने जिन आदर्शों और उद्देश्यों के लिए संघर्ष आरम्भ किया था वे आज भी अधूरे ही हैं। हम भारतीयों की सहानुभूति बादशाह खान और उनके उद्देश्यों के साथ है। उनकी इस 'आत्मकथा' के प्रकाशन का एक उद्देश्य यह भी है। हमें गर्व है कि किसी भी भाषा में पहली बार बादशाह खान की आत्मकथा के प्रकाशन का सौभाग्य हिन्द पॉकेट बुक्स को प्राप्त हुआ है। यह एक बलिदानी महापुरुष के क्रांतिकारी जीवन की कहानी है जोकि ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।
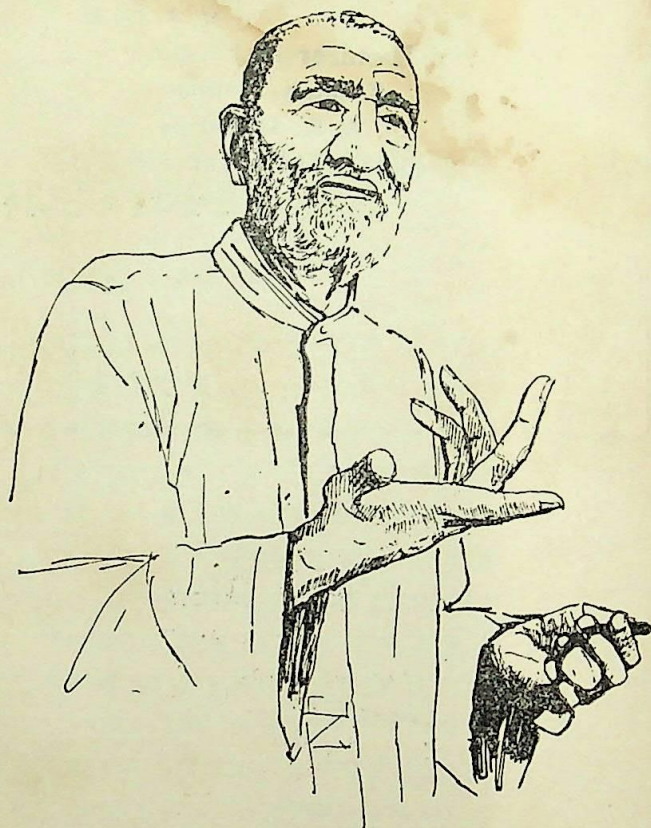
हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लि०
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली–३२

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां

आत्मकथा

सीमांत गांधी बादशाह ख़ान की
रोमांचक जीवन-कहानी

परिचय

खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां— जिन्हें पख्तून प्यार से 'बाचाखान' कहते हैं और भारत के जनसाधारण 'सीमांत गांधी', 'सरहदी गांधी' और 'बादशाह खान' के नाम से याद करते हैं और जो संसार की नज़रों में महान सत्यनिष्ठ योद्धा हैं, गांधीजी के सच्चे अनुयायी हैं, अहिंसा-ध्वज के इतने महान उत्थापक हैं—ऐसे अडिग अहिंसाव्रती हैं कि इनका नाम लेकर शताब्दियों तक विश्व की शान्तिप्रिय जातियां और कोटि-कोटि जन-मानव गौरव से सिर ऊंचा रखेंगे। बाचाखान—जिन्होंने अटक पार युद्धशाली पख्तूनों के हाथ से बन्दूकें फिकवा दीं और उनके हृदय में खुदाई खिदमतगारी—मानव-मात्र की सेवा का भाव जगा दिया।

बेचारे पख्तून भारत उपमहाद्वीप के बटवारे की भेंट होकर तबाह हो गए। लाठी, गोली और कारावास उनके भाग्य-ललाट पर लिख दिए गए। बाचाखान और हज़ारों पख्तून फिर जेल की संकीर्ण काल-कोठरियों में ठूंस दिए गए। पाकिस्तान की इस्लामी सरकार नें उनकी देश-भक्ति और जाति-सेवा के लिए उन्हें वही पुरस्कार दिया! बाचाखान को पन्द्रह वर्ष तक जेलों में रखा। आखिर एक दिन कारावासज़नित अपनी रुग्ण अवस्था के कारण पाकिस्तानी भेड़ियों के चंगुल से मुक्त होकर बाचाखान काबुल (अफ़ग़ानिस्तान) पहुंच गए। उन्हीं दिनों बाचाखान के एक सुहृदय साथी श्री कुंवरभानु नारंग गांधी-स्मारक निधि की ओर से काबुल गए। वे तीस दिन तक बाचाखान की संगति में रहे और उनकी इच्छा को दृष्टिगत करके बाचाखान ने अपने जीवन की संक्षिप्त कहानी पश्तू भाषा में लिखवा दी। यह कहानी एक शब्दचित्र है सीमा प्रान्त के राजनीतिक जीवन का और भारत के स्वाधीनता संग्राम का।

मैंने बचाखान को बहुत ही निकट से देखा है। ढाई वर्ष तक उनके चरणों में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और वह भी जेल के वातावरण में। मैंने इक्कीस वर्ष के पश्चात् फिर एक बार उन व्यक्तित्व-श्रेष्ठ को जलालाबाद में देखा। पिछले दिनों गांधीशताब्दी कमेटी के तत्त्वाव-

धान में नौ सदस्यों का एक शिष्टमंडल इस उद्देश्य के लिए बाचाखान से मिला कि गांधीजी की जन्म शताब्दी के लिए बाचाखान के पावन और अमूल्य विचार रिकार्ड कर लिए जाएं। छः दिन तक नियमित रूप से गांधीजी के संस्मरण और बाचाखान के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के विवरण उनके अपने स्वर और भाषा में रिकार्ड किए गए। यह कहानी (जो पाठकों के लिए प्रस्तुत की जा रही है) रिकार्डिंग के समय बहुत सहायक सिद्ध हुई।

निस्संदेह आज वे अफ़ग़ानिस्तान में बैठे हुए हैं, लेकिन उन्हें एक पल को चैन नहीं। वे सीमा प्रान्त के पठानों और पूरी पश्तून जाति की भलाई और स्वाधीनता के लिए संघर्षशील हैं। जहां उनके हृदय व मस्तिष्क में पश्तून बसे हुए हैं, वहां आज़ाद भारत भी उनकी आंखों में समाया हुआ है। वे भारत को कोई पराया देश नहीं समझते, बल्कि अपना ही देश और अपनी ही जाति समझकर इसकी ओर शुभ कामना और आशा की निगाह से देखते हैं। यह बात बाचाखान के एक संदेश से जो आपने ८ अप्रैल १९६७ ई० को जलालाबाद (अफ़ग़ानिस्तान) से प्रेषित किया था, स्पष्ट विदित होती है :

"भारत की स्वाधीनता के लिए हम लोगों ने भी बहुत-से बलिदान किए हैं और विपत्तियां झेली हैं, इसलिए मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि मैं भारत के नेताओं और जनसाधारण से यह निवेदन करूं कि जो वचन कांग्रेस ने आज़ादी से पूर्व जनसाधारण को दिए थे, उनको पूरा करें।...

"अन्त में, मैं एक और बात कहना चाहता हूं, और वह यह है कि भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए हम लोग आपके साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़े। आपको आज़ादी मिल गई और आप इस आज़ादी के सुखों का उपभोग कर रहे हैं; लेकिन हम आज भी वैसी ही, बल्कि उससे भी बुरी ग़ुलामी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हम अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। आप इसमें हमारी सहायता कीजिए।... "

बाचाखान की यह कहानी, जो हम प्रस्तुत कर रहे, हैं, संयुक्त भारत और बटे हुए पाकिस्तान के लिए एक आलोक-स्तंभ है। अपनी यह कहानी—'आत्मकथा'—बाचाखान ने पश्तू भाषा में लिखाई थी, जिसे श्री नारंग महोदय और मैंने उर्दू का लिबास पहनाया। श्री जगन्नाथ प्रभाकर ने इसका हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया है।

—रामसरन नगीना

आत्मकथा

मैं, हस्तनगर के, जो अब 'अश्तंगर' नाम से विख्यात है, 'उतमान जई' गांव में खान बहराम खां के यहां पैदा हुआ था। उस समय प्रथम तो यह रीति ही नहीं थी कि कोई बच्चा जन्म ले तो उसके माता-पिता उसकी जन्मतिथि और संवत् अपने पास लिखकर रख लें और दूसरी बात यह थी कि उन दिनों लोग लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे। यही कारण है कि मेरी जन्मतिथि किसीने भी नहीं लिखी। परन्तु मेरी माता मुझसे कहा करती थीं कि मेरे भाई डाक्टर खान साहब का जब विवाह हुआ था, तब मैं ग्यारह वर्ष का था। उनका विवाह सन् १९०१ में हुआ था। इसलिए मेरा यह कहना ठीक ही है कि मेरा जन्म सन् १८९० ई० में हुआ था।

मेरे पिता गांव के एक बहुत बड़े खान[1] थे परन्तु उनमें इस गौरव-शाली उपाधि की गर्व-गरिमा का लेश मात्र भी नहीं था। वे अत्यन्त विनम्रस्वभाव, ईश्वरभक्त, पावनहृदय और संयमी पुरुष थे। वे बल-वान आततायी के मुकाबले में दुर्बल आक्रांत व्यक्ति के समर्थक और सहायक थे। उदारता, दया और धैर्य उनकी प्रकृति के विशेष गुण थे। कोई उनका बुरा भी कर देता, तो वे बदला चुकाने की सामर्थ्य रखते हुए भी क्षमा और साहिष्णुता से काम लेते। बुराई का उत्तर भलाई से देते।

ऐसा ही उदार स्वभाव और कोमल प्रकृति मेरी माता ने भी पाई थी। वे सदा सालन की एक हांडी गली-मुहल्ले के गरीब लोगों के लिए पकाया करती थीं और उन सबमें थोड़ा-थोड़ा सालन बांट दिया करती थीं। इस प्रकार हमारे हुज्रा[2] में जो यात्री आकर ठहरते थे और जिन्हें

---

१. पठानों में संभ्रान्त, समृद्ध, व्यक्ति की उपाधि। २. मसजिद की कोठरी।

कोई भी नहीं जानता था और न ही इस प्रकार के यात्री किसीके अतिथि होते थे, उन यात्रियों के लिए मेरे पिता स्वयं भोजन ले जाया करते थे, जबकि इस प्रकार के कामों के लिए घर में नौकर-चाकर उपस्थित होते थे। मेरे पिता रोटियों की टोकरी अपने सिर पर और सालन का बर्तन हाथों में उठा लेते। हुजरा में पहुंचकर अजाने यात्रियों को खिलाते-पिलाते। वे कहा करते थे, "ये यात्री, जिन्हें न कोई जानता और न पहचानता है, ईश्वर की ओर से भेजे हुए अतिथि होते हैं, इसलिए मैं स्वयं उनके लिए भोजन ले जाता हूं।"

दूसरे खानों की भांति मेरे पिता शासक-भक्त नहीं थे और न ही वे प्रशासकों से सम्बन्ध स्थापित करते थे। उनकी खुशामद करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। मेरे पिता को आत्मसम्मान का यह गुण मेरे पूज्य दादा से विरासत में मिला था। मेरे दादा का नाम सैफ़ुल्लाह खां था। उस ज़माने में जब सुरकावे पर युद्ध हो रहा था और अंग्रेज़ बुनेर के इलाक़े पर अधिकार जमाना चाहते थे, हमारे देश के खान लोग अंग्रेज़ों की सहायता के लिए वहां गए थे, लेकिन मेरे दादा सैफ़ुल्लाह खां ने अपनी आक्रांत जाति का साथ दिया था। जिस प्रकार ग़ाज़ी उन फिरंगियों का मुक़ाबला कर रहे थे, उसी प्रकार मेरे दादा ने भी ग़ाज़ियों से मिलकर मोर्चा संभाल रखा था। इसी प्रकार अंग्रेज जब भी सीमा प्रान्त के लोगों से लड़ाइयां लड़ते, उनपर छापे मारते और उन्हें ग़ुलाम बनाने की कोशिश करते, तो मेरे दादा सदा जाति के साथ खड़े हो जाते और फिरंगियों के अत्याचार के विरुद्ध कंधे से कंधा मिलाकर लड़ते।

मेरे परदादा अबीदुल्लाह खां अपनी प्रशस्त बुद्धि और जाति हितैषिता के कारण दुर्रानियों के हाथों फांसी पर लटकाए गए थे, क्योंकि उस समय हमारे देश पर दुर्रानियों का प्रभुत्व था और मेरे परदादा को, अपनी जाति में एक प्रभावशाली, लोकप्रिय और सशक्त नेता के रूप में विशेष स्थान प्राप्त था।

दुर्रानियों के बाद, जब अंग्रेज़ों का राज्य स्थापित हुआ, तो हमारा प्रदेश उस समय पंजाब से संलग्न था। पंजाब में तो अंग्रेज़ों ने पंजाबियों की शिक्षा के लिए बहुत-से विद्यालय खोल रखे थे, परन्तु हमारे प्रदेश में शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। पठानों के साथ अंग्रेज़ों को कुछ भी सहानुभूति न थी, न ही पंजाबियों को हमसे हमदर्दी थी। हमारे यहां शिक्षा विभाग के समस्त अधिकारी पंजाबी थे। इसी कारण हमारे प्रदेश में नियमित रूप से शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। कुछ बड़े-बड़े गांवों में यदि कोई इक्के-दुक्के प्राथमिक विद्यालय थे भी, तो उनमें कहीं-कहीं

सिर्फ एक अध्यापक बैठा होता था।

यह बात भी उल्लेखनीय है कि अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तान में लगभग प्रत्येक जाति को अपनी-अपनी मातृभाषा में शिक्षा देने की प्रथा प्रचलित की थी। हम ही एक ऐसी भाग्यहीन जाति थे, कि एक तो हमारे प्रदेश में शिक्षा का प्रबन्ध नहीं था और कुछ व्यवस्था थी भी, तो यह कि बच्चों को पराई भाषा में शिक्षा दी जाती थी। इससे भी अधिक खेदजनक बात यह थी कि अंग्रेज़ों ने एक ओर तो हमारे लिए बहुत कम संख्या में विद्यालय स्थापित किए थे और दूसरी ओर ऐसे नाम के मुल्ला-मुलांटों को हमारे पीछे लगा रखा था, जो यही फ़तवे दिया करते थे कि इन विद्यालयों में शिक्षा पाना कुफ़्र है। इन लोगों के प्रचार की धुरी यह अनोखा विचार था कि :

सबक़ चि: द मद्रसे वाई।
द पारह द पैसे वाई।:
जन्नत के ब: जाए नवी।
दोज़ख के ब: धंसे वही।।

अर्थात्, "जो लोग मदरसे में सबक पढ़ते हैं, वे पैसों के लिए ऐसा करते हैं। उनको जन्नत में जगह नहीं मिलेगी। वे दोज़ख में धक्के खाते रहेंगे।"

इस प्रचार का वास्तविक उद्देश्य यह था कि पठान अशिक्षित और मूर्ख रह जाएं। यही कारण था कि पठान भारत-भर में शिक्षा के क्षेत्र में सबसे पिछड़े हुए थे।

पठान बच्चों के लिए शिक्षा प्राप्त करने का और कोई साधन नहीं था। मसजिदों में धार्मिक शिक्षा के नाम से पठन-पाठन का थोड़ा-बहुत प्रबन्ध था, लेकिन वह मुल्ला लोगों के लिए था और प्राय: लोग यह शिक्षा इमामत (धार्मिक नेतृत्व) करने के लिए हासिल किया करते थे। साधारण पख़्तूनों की रुचि इसमें सर्वथा नहीं थी। चूंकि इस्लाम के प्रादुर्भाव से पहले पख़्तून हिन्दू थे और हमारे समाज में भी वह गलत नियम प्रचालित था कि विद्या केवल ब्राह्मणों के लिए है। इस नियम के अधीन हम भी उसी तरह विभक्त हो चुके थे, जैसे हिन्दू अलग-अलग टुकड़ों या वर्णों में थे।

मेरे पिताजी ने स्वयं तो विद्या प्राप्त नहीं की थी, परन्तु विद्या से उनको बहुत अनुराग था। मैं पांच-छ: वर्ष का था, कि मुझे शिक्षा के लिए मसजिद में मुल्ला के पास बिठा दिया गया। मुल्ला बेचारा तो स्वयं ही लिखने-पढ़ने में असमर्थ था, वह भला मुझे क्या पढ़ा-लिखा

सकता था। उसे क़ुरान शरीफ़ की कुछ एक सूरतें[1] याद थीं और वह क़ुरान शरीफ़ पढ़ अवश्य सकता था, लेकिन अर्थ और अभिप्राय नहीं समझता था। मुल्ला साहब ने मुझे 'सिपारह'[2] पढ़ाना आरम्भ कर दिया। सिपारह (सिपारा) का पाठ आरम्भ करते समय मेरे माता-पिता ने मिठाई बांटी और मेरे इस शिक्षा-आरम्भ पर बहुत खुशियां मनाईं।

कितनी अनूठी बात थी कि मुल्ला साहब मुझे 'अलिफ़, बे, पे और ते' तो पढ़ा नहीं सकते थे, लेकिन सिपारह पढ़ाना आरम्भ कर दिया। विचार कीजिए, जब एक व्यक्ति को वर्णमाला के अक्षरों का ज्ञान नहीं, उन अक्षरों की पहचान नहीं, वह सिपारह कैसे पढ़ सकेगा? लेकिन इसमें बेचारे मुल्ला का भी कोई दोष नहीं था। उस ज़माने में पढ़ाने का यही तरीक़ा हमारे प्रदेश में प्रचलित था।

हमारा अध्यापक बड़ा जालिम था और हमें बड़ी निर्दयता से पीटा करता था। कुछ समय में मैंने क़ुरान शरीफ़ समाप्त कर लिया। मेरे माता-पिता ने मेरे क़ुरान शरीफ़ के पाठ-समापन पर बहुत हर्ष मनाया और बहुत बड़ी ख़ैरात की तथा मुल्ला को भी बहुत-सा धन दिया।

पठानों में शिक्षा के लिए बहुत शौक़ था और प्रायः लोग अपने बच्चों को शिक्षा दिलवाने के लिए मसजिदों में भेजते थे, क्योंकि बच्चों की शिक्षा व विद्याध्ययन के लिए कोई और सस्था, विद्यालय या प्रतिष्ठान नहीं होता था और न ही वे लोग मसजिद की शिक्षा के सिवा किसी और विद्या से परिचित थे। यदि प्रदेश के बड़े-बड़े नगरों में कहीं थे भी, तो मुल्ला-मुलांटे उनमें पढ़ने के लिए लोगों को नहीं जाने देते थे और कहते थे कि दुनिया की यह विद्या कुफ़्र है।

लेकिन मैं भाग्यशाली था कि खुदा ने मुझे एक निर्भीक और ईमानदार पिता और ममतामयी माता दी थी, जो मसजिद के मुलांटों के फ़तवों और इर्द-गिर्द के लोगों के वावैला और आवाज़ों की परवाह नहीं करते थे। उन्होंने मेरे बड़े भाई डाक्टर ख़ान साहब को मदरसे में शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेज दिया और मेरे विचार में हस्तनगर-भर में यह सबसे पहला लड़का था, जिसे मदरसे भेजा गया था। जब मैंने क़ुरान शरीफ़ पूर्णरूपेण पढ़ लिया, तो मुझे भी माता-पिता ने स्कूल भेज दिया। उस समय मेरी आयु आठ वर्ष थी। मुल्ला-मुलांटे छिप-छिपकर हमारे विरुद्ध लोगों में प्रचार करते थे। लेकिन उन्हें खुलेआम हमारे विरुद्ध

१. क़ुरान के अध्याय २. क़ुरान के तीस भागों में से प्रत्येक भाग को सिपारह कहा जाता है।

मुंह खोलने का साहस नहीं होता था और न हमारे विरुद्ध कुफ़ का फ़तवा लगाने की हिम्मत कर सकते थे, क्योंकि मेरे पिता को एक ख़ान होने के नाते से विशेष सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। मौलानाओं के लिए इनपर अंगुली उठाना टेढ़ी खीर था।

यह कितनी खेदजनक बात है कि हमारा प्रदेश, जो इतिहास के विभिन्न युगों में ज्ञान व साहित्य, संस्कृति व सभ्यता के उत्कृष्ट विकास का केन्द्र था, इतिहास की प्रतिकूल परिस्थितियों, मुल्ला-मुलांटों की मूर्खता, अविद्या और गिरावट के कारण इस हद तक अवनत हो गया कि इसमें शिक्षा जैसे नेक कामों के लिए भी कोई गुंजाइश न रही।

हमारे इस देश में विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं के दौर व्यतीत हो चुके हैं। एक समय था जब यह इलाक़ा आर्य-सभ्यता की लीला-भूमि था। फिर इस देश में बौद्धमत का युग आरम्भ हुआ। इस युग में हमारे देश ने बहुत उन्नति की और यह एक महान शिल्प-ज्ञान व सभ्यता के निशान छोड़ गया। आज भी महात्मा गौतम बुद्ध की दो भव्य और विराट मूर्तियां बामियान में मौजूद हैं, जो संसार-भर में महात्मा बुद्ध की सबसे बड़ी मूर्तियां हैं और पर्वतांचल में मूर्तिकला का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत कर रही हैं।

बामियान के पर्वतांचल में महात्मा बुद्ध की इन विराट मूर्तियों के चारों ओर पर्वत में स्थान-स्थान पर गुफाएं या गुहा-मन्दिर बने हैं। इन गुहा-मन्दिरों में बौद्धधर्म के साधक, भिक्षु, नेता, आध्यात्मिक गुरु और शिष्य रहा करते थे। बामियान के अतिरिक्त जलालाबाद के निकट-वर्ती इलाक़े में हड्डा के स्थान पर बौद्धधर्म का महान विश्वविद्यालय था, जिसके भग्नावशेष अभी तक मौजूद हैं। यही महिमा तक्षशिला (टैक्सला) को प्राप्त थी। इन स्थानों पर पाए गए तक्षण-शिल्प, मूर्ति-कला, वास्तुकला, दारु-शिल्प के नमूनों से मालूम होता है कि उस समय हम पठान लोग एक उत्कृष्ट सभ्यता और समुन्नत संस्कृति के धनी थे। हमने इतनी उन्नति की थी कि अपने देश से बाहर चीन और सुदूरपूर्व तक हमारे बाज़ू फैले हुए थे। इस प्रकार हमने अपनी संस्कृति और महात्मा बुद्ध के संदेश को संसार के अन्य भागों तक पहुंचाया।

दो-तीन वर्ष पूर्व हमारे गांव के निकट पुरातत्त्व-विभाग के अधि-कारियों ने खुदाई कराई थी। इस खुदाई से भूमि के नीचे से एक विशाल नगर के भग्नावशेष निकले। कहा जाता है कि यह नगर गंधार के राज-कुल का केन्द्र था और यदि हम इतिहास के धुंधलके में थोड़ा-सा और भी पीछे चले जाएं, तो पठानों का यह देश, जो इस समय अफ़ग़ानिस्तान

और पख़्तूनिस्तान के नाम से प्रसिद्ध है, मानव जाति के एक महान कुल की लीला-भूमि रह चुका है।

इतिहासकारों के अनुसंधान-कार्य से ज्ञात होता है कि आर्य जाति ने सबसे पहले इस देश में आमू नदी के किनारे अपनी आंखें खोली थीं और फिर इसी धरती पर उसने उन्नति का परम उत्कर्ष प्राप्त किया था। बाद में जब इस जाति की जनसंख्या बढ़ गई और देश में भेड़ों के रेवड़ रखने के स्थान का अभाव हो गया, तो इसके जन-समूहों ने नये-नये देशों की ओर कूच करना आरम्भ कर दिया। ये लोग एक ओर तो ईरान के रास्ते से यूरोप में चले गए और दूसरी ओर भारत की तरफ बढ़ गए और विभिन्न कुलों अथवा जातियों में विभक्त हो गए। वे जहां भी गए, उन्होंने भौगोलिक परिस्थितियों और देशीय प्रभावों के अधीन भिन्न-भिन्न सभ्यताएं और भाषाएं ग्रहण कर लीं। परन्तु आर्य जाति के ये लोग, जब इससे पहले अपने मूल देश—'आर्याना वेजो' (वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान और पख़्तूनिस्तान) में रहते थे, तो इनकी एक बोली (भाषा) थी, जिसे अब आर्यिक भाषा' का फ़र्ज़ी नाम दिया गया है। इसी आर्यिक भाषा की निकटता पश्तू भाषा को प्राप्त है।

पठान ऊंचे-ऊंचे दुर्लंघ्य पहाड़ों और दर्रों में आबाद थे और बाहर के प्रभावों से अपेक्षाकृत सुरक्षित थे। पहाड़ों से घिरा हुआ यही देश 'आर्याना वेजो' था, जिसमें इतिहास के प्रथम पैग़म्बर ज़रतुश्त ने जन्म लिया। ज़रतुश्त बलख़ के रहनेवाले थे। बाद में वे ईरान चले गए। परन्तु उनकी पुस्तकें बलख़ के स्तुति-गान से भरपूर हैं। इससे इस बात का प्रमाण भी मिलता है कि यही वह भूमि थी जहां हिन्दुओं के पवित्र वेद की ऋचाओं ने जन्म लिया और यही वह देश है, जिसके एक सपूत पाणिनि ने संस्कृत भाषा का व्याकरण लिखा और उसे एक साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। यह पाणिनि सिन्ध नदी की तटवर्ती तहसील सवाबी का एक निवासी था।

इसी प्रकार इस देश की एक नदी और पश्तू के जिस शब्द, से 'हिन्दू' शब्द की व्युत्पत्ति हुई, वह 'सिन्ध' है, जिसे 'अबासिन्द' भी कहा जाता है। याद रहे कि पश्तू में प्रत्येक नदी को 'सिन्ध' कहा जाता है। आर्यों के इस सम्मिलित कुल में, जिससे बहुत-से आर्य दूसरे इलाक़ों में चले गए, दो बड़े घराने बाक़ी रह गए, जिनमें से एक 'पश्तून' और दूसरा 'बिलोच' नाम से विख्यात है। ये दोनों अब भी अपने इसी पुराने देश में रह रहे हैं और इसकी रक्षा, इसके निर्माण और उन्नति का काम परमात्मा ने इन्हींके सुपुर्द कर रखा है।

हमारे इस देश में बाद को इस्लाम आया। परन्तु इस्लाम जिस समय इस देश में आ रहा था, उस समय आंखों में वह आध्यात्मिक आलोक, ईश्वरीय विचार, त्याग और तपस्या का भाव बाकी नहीं रहा था, जो इस्लाम के पैग़म्बर लाए थे या जिनका प्रचार अबूबकर और उमर जैसे महान पुरुषों ने अपने सक्रिय जीवन और उच्च आचरण द्वारा किया था। उस समय जब इस्लाम हमारे देश में पहुंचा, अरब राज्य साम्राज्यशाही और निरंकुशता में उन्मत्त हो चुके थे। उनमें धर्म-प्रचार की लगन और नेकी फैलाने के भाव का अभाव हो चुका था। इसका परिणाम यह हुआ कि हमसे हमारी शानदार सभ्यता और सौम्य संस्कृति तो ले ली गई, लेकिन इसके बदले हमें इस्लाम का वह प्रकृत रूप नहीं दिया गया, जो पैग़म्बर लेकर आए थे। इसके बावजूद हमारे ज्ञानानुरागी और प्रभु-भक्त लोग इस्लाम की तलाश में इस्लामी जगत् में घूमे और उन्होंने इस्लामी दर्शन, विद्या-विवेक और अध्यात्म-विद्या में अपने लिए एक उच्च स्थान प्राप्त कर लिया, जिसपर हम यथार्थ रूप में गौरव कर सकते हैं। इन्हीं महान व्यक्तियों के बलिदान के कारण अब पाकिस्तान स्थापित हुआ है। यह बात अलग है कि जिन पठानों ने पाकिस्तान के पूर्वजों को इस्लाम में दीक्षित किया था, उनके साथ पाकिस्तान का वर्ताव क्या है ?

२

मैंने प्रारंभिक शिक्षा पेशावर के म्यूनिसिपल बोर्ड हाई स्कूल में प्राप्त की। उसके बाद पेशावर के मिशन हाई स्कूल में दाखिल हो गया। कुछ समय के बाद मेरा भाई इसी स्कूल का कोर्स समाप्त करके डाक्टरी की शिक्षा ग्रहण करने के लिए बम्बई चला गया और मैं मिशन हाई स्कूल में अपने नौकर 'बारानी काका' के साथ रह गया। बारानी काका मुझे सेना के क़िस्से-कहानियां सुनाता और कहा करता था कि सेना की नौकरी बहुत अच्छी और सम्मानयुक्त होती है। यदि कोई व्यक्ति सेना में सेनानायक की वर्दी में फ़ौजी शस्त्रों से लैस होकर अपनी कम्पनी के आगे-आगे चल रहा हो, तो उसके व्यक्तित्व से अनोखा तेज और गौरव टपकता है।

बारानी काका की बातों ने मेरे मन में फ़ौजी नौकरी के लिए प्रबल चाव पैदा कर दिया। मैंने माता-पिता से परामर्श किया और आज्ञा लिए बिना 'डायरेक्ट कमीशन' के लिए भारत के कमाण्डर इन-

चीफ़ के नाम एक आवेदनपत्र भेज दिया। इसके बाद मैं इस आवेदनपत्र के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। नियमानुसार कमीशन प्रदान करने से पूर्व सरकार उम्मीदवार के सम्बन्ध में आवश्यक जांच कराती है और इसके लिए कुछ समय की आवश्यकता होती है। इस बीच में नवीं कक्षा से उत्तीर्ण होकर दसवीं कक्षा में दाखिल हो चुका था। जब मैट्रिक की परीक्षा आरंभ हुई और मैं लगभग आधे पर्चे दे चुका और आधे अभी देने शेष थे कि मुझे एक सरकारी आदेशपत्र मिला। पत्र में लिखा था कि मेरा डायरेक्ट कमीशन स्वीकृत हो गया है और मैं अगले दिन प्रातः दस बजे भरती के कार्यालय में उपस्थित हो जाऊं। यह आदेशपत्र मेरे लिए असाधारण हर्ष का कारण था, क्योंकि उस ज़माने में डायरेक्ट कमीशन बड़ी महत्त्वपूर्ण बात थी। मैंने इस खुशी में शेष की आधी परीक्षा ही नहीं दी और भरती-अधिकारी के कार्यालय में उपस्थित हो गया। मेरा निरीक्षण किया गया और मेरा नाम डायरेक्ट कमीशन में लिख लिया गया।

उन्हीं दिनों मेरे भाई डाक्टर खान साहब बम्बई से इंग्लैंड रवाना हो गए और वहां पहुंचकर एक मेडीकल कालेज में दाखिल हो गए।

मुझे डायरेक्ट कमीशन में लिए जाने की स्वीकृति मिलने पर मेरे पिता को अत्यन्त हर्ष हुआ। उन दिनों मरदान में 'गाइड्स' नामक एक रिसाला और पलटन की छावनी थी। यह पलटन सारे भारत की सेना में बहुत ख्याति और सम्मान का स्थान रखती थी। उसमें बड़े संभ्रात वर्ग के लड़के भी बड़ी कठिनाई से सिपाही भरती किए जाते थे। पंजाब के लब्धप्रतिष्ठ लोगों के लड़के इसमें मौजूद थे। मैं उसी पलटन में डायरेक्ट कमीशन पर इसलिए लिया जा रहा था कि मैं एक अत्यन्त रूपवान युवक था। छः फुट, तीन इंच मेरा क़द था और मैट्रिक तक मेरी शिक्षा थी। इन्हीं कारणों से इस पलटन के अंग्रेज़ों का मुझसे प्यार था और उनकी यह इच्छा थी कि मैं उस पलटन में शामिल हो जाऊं। मेरे पिता भी इसमें सहमत और अत्यन्त प्रसन्न थे।

लेकिन एक दिन मैं पेशावर में एक मित्र से मिलने के लिए गया, जो उस रिसाले में रिसालदार था। मैं और वह दोनों खड़े थे कि इतने में एक फिरंगी, जो उस रिसाला में लेफ्टिनेंट था, आया। मेरे मित्र रिसालदार नंगे सिर खड़े थे और उनके सिर के बाल फ़ैशनेबल थे—सिर के अगले भाग पर फ़ैशन से कटे हुए बालों का गुच्छा था। इस अंग्रेज़ ने जब रिसालदार के बालों का यह फ़ैशन देखा, तो क्रोध में भड़ककर बोला, "वैल डैम सरदार साहब; तुम भी अंग्रेज़ बनना चाहता है ?"

यह सुनकर रिसालदार का रंग उड़ गया और उसमें इतना भी साहस न रहा कि इस बात का उत्तर उसे देता। मैंने जब यह दृश्य देखा, तो मुझपर उसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। मुझे तो बारानी काका फ़ौजियों के सम्मान की बातें सुनाया करता था, लेकिन यहां मुझे अपमान ही अपमान दिखाई दिया। फिर क्या था, मैंने उसी दिन से अंग्रेज़ों की नौकरी का विचार छोड़ दिया। परन्तु मेरे अब्बाजान ने मेरे इस विचार का कड़ा विरोध किया। वे मुझसे नाराज़ भी हो गए, क्योंकि उन दिनों डायरेक्ट कमीशन प्राप्त होना बहुत बड़ी चीज़ थी। परन्तु मुझे वह बड़ी चीज़ दिखाई न दी और न ही मुझे उसमें कोई सम्मान नज़र आया। मुझे तो वह एक तुच्छ, हीन और गिरी हुई चीज़ जान पड़ी।

डायरेक्ट कमीशन ठुकरा देने के कारण बाबाजी मुझसे बहुत अप्रसन्न थे, इसलिए मैंने इस सम्बन्ध में अपने भाई डाक्टर खान साहब को एक पत्र भेजा। उसमें मैंने यह लिखा कि 'मैंने अंग्रेज़ों की नौकरी का विचार छोड़ दिया है, क्योंकि उसमें कोई सम्मान नहीं, ग़ुलामी और अनादर ही है।' डाक्टर साहब मेरे इस निर्णय से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अब्बाजान को लिख दिया कि मैंने जो निश्चय किया है वह यथोचित और उत्तम निश्चय है, इसलिए वे मुझे मजबूर न करें और न ही मुझसे नाराज़ हों।

अब मैंने फिर अपनी पढाई की ओर ध्यान दिया। उन्हीं दिनों मैं अपने एक और साथी के साथ कैम्बलपुर चला गया और वहां के हाई स्कूल में फिर दाखिल हो गया। परन्तु इस जगह सख़्त गर्मी थी और मेरा मन वहां न लग सका। मैं वहां से क़ादियान चला गया, परन्तु वहां का वातावरण भी मुझे पसन्द न आया। वहां रात को मैंने एक स्वप्न देखा कि मैं एक सुन्दर गहरे कुएं में गिर पड़ा हूं। इसी बीच एक व्यक्ति वहां आता है और कुएं के भीतर मेरी ओर अपना लम्बा-सा हाथ बढ़ाता है। मैं उसके हाथ को पकड़ लेता हूं और वह व्यक्ति मुझे कुएं से बाहर निकाल लेता है। इसके पश्चात् वह आश्चर्य से मेरी ओर देखकर कहता है—'क्या तुमको यह कुआं दिखाई नहीं देता। आखिर इसमें अपने-आप को क्यों फेंकते हो?'

प्रातः समय मैं जागा, तो वह वृत्तान्त मैंने अपने साथी को सुनाया और हम दोनों इस बात पर सहमत हो गए कि इस जगह से निकल जाएं, अस्तु हम क़ादियान से वापस अपने गांव आ गए।

मेरा वह साथी तो फिर पेशावर के हाई स्कूल में दाखिल हो गया

और मैं अपने गांव से अलीगढ़ चला गया। वहां कालेज में दाखिल हो गया। लेकिन मुझे निवास के लिए छात्रावास में स्थान न मिला, अस्तु मैंने अलीगढ़ के एक होटल में निवास और खान-पान का प्रबन्ध कर लिया। मेरा कालेज अलीगढ़ शहर से, जहां वह होटल था, दूर था। इसलिए दिन का पूरा समय मैं कालेज में व्यतीत करता और रात के समय शहर चला आता। कुछ दिनों के पश्चात् कालेज में गर्मियों की छुट्टियां हो गईं और मैं वापस गांव चला आया।

गांव आकर मुझे मालूम हुआ कि विलायत से मेरे भाई का एक पत्र बाबाजी के नाम आया है। इस पत्र में मेरे सम्बन्ध में लिखा था कि अच्छा यह होगा कि मैं इंजीनियरिंग की शिक्षा ग्रहण करने के लिए विलायत चला जाऊं और अपने भाई के पास रहूं। वहीं भाई साहब डाक्टरी पढ़ रहे थे और मेरे लिए उन्होंने इंजीनियरिंग का विषय तजवीज़ किया था। इसका कारण यह था कि मैं ज्यामिति में बहुत योग्य था। भाई साहब के इस सुझाव को सामने रखकर अब्बाजान न मेरे साथ विचार-विमर्श के बाद यह निश्चय किया कि मैं भी लन्दन चला जाऊं। इस निश्चय की सूचना डाक्टर खान साहब को भिजवा दी गई। डाक्टर साहब ने मेरे लिए पी० एन० ओ० जहाज़ में सीट रिज़र्व करवा ली और बाबा ने मुझे तीन हज़ार रुपये भी दे दिए। मैं जाने के लिए सर्वथा तैयार हो गया।

परन्तु जब मैं विदा की आज्ञा लेने के लिए अपनी माताजी के पास गया तो वे रोने लग गईं और उन्होंने मुझे विलायत जाने की आज्ञा न दी। मैंने उन्हें समझाने की बहुत ही कोशिश की, परन्तु मैं उन्हें सहमत न कर सका। मैंने उनसे यह भी कहा कि वे अपने इस प्रदेश को तो देखें कि इसकी क्या हालत है। अंग्रेज़ों ने यहां के लोगों में फूट, गुटबन्दी और नाना प्रकार के विरोध-वैमनस्य पैदा कर रखे हैं। यहां निर्दोष लोग मौत के घाट उतारे जाते हैं, फिर निर्दोष, बेगुनाह लोगों ही पर मुक़द्दमे और दावे दायर होते हैं। आपस की गुटबन्दी और द्वेष-शत्रुता के कारण अपराधी छूट जाते हैं और निरपराध लोग क़ैद की यातनाएं झेलते हैं। यहां तो किसी भी मनुष्य का जीवन सुरक्षित नहीं है। यहां सीखने को भी भला क्या रखा है?

मेरी इन बातों का प्रभाव माताजी पर कुछ न हुआ। वे मुझसे सहमत न हुईं तो न हुईं। लोगों ने उनके मन में यह बात बैठा दी थी कि एक बार यदि कोई व्यक्ति इस देश से विलायत चला जाता है, तो वापस नहीं आता। उनका एक बेटा, जो पहले ही विलायत जा चुका है, वह तो वापस

आने से रहा और अब यह दूसरा भी उसके पीछे चला गया, तो उनकी भी वैसी ही हालत होगी, जैसी लावारिस और पुत्रहीन मां की होती है।

चूंकि हम दो ही भाई थे। एक तो पहले ही विलायत जा चुका था, और मैं ही मां के मनबहलाव और धैर्य के लिए पास था। भाई साहब की अनुपस्थिति में वे मुझे देखकर अपने हृदय को संतुष्ट कर लिया करती थीं। उन्हें मेरी जुदाई सह्य नहीं थी। इसलिए वे मुझे विदेश जाने की आज्ञा नहीं देती थीं।

वास्तव में मुझे भी मां से अत्यन्त स्नेह था। मैं उनकी आज्ञा के बिना इंगलैंड नहीं जाना चाहता था और जब उन्होंने मुझे आज्ञा न दी, तो मैं इंगलैंड जाने से रह गया। मैंने विलायत का विचार दिल से निकाल दिया। अब मैंने देश और जाति तथा प्रभु के जीवों की सेवा करने का संकल्प कर लिया।

३

१९०१ ई० में अंग्रेज़ों ने सीमा प्रान्त को पंजाब से अलग कर दिया और हमारे प्रान्त में एक भयानक क़ानून लागू कर दिया। ऐसा क़ानून तो शायद हलाकू खां ने भी लोगों पर लागू नहीं किया था। उस क़ानून का नाम 'फ्रंटियर क्राइम्स रेगूलेशन ऐक्ट' था। एक तो यह क़ानून अपने-आप ही में बड़ा भयानक था और इसे 'काला क़ानून' कहा जाता था, इसपर ग़ज़ब यह था कि फिरंगियों ने इसका प्रयोग ऐसे बुरे तरीक़े से किया कि इससे पठानों में पार्टीबाज़ी, फूट और आपसी शत्रुता पैदा हो गई। उनका वह सामूहिक जीवन व्यक्तिगत जीवन में परिणत हो गया। इसके अतिरिक्त इस गंदे क़ानून ने हमारे सम्मान, मर्यादा और आत्म-अभिमान को भी भयंकर आघात पहुंचाया और हमारी महिलाओं को खींच-खींचकर अदालतों में पहुंचा दिया। यह इस प्रकार का काला क़ानून था कि जो व्यक्ति अंग्रेज़ों को अप्रिय होता था, उसपर पुलिस एक झूठा मुक़द्दमा बना लेती। ऐसे मुक़द्दमों में प्रमाणों की कोई आवश्यकता नहीं होती थी। फिरंगी उस व्यक्ति पर जिरगा बिठा दिया करते। जिरगा के सदस्य भी उनके अपने ही पिट्ठू हुआ करते थे, जो उस व्यक्ति को चौदह वर्ष क़ैद की सज़ा दे देते थे।

इस सम्बन्ध में हबीब नूर का एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूं। सन् १९३१ में कांग्रेस के आन्दोलन में जब 'चार सद्दा' में अंग्रेज़ों ने खुदाई ख़िदमतगारों पर असीम अत्याचार किए, तो उससे हबीब नूर के

मन को बड़ा आघात पहुंचा। उनके हृदय में एक ज्वाला-सी भड़क उठी। फिर क्या था, जब चार सद्दा का अंग्रेज़ असिस्टेंट कमिश्नर अदालत की ओर जाने लगा, तो वे उसके पास चले गए और अंग्रेज़ असिस्टेंट कमिश्नर को अपने तमंचे से मौत के घाट उतार देना चाहा, परन्तु उनका तमंचा काम न कर सका। तब हबीब नूर ने फिरंगी को ऊपर उठा लिया और भूमि पर ज़ोर से दे मारा और कहा, "लो, तुम्हें जान से तो नहीं मार सका, चलो, ज़लील ही कर दूं।" पुलिस तुरन्त घटना-स्थल पर पहुंच गई और हबीब नूर को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें चौबीस घण्टे के अन्दर-अन्दर फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया।

यह तो मैंने आप लोगों के सामने नमूने के तौर पर केवल एक ही मिसाल रखी है। इस तरह के और भी अनेक लोग थे, जिनके साथ इससे भी अधिक अत्याचार हुए।

इस काले क़ानून की एक और धारा है, जिसे धारा ४० नाम से याद किया जाता था। यह धारा नैतिक अपराध से सम्बद्ध थी, लेकिन अंग्रेज़ अपने शासन-काल तक इसे राजनीतिक क़ैदियों के विरुद्ध प्रयोग में लाते रहे। अंग्रेज़ तो खैर विदेशी शासक थे, उनसे क्या शिकायत हो सकती थी। ग़ज़ब तो यह है कि पाकिस्तान के देशी शासकों ने भी इस काले क़ानून को देशभक्त पठानों के विरुद्ध लागू कर रखा है। ये देशी शासक क्या करते हैं कि यदि एक व्यक्ति रास्ते पर चल रहा होगा, तो उसे ये पकड़ लेंगे और कहेंगे कि ज़मानत दे दो। वह उनसे पूछेगा कि उसने क्या अपराध किया है? इसका उत्तर ये शासक देंगे कि 'इस बात के बताने की आवश्यकता नहीं, यदि ज़मानत देते हो, ठीक है, अन्यथा जाओ तीन वर्ष के लिए क़ैदखाने की हवा खाओ।'

मैंने और मेरे हज़ारों ख़ुदाई ख़िदमतगारों ने इस धारा के अधीन क़ैदें काटी हैं। १९०१ ई० में अंग्रेज़ों ने जब हमें पंजाब से विलग किया था और इस प्रकार के अत्याचारपूर्ण क़ानून हमारे लिए बनाए जाते थे, तो इसका कारण यह था कि फिरंगियों के विरुद्ध पठानों में यह ख़याल पैदा हो गया था कि फिरंगी उनके शत्रु हैं और उन्होंने अन्याय-अत्याचार से उन्हें ग़ुलाम बना रखा है। अंग्रेज़ों के विरुद्ध पठानों में एक हिंसात्मक आन्दोलन आरंभ हो गया था। इस आन्दोलन का यह परिणाम निकला कि पठान जहां अंग्रेज़ को देख लेते उसे हानि पहुंचाने का प्रयत्न करते। इस प्रकार बहुत-से अंग्रेज़ मौत के घाट उतारे गए और इसके बदले में बहुत-से पठान फांसी पर लटकाए गए। वास्तव में यह अलग प्रान्त और यह क़ानून अंग्रेज़ों ने अपने इस विशेष उद्देश्य तथा स्वार्थ के

लिए बनाया था कि अंग्रेज़ों के विरुद्ध पठानों के इस आंदोलन को अलग तौर पर कुचलकर रख दें।

४

मैंने मिशन स्कूल में शिक्षा पाई थी। यह ईसाई मिशनरियों का स्कूल था। मेरे बहुत-से साथियों ने इस्लामिया स्कूल में शिक्षा ग्रहण की थी। मेरे विद्यानुशीलन ने मेरे हृदय में देश और जाति से प्यार-मुहब्बत और सेवा का भाव उत्पन्न किया था, लेकिन मेरे जो अन्य साथी थे, उनके दिलों में न तो देश और जाति से कोई प्यार था और न ही उनमें सेवा-भाव था। मैंने इस समस्या पर जितना विचार और चिन्तन किया है, मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि मेरे हृदय में जो देशप्रेम का भाव पैदा हुआ है, उसका श्रेय मेरे उन अध्यापकों को है, जिनसे मैं प्रभावित और और लाभान्वित हुआ था।

शिष्य पर गुरु का प्रभाव होना एक अनिवार्य-सी बात है, मुझपर भी अपने अध्यापक का असीम प्रभाव पड़ा था। इससे मेरे हृदय में मानव-मात्र की सेवा करने का भाव पैदा हो गया था। मेरे अध्यापक एक अंग्रेज़ पादरी 'एम० ई० विगरम' थे। उनका एक भाई डाक्टर था। कहते हैं, इन दोनों भाइयों को उनके पिता ने मिशन को भेंट कर दिया था। इनमें से बड़ा भाई मिशन हाई स्कूल का प्रधानाध्यापक था और छोटा भाई मिशन हस्पताल में डाक्टर था। वे दोनों भाई जिस प्रेम और सहृदयता से लोगों की सेवा करते थे, उसे मैं देखा करता था, क्योंकि मैं छात्रा-वास में रहता था, जिसके निकट ही उनका बंगला था। उस ज़माने में हमारा छात्रावास उसी स्थान पर अवस्थित था, जहां आज मिशन कालेज का भवन खड़ा है। हमारे वही हैडमास्टर एम० ई० विगरम साहब तीन-चार निर्धन अनाथ छात्रों को अपने वेतन में से छात्रवृत्तियां दिया करते थे।

उनकी इन बातों का मुझपर असीम प्रभाव पड़ा। मैं अपने मन में कहा करता था कि 'एक ओर हमारे इन मुसलमान पठान भाइयों को देखिए, इनमें इतनी भी सहानुभूति नहीं है कि अपने किसी ग़रीब भाई की कोई सेवा-सहायता करें और दूसरी ओर उनको देखिए, जो विदेश के लोग हैं और ग़ैर क़ौम तथा भिन्न धर्म वाले हैं, लेकिन उन लोगों में अपने देश और जाति के लिए तो क्या ग़ैरों—अन्य देशीय और जातीय लोगों के प्रति भी कितनी सहानुभूति है। वे कितनी दूर से यहां आए हैं,

हमारी सेवा करते हैं।'

कहावत प्रसिद्ध है कि 'खरबूज़े को देखकर खरबूज़ा रंग पकड़ता है।' यह कहावत मुझपर चरितार्थ हुई थी। उन लोगों के सद्‌गुणों का मुझपर गहरा रंग चढ़ गया था। यही कारण था कि मैं इंगलैंड जाकर इन्हींके ऐसे लोगों के मध्य शिक्षा प्राप्त करने के लिए इच्छुक था। लेकिन अम्माजान से विदेश जाने की आज्ञा न पाकर, मैंने इंगलैंड जाने का इरादा छोड़ दिया था और अपना जीवन प्रभु के जीवों अथवा मनुष्य-मात्र की सेवा के लिए अर्पित कर देने का संकल्प कर लिया था, क्योंकि उन दिनों हमारे प्रदेश के लोग अविद्या और अज्ञान के कारण तबाही और बरबादी की ओर जा रहे थे। अस्तु, मैंने अपनी 'प्राणीमात्र की सेवा' का आरंभ अपनी पठान जाति से अविद्या और निरक्षरता दूर करने के प्रयत्नों से किया।

मैंने अपने कुछ समान विचारवाले कुछ साथियों को इकट्ठा किया। उनसे मिलकर विचार-विमर्श आरंभ कर दिया कि अपने प्रदेश में विद्या का प्रकाश फैलाने और निरक्षरता को मिटाने के लिए क्या उपाय किए जाएं। हमने अपने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए कोशिशें आरंभ कर दीं। खुदा के फ़ज़्ल से हमें 'हाजी साहब तरंग ज़ई' का सहयोग भी प्राप्त हो गया।

हाजी साहब तरंग जई[1] एक सच्चे जातिभक्त बुज़ुर्ग थे। उनके संरक्षण में 'ग़दर' के स्थान पर एक विद्यालय स्थापित किया गया, जिसके व्यवस्थापक मौलवी ताजमुहम्मद नियुक्त किए गए और मौलवी फ़ज़्ल रब्बी और मौलवी फ़ज़्ल महमूद 'मख़्फ़ी' साहब उनके साथ काम करने लगे। मैंने और मौलवी अब्दुल अज़ीज़ साहब ने १९१० ई० में उतमान ज़ई

१. हाजी साहब तरंग जई की सरगर्मियों का आरम्भ प्रचारात्मक और सुधार-विषयक उद्देश्य से हुआ था। उन्होंने फ़ज़ूल रस्म और रिवाज बन्द करवाने और इस्लामी मदरसे स्थापित करने के लिए बड़ा संघर्ष किया। इससे पश्तून जाति में एक नया जीवन पैदा हो गया। हाजी साहब की इन सरगर्मियों से अंग्रेज़ी सरकार बौखला उठी। सरकार ने हाजी साहब को गिरफ़्तार कर लिया। लेकिन उनके श्रद्धालुओं का जोश-ख़रोश देखकर सरकार घबरा गई और हाजी साहब को मुक्त कर दिया। आख़िर हाजी साहब ने अंग्रेज़ों की हकूमत को ख़त्म करने के लिए ग़ैर इलाक़े में हिज्रत कर ली और जीवन के अन्तिम दिनों तक अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध लड़ते रहे। उन्हींके सम्बन्ध में एक अंग्रेज़ ने कहा था, "हाजी साहब तरंग जई का हमारे हाथ से निकल जाना, भारत में हमारी सबसे बड़ी और पहली असफलता है।"

में एक इस्लामी मदरसा स्थापित किया। इसी प्रकार हमारी कोशिशों से प्रान्त-भर में बहुत-से विद्यालय खुल गए और बहुत-से विद्यार्थी उनमें शिक्षा प्राप्त करने लग गए। धीरे-धीरे लोगों में शिक्षा के प्रति बहुत शौक़ पैदा हो गया। उस ज़माने में मौलाना ज़फ़रअली खां के अख़बार 'ज़मींदार' और मौलाना अब्बुलकलाम 'आज़ाद' के 'अलहलाल' 'अल-बलाग़' और 'मदीना' समाचारपत्र-जगत् में बहुत विख्यात थे। हम भी ये सब पत्र-पत्रिकाएं मंगाया करते थे। इन पत्र-पत्रिकाओं को जहां हम स्वयं बड़े चाव से पढ़ा करते थे, वहां दूसरे लोगों को भी पढ़कर सुनाया करते थे, क्योंकि उन दिनों लोगों में अख़बार पढ़ने का शौक़ नहीं था। किन्तु हमारे पढ़कर सुनाने से लोगों में भी अख़बार पढ़ने की रुचि पैदा हो गई। जो लोग 'अलहलाल' और 'अलबलाग़' मंगवाया करते थे, उनके नाम पुलिस और सी॰ आई॰ डी॰ वाले अपने पास दर्ज कर लेते थे और वे व्यक्ति सदा संदेह की दृष्टि से देखे जाते थे।

हमारे प्रान्त के कुछ विद्यार्थी देवबन्द में विद्याध्ययन कर रहे थे और देवबन्दियों के साथ हमारे मौलवी फ़ज़्ल रब्बी और मौलवी फ़ज़्ल-महमूद के घनिष्ठ सम्बन्ध थे। मौलवी फ़ज़्ल रब्बी ने तो देवबन्द में शिक्षा ग्रहण की थी। इसलिए हम कभी-कभार देवबन्द चले जाया करते थे। देवबन्द के शिक्षा-प्रतिष्ठान के प्रधान महमूदुलहसन साहब शैख़-अल-हिन्द जहां बहुत बड़े विद्वान थे, वहां भद्रता, सद्प्रकृति और नेकी में अपनी मिसाल आप थे। उनसे हमारा सम्पर्क भी स्थापित हो गया, क्योंकि उनके हृदय में देश और जाति के प्रति अत्यन्त अनुराग और सहानुभूति थी और हम भी इन्हीं भावों से ग्रस्त थे। वे भी इसी चिन्ता में थे कि यह देश अंग्रेज़ों की ग़ुलामी से कैसे मुक्ति प्राप्त करेगा और हम भी इसी चिन्ता में मग्न रहते थे। उन्हींके द्वारा मौलाना अबीदुल्लाह सिन्धी[1] से भी हमारी भेंट हो गई और हम एक-दूसरे के विचारों से परिचित हो गए।

मौलाना साहब उन्हीं दिनों फ़तहपुरी में अंग्रेज़ी शिक्षित युवकों को क़ुरान शरीफ़ पढ़ाया करते थे और प्रत्येक बी॰ ए॰ पास विद्यार्थी को पचास रुपया मासिक छात्रवृत्ति भी दिया करते थे। उनका यह ख़याल था कि ये अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग धर्म से अनभिज्ञ हैं और यदि ये लोग

---

१. मौलाना अबीदुल्लाह सिंधी महान क्रांतिकारी नेता थे। अंग्रेज़ों के शासनकाल में इनका अधिक समय विदेशों की क्रांतिकारी शक्तियों को संगठित करने में व्यतीत हुआ। इन्हें जीवन के अंतिम दौर में लाहौर में देखा था, बुढ़ापे के बावजूद इनके भाव जवान थे।

धर्म का ज्ञान प्राप्त कर लें, तो फिर उनमें देश और जाति के लिए श्रद्धा, आस्था और सेवा का भाव पैदा हो जाएगा। मौलाना साहब ने इस सम्बन्ध में बड़े परिश्रम और बलिदान का प्रमाण प्रस्तुत किया, परन्तु उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त न हुई। सबसे अधिक दुःखप्रद बात यह हुई कि मौलाना साहब का एक बहुत बड़ा शागिर्द, जिसकी शिक्षा पर उन्होंने बड़े परिश्रम से काम लिया था और उसपर अपना अमूल्य समय लगाया था, वही विश्वासघाती एक सरकारी जासूस निकला। वह कुछ टकों के लिए सारी बातें सरकार तक पहुंचा दिया करता था। अब विचार कीजिए—जिस जाति के शिक्षित वर्ग की धन-लिप्सा, स्वार्थ-परता और पार्थिव तृष्णा की यह दशा हो कि तुच्छ ठीकरों के लिए अपने देश और जाति को बेचने पर तुल जाएं, उनमें देशभक्ति और जाति हित-चिन्ता और सेवा का भाव कैसे पैदा हो सकता था।

मुसलमानों की तबाही व बरबादी का कारण भी यही था कि उनको धन से प्यार हो गया और जब यह चीज़ उनमें पैदा हो गई, तो वे लोग ख़ुदापरस्ती छोड़कर ज़रपरस्त (धनसेवी) बन गए और संसार में निन्दित और तिरस्कृत हो गए। फ़तहपुरी में मौलवी सैफ़ुर्रह-मान से भी भेंट होने के पश्चात् उनसे अच्छी जान-पहचान हो गई थी। वे हमारे इलाक़े के रहनेवाले थे, किन्तु लम्बे समय से फ़तहपुरी के अरबी मदरसे के प्रधानाध्यापक थे। उस ज़माने में अंग्रेज़ों ने लोगों के दिलों में बड़ा भय उत्पन्न कर दिया था और लोग सरकार से बहुत भयभीत थे। हम लोग छिप-छिपकर कभी-कभार विचार-विमर्श के लिए देवबन्द जाया करते थे।

१९१२ ई० में माता-पिता ने मेरा विवाह कर दिया। और १९१३ ई० में मेरे यहां बेटे ग़नी का जन्म हुआ। उस ज़माने में हमारे प्रान्त में जलसे-जुलूस की बात कोई नहीं जानता था। और यदि कोई इन बातों का ख़याल भी दिल में लाता था, तो वह डर के मारे उनका प्रबन्ध कर नहीं पाता था। १९१३ ई० के समाचारपत्रों में हमने बड़े-बड़े लेख और घोषणाएं देखीं कि आगरा में 'मुस्लिम लीग' का एक बहुत बड़ा वार्षिक सम्मेलन होगा और उसके प्रधान सर इब्राहीम रहमतुल्लाह होंगे और सम्मेलन में सर आग़ा ख़ां तथा मौलाना अब्बुलकलाम आज़ाद भी भाग लेंगे। हमारे दिल में इस सम्मेलन को देखने का शौक़ पैदा हुआ और मैं और मेरे साथी आगरा के लिए चल पड़े और वहां पहुंचकर मुस्लिम लीग के जलसे में शामिल हुए। मुस्लिम लीग के प्रधान का अभिभाषण हमने सुना और सर आग़ा ख़ां, मौलाना अब्बुलकलाम

आज़ाद और अन्य बहुत-से वक्ताओं के भाषण भी सुने। सम्मेलन बहुत शानदार था और इसमें भाग लेकर हमने बहुत सीखा और समझा। जलसे की समाप्ति के उपरान्त हम वापस चले आए। आगरा से दिल्ली पहुंचे और मौलवी फ़ज़्लुर्रहमान के साथ मैंने कुछ दिन दिल्ली में गुज़ारे। इसी अवधि में मैं बीमार हो गया और हम दिल्ली से अपने गांव लौट आए।

५

१६१४ ई० में शेख़ुलहिन्द साहब का एक पत्र मुझे मिला। उसमें लिखा था कि पत्र देखते ही मैं देवबन्द चला आऊं। मैं, मौलवी फ़ज़्ल महमूद साहब और फ़ज़्ल रब्बी साहब ने देवबन्द के लिए प्रस्थान किया। जब हम देवबन्द पहुंचे, तो वहां अन्य कई मौलवी भी हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। विचार-विमर्श इस बात पर चल रहा था कि हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए सीमा प्रान्त के आज़ाद इलाक़े में एक केन्द्र स्थापित किया जाए, जहां देश की स्वाधीनता के उद्देश्य से अंग्रेज़ों के मुक़ाबले के लिए एक व्यवस्था की जाए और संघर्ष आरम्भ किया जाए।

इससे पहले भारत के इन लोगों के दल का ख़याल यह था कि बुनेर के आज़ाद इलाक़े में मुजाहिदों (धर्म के लिए लड़नेवालों) का जो केन्द्र है, वह शायद एक बहुत बड़ी शक्ति से सम्पन्न है। लेकिन वस्तुतः इस सम्बन्ध में हिन्दुस्तान के लोगों को भ्रम में डाल रखा गया था। वह केन्द्र कोई शक्ति नहीं था और इस केन्द्र के लोग इतने बेकार थे कि इस आज़ाद इलाक़े में जो लोग इनके पास-पड़ोस में रहते थे, उनमें भी इन्होंने कोई सम्पर्क पैदा नहीं किया था और न ही इन्होंने कोई तबलीग़ (धर्म-प्रचार) या अन्य काम किया था।

उन लोगों की एक अत्यन्त छोटी सी संस्था थी, जिसे हिन्दुस्तान से रुपया मिला करता था और वे मज़े उड़ाया करते थे। उनका कोई भी काम-धन्धा नहीं था। वे प्रस्तुत-भक्षी थे। उनका एक अमीर था, जिसका नाम नियामतुल्लाह था। वह हमारे सीमा प्रान्त का निवासी था। इस प्रान्त की ख़ुफ़िया पुलिस के बड़े अधिकारी शार्ट से उसकी मिलीभगत थी। उनमें कुछ लोग जासूस थे। मुजाहिदों की इस छोटी-सी संस्था में वे लोग शामिल थे, जो सिखों के मुक़ाबले के लिए सैयद अहमद और सैयद इस्माईल साहब शहीद के साथ भारत के बरेली नगर से आए थे। जब सैयद अहमद साहब और सैयद इस्माईल साहब हज़ारा

के सिखों के हाथों शहीद हो गए, तो उनके ये बाक़ी साथी बुनेर के इस आज़ाद इलाक़े में आ गए और वहां आबाद हो गए। जब इन लोगों के वास्तविक हालात का भारत के लोगों को पता लग गया कि वे फ़ज़ूल लोग हैं, तो शैख़ुलहिन्द के दल को एक नया केन्द्र स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव हुई। अन्त में पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद यह निश्चय हुआ कि मैं और फ़ज़्ल महमूद साहब बाजोड़ की उन आज़ाद जातियों में चले जाएं और वहां एक सुरक्षित स्थान केन्द्र के लिए तलाश करें और कुछ दिनों के पश्चात् इस केन्द्र के निरीक्षण के लिए मौलवी अबीदुल्लाह साहब सिन्धी जाएं।

इस निश्चय के बाद हम लोग वापस अपने गांव आ गए। फिर कुछ दिनों के बाद मैं और मौलवी फ़ज़्ल महमूद साहब गुप्त रूप से बाजोड़ चले गए। तख़्तबाई से हम लोग रेलगाड़ी में बैठ गए और दरगई स्टेशन पर उतर पड़े। इस जगह से हम टमटम में सवार हुए। जब मालाकण्ड के दरवाज़े पर पहुंचे, तो हमें बड़ी चिन्ता हुई, क्योंकि इस स्थान पर पुलिस चौकी बैठी हुई थी और वहां प्रत्येक व्यक्ति की, चाहे वह पैदल होता या सवार, तलाशी ली जाती थी। छानबीन और पूछताछ के बाद यदि किसीपर ज़रा भी संदेह होता था, तो उसे पकड़ लिया जाता था। मेरी शक्ल-सूरत और डीलडौल छिपाने के नहीं थे। इसलिए मुझे सबसे अधिक चिन्ता थी कि मैं कैसे इस चौकी से बच निकलूंगा। मैं टम-टम के पिछले भाग में बैठा हुआ था और मैंने अपने शरीर को पूर्णतः चादर से ढांप रखा था।

पुलिस चौकी पर पहुंचकर हमारी टमटम खड़ी हो गई और हमें देखने के लिए एक सिपाही आ गया। यह शाम का समय था और अंधेरा हो चला था। मेरे दूसरे साथी टमटम से उतर पड़े और मैं गठरी-सा बना ऊपर ही बैठा रहा। टमटम वाला बड़ा होशियार था। उसने सिपाही से कह दिया कि साहब! कुछ नहीं है। वह सिपाही निकट आया। मेरे नीचे-ऊपर नज़र दौड़ाकर बोला, "जा सकते हो।" मैं बहुत प्रसन्न हुआ कि एक बहुत बड़ी बला से छुटकारा मिल गया।

हम बट खेल पहुंचकर टमटम से नीचे उतर पड़े। समय बहुत हो चुका था। हमने रात वहीं व्यतीत की। बहुत सवेरे मुल्ला की अज़ान के समय उस स्थान से चल पड़े। चकदरे के पुल को पार कर रहे थे कि वहां भी सिपाही खड़े थे। लेकिन उनसे बड़ी आसानी से गुज़र गए। सारा दिन पैदल चलते रहे। शाम के समय नदी के किनारे पहुंचे। नदी के दूसरे किनारे पर मौलवी साहब का गांव था। सर्दी का मौसम था।

नदी में पानी कम था। हमने नदी को पार कर लिया। दिन के बहुत थके-मांदे और भूखे भी थे। खाना खाने के पश्चात् सो गए। बहुत थके होने के कारण रात हमने इसी गांव में विश्राम किया और दूसरे दिन फ़ज़्ल महमूद साहब स्वयं तो मौलवी अबीदुल्लाह सिन्धी के लिए वहीं रुक गए और मेरे साथ उन्होंने अपना फुफेरा भाई भेज दिया। वह 'दीर' का इलाक़ा था। हम उस स्थान से बावड़ा चले गए।

इसके बाद चमरकन्द पहुंचकर खड्डे के मुल्ला साहब के पास चले गए। वे स्वयं तो संसार छोड़ चुके थे, लेकिन उनके एक शेख़ साहब वहां मौजूद थे। वे बहुत अच्छे व्यक्ति थे। वह छोटा-सा स्थान पहाड़ के ऊपर था, लेकिन वह बहुत रमणीय था। शेख़ साहब ने वहां हड्डे साहब का एकान्त-गृह और लंगरखाना दिखाया। इस स्थान पर और कोई भी नहीं रहता था। केवल शेख़ साहब का एक छोटा-सा घर था। शेख़ साहब ने अपने घर में शहद की मक्खियां भी पाल रखी थीं, और इसी धन्धे पर उनका निर्वाह होता था। हमने शेख़ साहब के यहां रात व्यतीत की। प्रातः हम उनसे विदा हुए और कोटकी पहुंच गए। कोटकी के ख़ान लोग ज़िगरावर ख़ां और ज़िड़ावरख़ां बहुत भले ख़ान थे और अंग्रेज़ यहां भी क़बीलों पर छापे मारते थे, तो ये लोग अंग्रेज़ों के विरुद्ध प्रत्येक लड़ाई में भाग लिया करते थे।

इस स्थान से हम सालार ज़इयों में आ गए और वहां से मामुन्दों में चले गए। ये दोनो क़ौमें बाज़ोड़ की आज़ाद क़ौमें थीं और इनके लोग बहुत अच्छे पख़्तून थे। पख़्तूनों की अन्य जातियों और क़बीलों की तरह ये लोग फिरंगियों के प्रभावाधीन न थे, और न ही उनसे पैसे या वेतन लिया करते थे, प्रत्युत जहां कहीं भी अंग्रेज़ों से जंग होती थी, ये उसमें भाग लेते थे।

हमने शिगरगुल, गबरे, किट कोट और इसी प्रकार और भी कई गांवों में भी रातें गुज़ारीं तथा यह सारा इलाक़ा गांव-ब-गांव देखा। केन्द्र स्थापित करने के लिए हमने मामुन्दों के इलाक़े में 'ज़गै' नाम का गांव पसन्द किया। यहां हम मौलवी अबीदुल्लाह साहब सिन्धी की प्रतीक्षा करने लगे। जब एक-दो दिन तक प्रतीक्षा कर चुके और वे न आए, तो हमने यह सोचा कि ऐसा न हो कि लोगों को हमपर किसी प्रकार संदेह पैदा हो जाए, मैंने एक चिल्ला काटने का निश्चय कर लिया। हमने मसजिद में डेरा लगा रखा था। उस मसजिद में एक छोटी-सी कोठरी थी। मैंने उसी कोठरी में चिल्ला आरम्भ कर दिया। जब चिल्ला गुज़र जाने पर भी अबीदुल्लाह साहब न आए, तो हम इस जगह

से प्रस्थान कर गए। चलते-चलते मालाकण्ड पहुंच गए। यहां तक तो फ़ज़ल महमूद साहब का फुफेरा भाई मेरे साथ रहा। यहां पहुंचकर मैंने उसे विदा कर दिया।

मालाकण्ड के पोलिटिकल एजेंट ने वहां के लोगों में ऐसा आतंक फैला रखा था कि वहां के बड़े-बड़े आदमी भी जब किसी अंग्रेज़ को देख लेते, तो उनके पैर कांपने लगते थे और वे दूर से ही उसके आगे झुक जाते थे और बड़े आदर से उसे सलाम करते थे। इसका एक कारण यह भी था कि यदि कोई व्यक्ति अंग्रेज़ के सामने आ जाता था और वह अंग्रेज़ को सलाम न करता था, तो उसे गिरफ़्तार कर लिया जाता था। इसके बाद उसे 'काठ' में डाल दिया जाता था। काठ एक बड़ी वज़नी और लम्बी लकड़ी होती थी। उसमें छेद होते थे। उन छेदों के भीतर आदमी के पांव दबा अर्थात् फंसा दिए जाते थे और ऊपर से लकड़ी के ढकने को ठोंक-ठोंककर बन्द कर दिया जाता था। इस प्रकार वह आदमी उस काठ में फंसा पड़ा रहता था। मैं भी डरता-डरता मालाकण्ड से दरगई की ओर नीचे उतर गया और दरगई पहुंचकर रेलगाड़ी में सवार हो गया और तख़्त बाई चला गया। तख़्त बाई से मैं अपने कृषि-फार्म महमद नाड़ी गांव में आ गया। वहां मैंने रात गुज़ारी और दूसरे दिन अपने पैतृक गांव उतमान ज़ई चला आया।

दूसरे दिन प्रातः बहुत-से लोग मेरा स्वागत करने के लिए आए, क्योंकि जाते समय मैंने यह बात मशहूर कर दी थी कि मैं अजमेर शरीफ़ जा रहा हूं।

थोड़े दिनों के बाद यूरोप का प्रथम महायुद्ध आरम्भ हो गया और आज़ाद इलाक़े में केन्द्र स्थापित करने की हमारी योजना वहीं धरी की धरी रह गई। फिर इसके बाद हमें एक-दूसरे का कोई हाल-समाचार मालूम न हुआ। शैख़ुलहिन्द महमूद अलहसन हज के लिए मक्का शरीफ़ चले गए। उन्हें मक्का में शरीफ़-ए-मक्का (मक्का के शासक) ने पकड़ लिया और अंग्रेज़ों के हवाले कर दिया। अंग्रेज़ों ने शैख़ुलहिन्द को माल्टा में क़ैद कर दिया, क्योंकि वे तुर्कों की ख़िलाफ़त के हक़ में थे। मौलवी अबीदुल्लाह साहब सिंधी अफ़ग़ानिस्तान चले गए और मौलवी सैफ़ुर्रहमान सरहद की ओर वापस आ गए और हाजी तरंग ज़ई साहब से मिले, जो वहां से हिज्रत करके बुनेर के आज़ाद इलाक़े में चले गए।

हाजी साहब के साथ मेरे कर्मनिष्ठ साथी मौलवी ताजमुहम्मद, जो ग़दर के विद्यालय के व्यवस्थापक थे, फ़ज़ल रब्बी, मौलवी फ़ज़ल

महमूद और मौलवी अब्दुल अज़ीज़[1] भी हिजरत कर गए। कुछ दिन के बाद मैं भी लुक-छिपकर उनके पीछे बुनेर चला गया। बुनेर के लोगों ने हाजी साहब तरंग ज़ई को एक बहुत ऊंची सतह पर बहुत सुन्दर स्थान दे रखा था और उसके निर्माण के लिए बहुत-सी इमारती लकड़ी भी ले आए थे। लेकिन उस इलाक़े के जो मियां, मुल्ला और मज़हबी बुज़ुर्ग थे, वे हाजी के आगमन से प्रसन्न नहीं थे, क्योंकि उनके आने से लोगों का पूरा ध्यान उनकी ओर खिंच गया था और उनकी अपेक्षा स्थानीय नाम के धर्म-नेताओं का कोई महत्त्व नहीं रह गया था। इसलिए उन लोगों ने हाजी साहब के विरुद्ध प्रचार आरम्भ कर दिया कि आया वे यहां जिहाद के लिए आए हैं या जायदाद (सम्पत्ति) बनाने के लिए।

इस प्रचार से हाजी साहब और उनके सुपुत्र बादशाह गुल बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने जंग करने का इरादा कर लिया। मैंने उनके इस इरादे का कड़ा विरोध किया। मैंने उन्हें समझाया कि "ये लोग बहुत स्वार्थी हैं। इनकी बातों के पीछे मत जाइए। आप अपना काम करते रहिए। यह जाति अंग्रेज़ों का मुक़ाबला करने के योग्य नहीं है। यदि आप लोगों ने अंग्रेज़ों से युद्ध छेड़ दिया, तो ये लोग युद्ध में असमर्थ होने के कारण सहायक और हितकर सिद्ध नहीं होंगे। मुझे तो ऐसा लगता है कि ये लोग आप लोगों को गिरफ़्तार करके अंग्रेज़ों के हवाले कर देंगे।" परन्तु मेरा यह परामर्श हाजी साहब को अपने इरादे से बाज़ न रख सका और जब मैं वापस चला आया तो कुछ ही दिनों पश्चात् उन्होंने अंग्रेज़ों से लड़ाई छेड़ दी। बुनेर के लोग भला अंग्रेज़ों से कहां टक्कर ले सकते थे? ठीक वही कुछ हुआ, जो मैंने कहा था।

बुनेर के लोगों ने हाजी साहब को पकड़ने की कोशिश की, ताकि उन्हें अंग्रेज़ों के हवाले कर दें। लेकिन हाजी साहब को उनके षड्यन्त्र का पता चल गया और वे रात ही रात वहां से निकल गए और मामुन्दों के कबीले में पहुंच गए। परन्तु अंग्रेज़ों ने इससे भी एक अनुचित लाभ उठा लिया। क्योंकि वे तो यह नहीं चाहते थे कि पठानों के बच्चे विद्या के भूषण से अलंकृत हों। उन्हें तो हमारे ये क़ौमी मदरसे बहुत नापसन्द थे। अंग्रेज़ इन मदरसों को अपने लिए हानिकर समझते थे। अस्तु, हाजी तरंग ज़ई की अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ाई ने अंग्रेज़ों के लिए यह बहाना और अवसर पैदा कर दिया कि वे हमारे यहां के समस्त क़ौमी मदरसों को

---

१. मौलवी अब्दुल अज़ीज़ अंग्रेज़ों के शत्रु थे, यहां तक कि वे किसी अंग्रेज़ को देखते, तो आंखें बन्द कर लेते। (फ़ारिग़ बुख़ारी) मौलाना साहब अंग्रेज़ों के षड्यन्त्र से सवात के इलाक़े में क़त्ल करा दिए गए।

बन्द कर दें। उन्होंने ये मदरसे तो बन्द कर ही दिए और साथ ही उनके समस्त अध्यापकों को गिरफ़्तार करके डेरा इस्माइल खां के 'अभ्यस्त अपराधियों' की जेल में डाल दिया। अंग्रेज़ों ने हमारे लोगों में ऐसा भय और आतंक फैला दिया था कि कोई भी व्यक्ति क़ौम का नाम लेने का साहस नहीं कर सकता था और यदि कभी-कभार कोई ऐसी बात मुंह से निकालता भी, तो उसे जेलख़ाने में ठूंस दिया जाता था।

दिसम्बर १९१५ ई० में मेरे बेटे वली ने जन्म लिया। उस समय ग़नी लगभग तीन वर्ष का था। फिर जब पहले महायुद्ध की समाप्ति के बाद सारे देश को इंफ्लूएंज़ा की महामारी ने लपेट में ले रखा था, इन बच्चों की मां को भी इस बीमारी ने आ दबोचा और वह संसार से उठ गई। उसका निधन एक अद्भुत घटना थी। ईश्वर का एक असाधारण चमत्कार देखने में आया। वह बिलकुल भली-चंगी थी, लेकिन बेटा ग़नी इंफ्लूएंज़ा से ग्रस्त था और बेहोश पड़ा था। उसके बचने की कोई आशा नहीं थी। मृत्यु उसके सिर पर मंडरा रही थी। शाम का समय था। मैं मुसल्ला पर बैठा हुआ था। अस्र (सायं) की नमाज़ मैंने अदा कर ली थी और दुआ मांग रहा था। मरणासन्न ग़नी की चारपाई मेरे सामने पड़ी थी। इतने में ग़नी की मां आ गई। वह उसकी चारपाई के चारों ओर घूमी और उसके सिर की ओर आकर खड़ी हो गई। फिर उसने दुआ के लिए हाथ ऊपर उठा लिए और उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। वह ख़ुदा से विनम्र और करुणा-भरे स्वर में कह रही थी—"ऐ ख़ुदा! इस मासूम का कष्ट और बीमारी मुझे दे दे और इसे स्वस्थ कर दे। या ख़ुदा! इसकी बीमारी मुझे लगा दे···"

विधाता का विधान देखिए कि ज्योंही रात बीती और सवेरा हुआ, तो ग़नी धीरे-धीरे अच्छा होने लगा और उसकी मां धीरे-धीरे बीमार पड़ने लगी। अन्त में ग़नी स्वस्थ हो गया और उसकी मां ने प्राण त्याग दिए!

६

१९१८ ई० में पहला महायुद्ध समाप्त हो गया। भारत के लोगों ने थोड़ा कुछ सुख का सांस लेना आरम्भ किया। लेकिन शीघ्र ही एक नया उपद्रव खड़ा हो गया। भारत के जनसाधारण आशा लगाए बैठे थे कि महायुद्ध में भारतीय जवानों के असीम बलिदान और सेवाओं के बदले में उन्हें कुछ न कुछ अधिकार या राजनीतिक सुविधाएं प्रदान की

जाएंगी। परन्तु उनकी समस्त आशा-आकांक्षाएं मिट्टी में मिलकर रह गईं। सुविधाओं के स्थान पर १९१९ में रोलट ऐक्ट जैसा काला क़ानून तलवार की भांति उनके सिरों पर लटका दिया गया। फिर क्या था, सारे हिन्दुस्तान में क्रोध की लहर दौड़ गई। इस ऐक्ट के विरुद्ध प्रबल और व्यापक आंदोलन आरम्भ हो गया।

हम भी इस आंदोलन में कूद पड़े। इस ऐक्ट के विरुद्ध जब हमने दूसरा जलसा किया, तो लोगों में इतना जोश था कि जलसे में एक लाख से अधिक लोग उपस्थित हुए। इन्हीं जलसों के द्वारा पठानों में एक नया जीवन पैदा हुआ।

एक दिन इस्लामिया कालेज पेशावर के निकट स्थित तहकात गांव में जलसा होनेवाला था। हम इस जलसे में शामिल होने के लिए जा रहे थे कि रास्ते में हमें पता चला कि मार्शल ला लागू हो गया है। उस समय अफ़ग़ानिस्तान और अंग्रेज़ों में भी झगड़ा चल रहा था। हम कुछ साथियों ने मार्शल ला से सुरक्षित रहने के लिए अफ़ग़ानिस्तान चले जाने का इरादा कर लिया। हमने सोचा कि पहले हम मामुन्दों में चले जाएंगे, फिर उस इलाक़े से अफ़ग़ानिस्तान चले जाएंगे। परन्तु हम कठिनाई से मामुन्दों के इलाके ही में पहुंचे थे कि मेरे पीछे मेरे पिताजी आ गए और उन्होंने हमें अफ़ग़ानिस्तान जाने से रोक दिया। वे हमें अपने कृषि-फ़ार्म महमंद नाड़ी ले आए। वहां हम सरकार के भय के मारे कहीं छिपे रहते थे और रात के समय घर आते थे।

आख़िर पुलिस को पता लग गया। उसने आकर मुझे गिरफ़्तार कर लिया और मुझे मरदान ले जाकर जेल में डाल दिया। दूसरे दिन मुझे पुलिस-कप्तान के सामने पेश किया गया। उसने आदेश दिया कि मुझे बेड़ियां पहना दी जाएं। मुझे फिर जेलखाने ले जाया गया। लेकिन सारे जेलखाने में मेरे पांव के नाप की बेड़ियां न मिलीं, क्योंकि उस ज़माने में मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा था और मैं खूब हृष्ट-पुष्ट था। मेरे पांव के माप की बेड़ियां जो न मिलीं तो अंग्रेज़ के डर के मारे जेल के अधिकारियों ने मेरे पांव में ऐसी बेड़ियां डाल दीं, जो मेरे पांवों में बड़ी कठिनाई से आती थीं।

अब मुझे मोटर में बिठाया गया। मेरे साथ इसी मोटर में सुपरिं-टेंडेंट पुलिस और मरदान के असिस्टेंट कमिश्नर भी बैठ गए। वे मुझे पेशावर ले गए और वहां मुझे बड़े कप्तान के सामने पेश किया गया। इसके बाद मुझे छावनी हवालात में भेज दिया गया। जिस समय पुलिस मुझे हवालात की ओर ले जा रही थी, तो बेड़ियां, जो बलपूर्वक मेरे

पांवों में पहनाई गई थीं, मेरे पांवों को रेतने लगीं। मेरे पांव खून से लथ-पथ हो गए। उनकी चमड़ी बिलकुल उधड़ गई। दूसरे दिन मेरे पास एक पुलिस इंस्पेक्टर आया। वह एक आफ़रीदी पश्तून था। उसने मुझसे कहा, "बाहर निकल आओ। तुम्हारी पेशी की तारीख़ है।"

मैंने उसे उत्तर दिया, "भई, मेरे तो ये पांव बिलकुल ज़ख़्मी हैं और मैं पैदल नहीं चल सकता।"

पुलिस इंस्पेक्टर बिगड़कर मुझसे कहने लगा, "अच्छा, जलसे तो कर सकते हो, लेकिन पेशी के लिए अदालत तक नहीं जा सकते।"

मैंने उसके साथ बहस में पड़ना उचित न समझा, अतः मैंने केवल इतनी बात कह दी, "मैं चलने में समर्थ नहीं हूं। यदि टमटम ले आओ, तो मैं चला जाऊंगा।"

पुलिस इंस्पेक्टर टमटम ले आया और उसमें मुझे बिठाकर अदालत में ले गया। मुझे अदालत के कमरे से बाहर बिठा दिया गया। मुझसे पहले एक अन्य क़ैदी को अदालत के सामने पेश किया गया। वह क़ैदी हमारे गांव का रहनेवाला था। उसने तार काटा था और इस अपराध में दो वर्ष के लिए क़ैद था। उसे आज फिर अदालत में क्यों पेश किया गया था?—इस बात का रहस्य उस समय खुला जब पेशी के बाद उस व्यक्ति को मैंने जेल में देखा और उसने मुझे बताया कि उसको इस उद्देश्य के लिए इस फ़ौजी अदालत में ले जाया गया था कि वह इस बात की साक्षी दे कि उसने तार काटने का अपराध अब्दुल ग़फ़्फ़ार (मेरे) के कहने पर किया था। उसे यह विश्वास दिलाया गया था कि यदि वह ऐसी साक्षी दे देगा, तो उसको दो वर्ष की क़ैद की छूट दे दी जाएगी। परन्तु उस व्यक्ति ने ऐसी गवाही देने से इन्कार कर दिया।

इसके बाद मुझे पेश किया गया। उस समय एक के स्थान पर तीन अंग्रेज़ अदालत में बैठे हुए थे। वे मुझसे कई तरह के प्रश्न करने लगे। मैं भला क्या उत्तर देता। हमने तो जलसों में कुछ किया ही नहीं था। केवल प्रस्ताव ही स्वीकृत किए थे।

एक अंग्रेज़ ने मुझसे प्रश्न किया, "क्या तुम सरकार के विरुद्ध लोगों में घूमा-फिरा करते थे?"

मैंने उसे उत्तर दिया, "जिन लोगों के पीछे मैं फिरता हूं, वे सब तुम्हारे खान, मलिक या चीफ़्स हैं और सरकार के वफ़ादार अर्थात् भक्त हैं।"

प्रश्न पूछने के बाद उन्होंने फिर मुझे बाहर भेज दिया। मुझे बाहर कुछ समय तक बिठाया गया, क्योंकि भीतर वे मेरे विरुद्ध फ़ैसला कर

रहे थे।

उन दिनों हमारे इलाक़े के चीफ़ कमिश्नर सर रोस केपल थे। उन्हें पठान बहुत पसन्द थे और उनसे सहानुभूति भी रखते थे। चूंकि मार्शल ला के सबसे बड़े अधिकारी वे स्वयं ही थे और समस्त अधिकार उन्हींके हाथ में थे, इसलिए वे किसीको ज़ोर-ज़ुल्म करने की आज्ञा नहीं देते थे।

एक घंटे के बाद सिपाही मुझे फिर जेलख़ाने ले आए और मुझे वहां एक ऐसी बैरक में बन्द कर दिया गया, जिसमें बहुत-से काबुली पठान भी बन्दी थे। कुछ दिनों के पश्चात् अकस्मात् मेरे वयोवृद्ध पिता अपने सम्बन्धियों और उस जगह के कुछ साथियों को लेकर वहां आ गए। अब्बाजान ने ज्योंही मुझे देखा, तो वे बहुत ख़ुश हुए, क्योंकि बाहर यह बात फैल गई थी कि मुझे फांसी दे दी गई है।

उन्होंने मुझे एक घटना के बारे में बताया कि उधर सेना गई थी और उसने उतमान ज़ई गांव को घेर लिया था। गांव के सभी लोगों को मदरसे के मैदान में इकट्ठा कर लिया गया था। फ़ौज के साथ तोपें भी थीं। जब उसने गांव के लोगों को इस प्रकार एक स्थान पर बिठा दिया था, तो तोपों के मुंह उनकी ओर फेर दिए थे और गोरे तोपची तोपों पर चढ़ गए थे। वे तोपों से ऐसी आवाज़ें पैदा करने लगे थे, जैसी उनके दग़ने से पहले पैदा होती हैं। लोगों को ऐसा लगा था कि उन्हें तोपों से उड़ा दिया जाएगा। उन्होंने क़ुरान की आयतें पढ़ना आरम्भ कर दिया, लेकिन तोपों से गोले न बरसे और न ही बन्दूकों से गोली चली। इस प्रकार बला सिर से टल गई। लेकिन इससे लोगों में भय और आतंक फैल गया। ख़ैर, ज़िन्दगियां तो बच गईं, लेकिन इन फ़ौजियों ने गांव में लूट-मार करने में संकोच नहीं किया। हमारे घर से स्वयं एक अंग्रेज़ एक शिकारी बन्दूक उठा ले गया।

डिप्टी कमिश्नर ने हमारे गांव के लोगों पर तीस हज़ार रुपये सामूहिक जुर्माना किया था, किन्तु पुलिस और ख़ान बहादुर उमर ख़ां ने ज़ोर-ज़ुल्म के द्वारा तीस हज़ार रुपये के स्थान पर एक लाख से भी अधिक रुपया लोगों से वसूल किया था। एक सौ पचास व्यक्ति गिरफ़्तार कर लिए गए थे। इनमें से एक सौ बंदी बन्धक घोषित किए गए, और कहा गया था कि जब जुर्माना प्राप्त हो जाएगा तब उन्हें मुक्त किया जाएगा।

उस समय पुलिस ने बहुत कोशिश की और बाद में भी करती रही कि हमें अफ़ग़ानिस्तान के उपद्रव से सम्बद्ध कर दे। उसने हममें से एक व्यक्ति को, जिसका नाम अहमद उस्ताद था, सरकारी गवाह बन जाने

के लिए तैयार भी कर लिया था। लेकिन पुलिस अपने उद्देश्य में सफल न हुई; क्योंकि चीफ़ कमिश्नर रोस केपल हमारे विरुद्ध मुक़द्दमा नहीं चलाना चाहते थे; तो भी हमारे गांव के प्रायः खानों को जेल में भेज दिया गया था। लेकिन एक ख़ान, जिसका नाम मुहम्मद उमर खां था, अंग्रेज़ों का ऐसा पिट्ठू था कि उस व्यक्ति ने पुलिस के साथ षड्यन्त्र करके लोगों पर बहुत अत्याचार किए और लोगों से तीन-तीन बार जुर्माना वसूल किया।

जब जुर्माना अदा हो गया, तो वे एक सौ व्यक्ति रिहा कर दिए गए और साढ़े तीन महीनों के बाद वे दूसरे बन्दी भी छोड़ दिए गए, जो गांव पर चढ़ाई के समय पकड़ लिए गए थे। केवल मैं ही एक अकेला रह गया था। परन्तु छः महीने के पश्चात् मुझे भी रिहा कर दिया गया। कष्ट और यातनाएं तो हमने सहन कर लीं, पर इससे हमारी जाति को एक बहुत बड़ा लाभ पहुंचा, वह यह कि इस कारण से पठानों में राजनीतिक जीवन का आरम्भ हो गया।

मैंने अपने जीवन में इस समय तक दो मार्शल ला देखे हैं। एक १९१९ में (जिसकी चर्चा ऊपर की गई है) अंग्रेज़ों के शासन-काल में और दूसरा पाकिस्तान बन जाने के पश्चात् १९५८ में। इन दोनों मार्शल ला के विषय में मेरी ओर से कुछ प्रकाश डाले जाने की आवश्यकता मालूम होती है, ताकि दोनों सरकारों की नीति की तुलना की जा सके।

अंग्रेज़ों ने जब मार्शल ला लगाया था, उस समय एक ओर तो अफ़ग़ानिस्तान का उनसे युद्ध हो रहा था और दूसरी ओर उपद्रव और हिंसात्मक कार्यवाहियां इतना ज़ोर पकड़ चुकी थीं कि अंग्रेज़ों ने देश में शान्ति की स्थापना और अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए इसके सिवा और कोई उपाय न देखा था। उन्होंने यह मार्शल ला केवल दो-तीन महीने जारी रखा था।

अब ज़रा पाकिस्तान के मार्शल ला का भी विश्लेषण कर लिया जाए। पाकिस्तान में पूर्ण शान्ति थी। सरकारी ढांचा, अदालती व्यवस्था और जन-संगठन व प्रतिष्ठान सब अपनी-अपनी जगह सुरक्षित थे कि अकस्मात् मार्शल ला लगा दिया गया। इस मार्शल ला का उद्देश्य यह था कि कुछ विशेष व्यक्तियों का शासन अथवा सरकार बलपूर्वक ठूंस दी जाए, और लोगों को उनके प्रजातांत्रिक अधिकारों से वंचित कर दिया जाए तथा चुनाव के मार्ग में भी अटल बाधा डाल दी जाए।

यह मार्शल ला लगभग चार वर्ष तक लागू रहा। परिणाम की दृष्टि

से ये दोनों मार्शल ला एक ही प्रकार के सिद्ध हुए हैं। लेकिन अंग्रेज़ों के मार्शल ला ने हिन्दुस्तान के जनसाधारण में यह भाव जाग्रत कर दिया कि उन्हें विदेशी सरकार की ग़ुलामी से मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए। फलस्वरूप देश में स्वाधीनता के आन्दोलन दिन-प्रतिदिन फैलने और शक्तिशाली होने लगे और अन्त में अंग्रेज़ विवश हो गए कि भारत को आज़ाद कर दें और यहां से निकल जाएं। पाकिस्तान के मार्शल ला ने भी जनसाधारण में यह भाव पक्का कर दिया है कि पाकिस्तान की सरकार जनसाधारण की प्रतिनिधि नहीं है, प्रत्युत बलपूर्वक अत्याचार और अन्याय के द्वारा उनकी पीठ पर सवार हो गई है। जिस तरह अंग्रेज़ अपने इस उद्देश्य में सफल न हो सके कि दमन और अत्याचार की सहायता से अपनी सत्ता अक्षुण्ण रख सकें, उसी प्रकार पाकिस्तान की शासक टोली भी अपने उद्देश्य में कदापि सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगी और एक न एक दिन यह भी उसी प्रकार ख़त्म हो जाएगी, जैसे अंग्रेज़ हो गए थे।

मैं जब अंग्रेज़ों की क़ैद से रिहा होकर आया, तो मैंने लोगों में एक नया जोश और उत्तेजना देखी और हम जहां कहीं भी हर्ष या शोक के अवसरों पर इकट्ठे होते, वहां लोग जाति और देश की बातें करते दिखाई देते। अब लोगों के दिलों में पहले-सा भय भी नहीं रहा था। उस समय खिलाफ़त आंदोलन बड़े ज़ोर-शोर से आरम्भ हो चुका था। भारतीय लोग भी बड़ी विचित्र जाति हैं। विदेशों में इनकी बड़ी रुचि रहती है। जितनी रुचि भारत के मुसलमानों ने इस आंदोलन में ली थी, उतनी रुचि उन्होंने यदि अपने देश के राष्ट्रीय आंदोलन में ली होती, तो आज ये संसार की जातियों में इतने पिछड़े हुए और अवनत दशा में न रहते। लेकिन फिर भी खिलाफ़त आंदोलन ने इन्हें बहुत लाभ पहुंचाया था और वह यह कि इनका एक संगठन बन गया। शहरों की तो बात ही क्या है, गांवों में भी खिलाफ़त कमेटियां स्थापित हो गई थीं। परन्तु इस बात का अफ़सोस अवश्य है कि ये उस संगठन को क़ायम नहीं रख सके। कारण यह था कि लोगों में अभी संगठन को अक्षुण्ण रखने की योग्यता पैदा नहीं हुई थी। और जब तक यह योग्यता पैदा नहीं होती, तब तक कोई भी जाति व देश संगठन क़ायम नहीं कर सकता। यह योग्यता पैदा करने के लिए दो चीज़ों की बहुत आवश्यकता होती है। प्रथम, यथार्थ आस्था, सिद्धान्त या मार्ग और द्वितीय, उस मार्ग या सिद्धान्त पर चलने के लिए सच्चे लोगों का आगे आना, जो उस मार्ग और सिद्धान्त के ध्वजा-वाहक बन जाएं।

७

मैं जब जेल से मुक्त हुआ, तो माता-पिता ने मेरी सगाई कर रखी थी। उनकी इच्छा थी कि मेरा दूसरा विवाह हो जाए। इसलिए मैं और मेरा मित्र मुहम्मद अब्बास खां सौदा-सुल्फ़ लेने के लिए पेशावर रवाना हो गए। जब हम सरदरयाब पहुंचे, तो पुल के किनारे हमारे लिए पुलिस बैठी हुई थी। उसने हमें पकड़ लिया और हमें वापस चार सद्दा थाना में ले आए। इस स्थान से हमारा चालान फिर पेशावर कर दिया गया। पुलिस अधिकारियों के साथ जब हम पेशावर पहुंचे, तो सीधे सी० आई० डी० के बड़े अधिकारी शार्ट के बंगले ले जाए गए। हमें बंगले के बाहर सड़क पर खड़ा कर दिया गया। एक पुलिस अधिकारी भीतर चला गया और उसने शार्ट के पास हमारी रिपोर्ट कर दी। हम सड़क पर खड़े थे। अन्य पुलिस अधिकारी भी हमारे साथ खड़े थे। शाम का समय था और दिसम्बर का महीना। खूब कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। हम इस भीषण सर्दी में बाहर खड़े थे और उधर फिरंगी के लिए कमरे के भीतर आग जल रही थी और वह बड़े आराम से आग के सामने बैठा हुआ था। उसमें इतनी मानवता भी नहीं थी कि हमारे कष्ट का तनिक भी अनुभव करता।

मेरे साथी अब्बास खां ने मुझसे पूछा, "हमारी यह गिरफ़्तारी किस अपराध में हुई है? और जब हमें पेश किया जाएगा, तो हम क्या कहेंगे?"

मैंने कहा, "जो बात तुमसे पूछी जाए, सच-सच कह देना। सावधान, झूठ मत बोलना।"

रात काफ़ी गुज़र चुकी थी। हठात् अब्बास के नाम से एक आवाज़ आई। उसे भीतर ले जाया गया और बाद में मुझे भी शार्ट साहब के सामने पेश किया गया। शार्ट स्वभाव का बड़ा कठोर व्यक्ति माना जाता था।

भीतर जाकर मालूम हुआ कि नौशहरा में, बम फेंके जाने की घटना हुई थी और मैं तथा अब्बास इसीके सम्बन्ध में गिरफ़्तार किए गए थे। शार्ट मुझसे प्रश्न करता था और मैं उनका उत्तर देता था। मैं ज़ोर-ज़ोर से बोलता था। इससे शार्ट झल्लाकर बोला, "धीरे से बात करो!"

मैंने धीरे से बोलना आरम्भ किया, तो उसने कहा, "ज़ोर से बोलो!"

मैंने उससे कहा, "यदि मैं ज़ोर से बोलता हूं, तो तुम कहते हो कि

धीरे बोलो और यदि धीरे बोलता हूं, तो कहते हो कि ज़ोर से बोलो। अच्छा यही है, पहले तुम मुझे बोलने का ढंग समझा दो।"

इस बात पर शार्ट आगबबूला हो गया। मुझसे उसने कुछ न कहा, पर पुलिस को आवाज़ देकर मुझे उसके हवाले कर दिया। मुझे सदर थाना ले जाया गया और हवालात में बन्द कर दिया गया। उस रात किसीने मुझे रोटी भी न दी और मैंने भूखों रात गुज़ारी। मेरा साथी अब्बास मुझसे अलग कर दिया गया था। उसे किसी दूसरे थाने की हवालात में बन्द किया गया। एक ओर सर्दी ग़ज़ब ढा रही थी, दूसरी ओर हवालात का फ़र्श सीमेंट का बना हुआ था। हवालात की कोठरी चारों तरफ से बन्द थी। उसमें कुछ गले-सड़े कम्बल पड़े थे, जो जूंओं से भरे थे और जिनसे बदबू आ रही थी। मुझे घृणा होने लगी। परन्तु दूसरी ओर सर्दी ने मेरा नाक में दम कर रखा था। अन्त में मैं विवश हो गया और उन्हीं कम्बलों को ओढ़कर पड़ा रहा। सवेरे उठा तो मेरे कपड़े जूंओं से अंटे पड़े थे। परन्तु 'क़हरि-दरवेश बर जानि-दरवेश'— मैं जूंओं को पकड़ता और बाहर फेंक देता। एक सप्ताह तक मैं हवालात की इसी कोठरी में बन्द रहा। इसके बाद फिर मुझे उसी फिरंगी शार्ट के सामने पेश किया गया।

जब मैं उस फिरंगी के सामने लाया गया, तो उसने मुझे छोड़ दिया।

मैंने उससे पूछा, "आख़िर मुझे यह बताया जाए कि मुझे किस आधार पर गिरफ़्तार किया गया था? और अब किस तरह मुझे रिहा किया जा रहा है?"

उसने उत्तर दिया, "मैं जांच कर रहा था।"

मैंने फिर पूछा, "क्या यह जांच मुझे गिरफ़्तार करने से पहले नहीं की जा सकती थी?"

उसने उत्तर दिया, "यह मेरी इच्छा पर निर्भर है कि पहले जांच करूं और बाद में किसी व्यक्ति को गिरफ़्तार करूं, या पहले किसी व्यक्ति को गिरफ़्तार कर लूं और बाद में जांच करूं।"

मैंने उससे कहा, "आखिर मैं इन्सान हूं। मेरे व्यक्तित्व को देखो। मुझे अकारण इतना कष्ट क्यों दिया गया है? मैं कहीं भागता तो नहीं था। तुमने जांच कर ली होती और मैं अपराधी सिद्ध हो गया होता, तो तुम मुझे गिरफ़्तार कर लेते।"

उसने छूटते ही मुझे रूखा कटु उत्तर दिया, "तुम्हारा व्यक्तित्व ही क्या है?"

मैंने कहा, "बहुत अच्छा..."
मैं बाहर निकल आया और अपने गांव चला गया।

८

१९२० में मेरा दूसरा विवाह हो गया। इसी वर्ष दिल्ली में ख़िलाफ़त कमेटी का अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ। मैं भी इस सम्मेलन में सम्मिलित हुआ। इस सम्मेलन में एक जोशीला युवक भी शामिल था। उसने 'हिज्रत' का प्रस्ताव प्रस्तुत किया और कहा, "हमें इस देश से 'हिज्रत' करना चाहिए।"

यह बात उस समय तो एक खेल प्रतीत होती थी। लेकिन यह खेल से मज़ाक़ और फिर विपत्ति का रूप धारण कर गई। इस विपत्तिजनक मज़ाक़ ने पठानों को सबसे अधिक आर्थिक और और जानी हानि पहुंचाई। सम्मेलन के पश्चात् पेशावर में हिज्रत कमेटी बन गई और जो भी व्यक्ति हिज्रत करके अफ़ग़ानिस्तान जाते थे, वे इस कमेटी के द्वारा जाते थे। यह कमेटी उनके लिए हर प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था करती थी। आरम्भ में तो अंग्रेज़ों की यह कोशिश थी कि लोग हिज्रत करके अफ़ग़ानिस्तान न जाएं, परन्तु जब सरकार ने समझ लिया कि लोग बाज़ नहीं आते, तो उसने इस बात की कोशिश शुरू कर दी कि अधिक से अधिक संख्या में लोग हिज्रत करके चले जाएं। क्योंकि इस प्रकार एक तो वे लोग अफ़ग़ानिस्तान के लिए कठिनाइयां पैदा कर देंगे, दूसरे सरकार इस बहाने से भारत से राजनीतिक कार्यकर्ताओं को भारत के बाहर निकाल सकेगी और स्वयं निश्चिन्त हो जाएगी। इस प्रकार अंग्रेज़ों ने सब प्रकार से लाभ उठाया।

अंग्रेज़ों ने हिज्रत करनेवाले लोगों के साथ-साथ अपने बहुत-से प्रशिक्षित जासूस भी अफ़ग़ानिस्तान भेज दिए। इधर हमारे मुल्लाओं और धार्मिक नेताओं ने फ़तवे देने पर ज़ोर लगा रखा था कि जो हिज्रत नहीं करेगा, उसका अपनी बीवी से सम्बन्ध विच्छेद होकर तलाक़ हो जाएगा। कहते हैं हिरणी वैसे ही तीव्रगामी होती है, जब उसे घुंघरू पहना दिए गए, फिर तो कोई आंखों से भी नहीं देख सका कि किधर चली गई। मर्दों से अधिक तेज़ औरतें हो गईं।

मैंने स्वयं हिज्रत की और यह सारा तमाशा अपनी आंखों से देखा। अमानुल्लाह ख़ां उन हिज्रत करनेवाले लोगों को ज़मीनें देता था, नौकरियां देता था और व्यापार में भी सहायता देता था। लेकिन अंग्रेज़ों

की ओर से मुहाजिरों के साथ भेजे हुए जासूस यह प्रचार कर रहे थे कि "भई हम यहां जमीनें लेने तो नहीं आए, न ही नौकरी या व्यापार करने के लिए आए हैं। हम तो यहां जिहाद करने के लिए आए हैं।"

अमानुल्लाह खां उनसे कहते थे, "भई, मैं तो अंग्रेज़ों के साथ लड़ने की शक्ति नहीं रखता। मैं तुम्हारे लिए यहां उपनिवेश बना दूंगा। तुम लोग अपने अन्दर अंग्रेज़ों से लड़ने के लिए शक्ति पैदा कर लो। मुझसे भी जिस क़दर हो सकेगा, तुम्हारी सहायता करूंगा। तुम्हें मालूम हो कि अंग्रेज़ काला सांप है। मुझे चैन और शान्ति से नींद नहीं लेने देता। उसकी ओर से मुझे हर समय यह आशंका लगी रहती है कि अभी मुझे डस लेगा।"

लेकिन अंग्रेज़ों के जासूसों ने मुहाजिरों के मध्य ऐसा काम आरम्भ कर रखा था कि तौबा ही भली। काबुल में भी हिज्रत के विरुद्ध एक ऐसा ही दल मौजूद था। वह भी छिप-छिपकर हिज्रत आंदोलन को असफल करने का प्रयत्न कर रहा था। यद्यपि अमानुल्लाह खां ने मुहाजिरों को गिरने से बचाने की हद से अधिक कोशिश की, परन्तु वे लुढ़क ही गए और हिज्रत असफल हो गई।

मैं जब काबुल में था, तो एक दिन अमानुल्लाह खां से मिलने चला गया। मैंने उनसे भेंट की। उन्हें और तो बहुत-सी ज़ुबानें आती थीं, परन्तु पश्तू नहीं जानते थे। मैंने उनसे कहा :

"मैं आपसे एक बात कहा चाहता हूं, बशर्ते कि आप आज्ञा दें।"

उन्होंने उत्तर दिया, "अवश्य कहो, आज्ञा है।"

मैंने कहा, "कितने खेद की बात है कि आपको और तो भाषाएं आती हैं, किन्तु पश्तू, जो आपकी और अफ़ग़ानिस्तान की राष्ट्रभाषा है, आपको नहीं आती।"

उन्होंने यह बात महसूस की और शीघ्र ही पश्तू भी सीख ली। उस समय नादिरशाह युद्धमंत्री थे और सरदार दाऊद खां के पिता सरदार अब्दुल अज़ीज़ खां शिक्षामंत्री थे। उन भाइयों से मेरे बहुत सम्बन्ध थे। सरदार अब्दुलअज़ीज़ खां ने एक दिन मुझसे कहा कि मैं हबीबिया कालेज देखने जाऊं। मैं वहां गया। कालेज के प्रिंसिपल की अनुमति से मैंने कुछ कक्षाओं के छात्रों से प्रश्न पूछे, "शुमा कीस्ती ?" (तुम कौन हो ?)

उन्होंने उत्तर दिया, "अफ़ग़ान हस्तेम।" (हम अफ़ग़ान हैं)

मैंने फिर उनसे पूछा, "मुल्कि-शुमा ? (तुम्हारा देश कौन है ?)
छात्रों ने उत्तर दिया, "अफ़ग़ानिस्तान ।"
"ज़ुबान शुमा ?"
"अफ़ग़ानी ।"
मैंने फिर पूछा, "शुमा दानी ?" (तुम वह भाषा जानते हो ?)
उन्होंने उत्तर दिया, "नै ।"
वे चुप हो गए और आंखें नीची कर लीं ।
मैंने उन्हें कहा, "वगो आग़ा बगो ?" (कहो आग़ा (जनाब) कहो ।)
उत्तर मिला, "नमे दानम ।" (मैं नहीं जानता ।)
अब मैंने कहा, "खूब अफ़ग़ान हस्ती, अफ़ग़ानी नमे दानी ।" (तुम अच्छे अफ़ग़ान हो कि अपनी अफ़ग़ानी भाषा नहीं जानते ।)

महमूद तर्ज़ी अफ़ग़ानिस्तान के परराष्ट्र मंत्री थे । वे एक अत्यन्त योग्य और मेधावी व्यक्ति समझे जाते थे । एक दिन उन्होंने एक बहुत विशाल भोज-सभा का प्रबन्ध किया । उसमें मुझे भी आमंत्रित किया गया । वहां भोज-सभा में उपस्थित महानुभावों में भाषा के प्रश्न पर बहस छिड़ गई । इस अवसर पर महमूद तर्ज़ी ने कहा, "हमारे लोग फ़ारसी भी बोलते हैं और पश्तू भी ।"

उत्तर में मैंने कहा, "पश्तू तो अफ़ग़ानिस्तान की राष्ट्रभाषा है । हम तो फ़ारसी बोलने से किसीको नहीं रोकते । हम तो कहते हैं कि आप लोगों ने अपनी भाषा को क्यों भुला दिया है ? और फिर यह तो बहु-संख्यकों की भाषा है । अंग्रेज़ जब हिन्दुस्तान में आए थे, उस समय हिन्दु-स्तान की एक भी भाषा उनकी अपनी भाषा नहीं थी और न ही भारत में किसीको उनकी भाषा आती थी । लेकिन उन्होंने भारत की किसी भी भाषा को सरकार के काम में नहीं अपनाया था और अपनी ही भाषा को सरकारी भाषा बनाया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज भारत में करोड़ों लोगों ने इसी भाषा को सीख लिया है । इसी प्रकार यदि आप लोगों ने अपनी और अफ़ग़ानिस्तान की राष्ट्रभाषा पश्तू अपने देश में प्रचलित की होती, और इसे सरकारी भाषा बनाया होता, तो आज आपके देश का एक भी व्यक्ति ऐसा न होता, जो पश्तू न समझता । और इस देश और जाति ने बड़ी उन्नति की होती, क्योंकि जाति की उन्नति अपनी भाषा से होती है ।"

हमारे प्रान्त से हिज्रत करके जितने भी लोग अफ़ग़ानिस्तान गए थे, वे वापस चले गए । मेरे कुछ साथी ताशकन्द चले गए और मैं कुछ

साथियों के साथ बाज़ोड़ चला आया ताकि उन आज़ाद जातियों की बस्तियों में मदरसे स्थापित किए जाएं। दीर के इलाक़े में खाला नामक एक गांव में हमने एक मदरसा खोल भी दिया और मौलवी फ़ज़्ल महमूद 'मख़्फ़ी' को उसका कार्यभारी बना दिया। उस गांव के लोगों में शिक्षा के प्रति बड़ा अनुराग है और उनके बच्चे बहुत मेधावी हैं, लेकिन शिक्षा ग्रहण करने के लिए उनके पास कोई साधन नहीं था। कॉब नामक एक अंग्रेज़, जो मालाकण्ड का पोलिटिकल एजेन्ट था और हमारे यहां असिस्टेंट कमिश्नर भी रह चुका था, पठानों के इस आन्दोलन का घोर विरोधी और शत्रु था। उसने दीर के नवाब को बुला भेजा और उसे चेतावनी दी :

"देखो ! इस शिक्षा ने हमारे लिए कितनी कठिनाइयां पैदा की हैं। अब तुम अपने लिए विपत्ति पैदा न करो। यह मदरसा, जो तुम्हारे इलाक़े में खुला है, इसे तुरन्त बन्द कर दो।"

दीर के नवाब ने वह मदरसा ढा दिया। इस प्रकार की परिस्थितियां थीं, जिनमें हमें काम करना पड़ा। और आप अनुमान कर सकते हैं कि हमें कितनी कठिनाइयों का सामना होता था। मैंने यथाशक्ति इस दिशा में अपने प्रयत्न जारी रखे और दीर तथा बाज़ोड़ दोनों राज्यों का दौरा किया। मेरे जो साथी थे, वे सब चले गए। उनमें से एक भी मेरे साथ न रहा। मैं सर्वथा अकेला रह गया था, इसलिए मैं भी वापस चला आया।

अब मेरे दिल में फिर वही विचार उठा कि वे मदरसे, जो अंग्रेज़ों ने युद्ध के ज़माने में बन्द कर दिए थे, फिर से स्थापित करने का प्रयत्न करूं। यह वह ज़माना था, जब खिलाफ़त और कांग्रेस एक ही मंच पर जलसे करती थीं। उन्हीं दिनों अलीगढ़ विश्वविद्यालय में कोई उत्सव था। मैं और मेरे दोस्त क़ाज़ी अताउल्लाह के नाम निमन्त्रण-पत्र आए। हम दोनों अलीगढ़ चले गए। हमारा यह भी विचार था कि खिलाफ़त के जलसे में भी भाग लेंगे।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय में हमारे प्रान्त के बहुत विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। हमने उनसे विचार-विनिमय किया। उनमें ऐसे विद्यार्थी भी थे, जिन्होंने असहयोग आन्दोलन के कारण कालेज छोड़ दिया था। ये दिसम्बर १९२० ई० के अन्तिम दिन थे। मैं और क़ाज़ी साहब अधिक व्यस्त रहने के कारण खिलाफ़त के जलसे में भाग लेने का अवकाश प्राप्त न कर सके और बाद को अपने गांव वापस चले आए। उन्हीं दिनों मेरे भाई डाक्टर खान साहब लगभग पन्द्रह वर्ष के बाद इंगलैंड से वापस

आ गए थे। युद्ध के ज़माने में जब उन्होंने डाक्टरी पास कर ली थी, उसी समय वहां फ़ौज में भरती हो गए थे। वे कप्तान थे और मरदान के गाइड्स में नियुक्त थे।

शिक्षा के प्रसार के लिए हमारी कोशिश चल रही थी। १९२१ ई० में हमने उतमान ज़ई में मित्रों की सहायता से एक स्वतन्त्र हाई स्कूल की नींव रखी। इस विद्यालय में क़ाज़ी अताउल्लाह साहब, मियां आदमशाह, हाजी अब्दुलग़फ़्फ़ार खां, खान मुहम्मद अब्बास खां, अब्दुल अकबर ख़ां, ताजमुहम्मद खां, अब्दुल्ला शाह और ख़ादिम मुहम्मद अकबर खां, मेरे साथी थे।

हमने एक अंजुमन बनाई, जिसका नाम रखा 'अंजुमन-इसलाह-अल-अफ़ग़ाना'। हमारे विद्यालय में अध्यापकों का अभाव था। इसका एक कारण यह था कि थोड़े वेतन पर अच्छे अध्यापक मिलते नहीं थे और हमारे पास इतना धन नहीं था कि अध्यापकों को बड़े-बड़े वेतन देकर उनकी सेवाएं प्राप्त कर सकते। इसलिए मैं स्वयं लड़कों को पाठ पढ़ाया करता था।

उन्हीं दिनों लाहौर में ख़िलाफ़त का सम्मेलन हुआ। हम भी उस में शामिल हुए। इस सम्मेलन में ज़िला बन्नू के मीरा खेल गांव के अमीर मुख़्तार ख़ां से मेरी भेंट हुई। वे भी इसी सम्मेलन में भाग लेने के लिए आए हुए थे। उनके साथ उनके दो सुपुत्र भी थे, जिनमें से बड़े बेटे का नाम अमीर मुमताज़ खां था और छोटे का मक़्सूद खां। ये दोनों लड़के उनके बाप ने हमें स्कूल के लिए अर्पित कर दिए। मक़्सूद जान हमारे स्कूल में सबसे पहले प्रधानाध्यापक थे और जब वे पुनः अपनी पढ़ाई जारी करने के लिए वापस पेशावर चले गए, तो उनके स्थान पर उनके भाई अमीर मुमताज़ खां हमारे मदरसे के प्रधानाध्यापक नियुक्त हो गए।

अंग्रेज़ों को हमारा यह मदरसा पसन्द नहीं था। हमारे मदरसे में जो भी अध्यापक आता, उनकी ओर से उसे डराया-धमकाया जाता और जब डराना-धमकाना सफल सिद्ध न होता, तब उस अध्यापक को अधिक वेतन का लालच देकर हमसे उसे छीन लिया जाता। इसी तरह जब कभी मक़्सूद जान बेचारा उतमान ज़ई आता था, तो पुलिस उसे परेशान करने के लिए कई हथकण्डे इस्तेमाल करती।

खिलाफ़त के आन्दोलन के सिलसिले में भी हम सक्रिय रहते थे। परन्तु बाधाएं इस राह में भी कम नहीं थीं। पेशावर में खिलाफ़त के हमारे साथियों में फूट पैदा हो गई थी और उनके दो दल बन गए थे। एक

दिन हाजी जान मुहम्मद साहब और उनके साथियों ने शाही बाग़ में एक सार्वजनिक जलसा किया और उस जलसे में यह सुझाव रखा कि आप लोगों को हाजी जान मुहम्मद साहब को खिलाफ़त कमेटी के प्रधान बनाया जाना स्वीकार है ? लोगों ने इस सुझाव का ज़ोर-शोर से समर्थन किया और उन्हें प्रधान बना दिया गया। दूसरे दिन पेशावर के एक सैयद साहब और उनके साथी जमा हो गए। उन्होंने भी सभा बुला ली और लोगों से कहा कि सैयद साहब अहलि-रुसूल हैं और उन्होंने सेवाएं भी की हैं, इसलिए हाजी जान मुहम्मद से इनका अधिकार अधिक है। उचित यह है कि इनको खिलाफ़त कमेटी का प्रधान बनाया जाए। लोगों ने चिल्लाना आरम्भ कर दिया—'स्वीकार है, स्वीकार है।'!

इस प्रकार की परिस्थितियों के मध्य खिलाफ़त का कार्य चल रहा था। कार्यकर्ताओं के मध्य दिन-प्रतिदिन खींचातानी बढ़ रही थी और बीच-बीच में कुछ भी काम नहीं होता था। कार्यकर्ताओं की ओर से किसी एक व्यक्ति पर सहमति नहीं होती थी। पेशावर के लोग अच्छा काम करनेवाले थे, लेकिन इस फूट ने उन्हें बेकार बना रखा था। मैं कभी-कभी खिलाफ़त के कार्यालय में जाया करता था, तो दोनों पक्ष मुझसे इसी प्रकार की बातें कहते रहते थे। दोनों दलों के साथ मेरे सम्बन्ध बहुत प्रेमपूर्ण थे। मुझे वे दोनों कहा करते थे कि उन दोनों दलों का मुझ-पर पूर्ण विश्वास है, इसलिए अच्छा यह होगा कि मैं खिलाफ़त का अध्यक्ष पद स्वीकार कर लूं। किन्तु मुझे इसमें रुचि नहीं थी, क्योंकि मुझे प्रधान पदों और अधिकारत्व-पदों का चाव नहीं था। मैं इन चीज़ों से दूर भागता था। अन्त में उन्होंने मुझे मजबूर कर दिया और मैंने इन शर्तों पर प्रधान-पद स्वीकार कर लिया कि सीमा प्रान्त में जो भी चन्दा जमा होगा, उसे इसी प्रान्त में शिक्षा पर खर्च किया जाएगा और किसी अन्य काम में भी नहीं लगाया जाएगा। खैर मैं खिलाफ़त कमेटी का प्रधान बन गया और अब्दुल क़ैयूम खां सवाती मन्त्री नियुक्त कर दिए गए।

मैं स्कूल के काम से निश्चिन्त हो गया और मैंने मियां अहमदशाह के इलाक़े में भ्रमण आरम्भ कर दिया। एक उद्देश्य यह था कि लोगों से विचार-विनिमय के अवसर प्राप्त होंगे, दूसरा यह कि अपने वे पुराने मदरसे फिर से जारी किए जा सकेंगे। हमारे मदरसे को जारी हुए अभी छः महीने हुए थे कि हमारे प्रान्त के चीफ़ कमिश्नर ने मेरे पिता को बुलाया और उनसे कहा, "देखो, सब लोग आराम से बैठे हुए हैं और तुम्हारा यह लड़का गांव-गांव में फिर रहा है, दौरे कर रहा है और मदरसे खोल

रहा है। जब दूसरे लोग नहीं खोलते, तो तुम भी कृपा करो और अपने लड़के से कह दो कि वह भी अपने घर में आराम से बैठ जाए।"

जब मेरे अब्बाजान घर आए, तो मुझे एकान्त में ले जाकर कमिश्नर साहब की वे सब बातें सुना दीं और साथ ही मुझे समझाया—"बच्चा, आराम से बैठो। जब दूसरे लोग मदरसे खोलने का काम नहीं करते, तो तुम भी मत करो।"

मैं अब्बाजान की इस बात से बहुत परेशान हुआ और मन में कहने लगा कि देखो, ये अंग्रेज़ लोग अपने स्वार्थ के लिए बाप-बेटे में भी भेद-भाव पैदा करते हैं। मेरे पिता धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे। मैंने उनसे निवेदन किया, "यदि ये सब लोग नमाज़ अदा न करें, तो अब्बाजान! आप मुझे यह तो न कहेंगे कि नमाज़ अदा कर लो?"

पिताजी ने उत्तर दिया, "वाह यह कैसे हो सकता है। नमाज़ तो एक आवश्यक कर्तव्य है।"

मैंने उनसे कहा, "बस, जिस प्रकार नमाज़ एक आवश्यक कर्तव्य है, उसी प्रकार विद्या-प्रसार और जाति की सेवा भी आवश्यक कर्तव्य है।"

अब्बाजान ने मुझे बड़ी गम्भीरता से कहा, "अच्छा, यदि यह कर्तव्य है, तो फिर करते रहो।"

यह कहकर वे चले गए और उन्होंने लाट साहब से कह दिया कि 'साहब बहादुर, हम तुम्हारे लिए अपना धर्म नहीं छोड़ सकते।'

थोड़े दिनों के पश्चात् सरकार ने मुझे गिरफ़्तार कर लिया। मुझसे ज़मानत मांगी गई। मैंने इन्कार कर दिया, तो मुझे एफ० सी० आर० की धारा ४० के अधीन तीन वर्ष के लिए कड़े कारावास का दण्ड दिया गया। उन दिनों जेलें भी अनोखे प्रकार की होती थीं। भोजन भोजन की तरह नहीं होता था और कपड़े कपड़ों के ऐसे नहीं होते थे। हमारे गांव के एक बाप-बेटे दोनों एक ही समय क़ैद हुए थे। जब उनके कपड़े उतरवा लिए गए और जेलखाने के कपड़े उन्हें दिए गए, तो बेटा बेचारा इन कपड़ों में अपने बाप को नहीं पहचान सकता था। वह चीखकर कहने लगा, "हे बाबा! तुम किधर चले गए?"

बाप ने उसे कहा, "बेटा! मैं तो तुम्हारे पास ही खड़ा हूं।"

यह हाल तो उन बाप-बेटे का था। इस स्थिति में अनुमान कीजिए कि मुझ जैसे व्यक्ति का जिसकी क़ैद भी लम्बी हो और शरीर भी हृष्ट-पुष्ट हो, क्या हाल हुआ होगा? मैंने जब जेल के कपड़े पहन लिए, तो मेरी शलवार पिंडलियों से भी ऊपर थी और उसका आसन तंग होने

के कारण फट जाता था और कमीज़ मेरी कमर से ऊपर तक ही रह जाती थी।

उस ज़माने में जब कोई व्यक्ति क़ैद हो जाता था, तो पहले-पहले उसे एकान्त कोठरी में बन्द करते थे। उसको बीस सेर अनाज पीसने के लिए दिया जाता था। उसके पांवों में बेड़ियां पहनाई जाती थीं और उसके गले में लोहे का तौक़ डाल दिया जाता था। एक छोटी-सी लकड़ी की तख्ती उसके गले में लटका दी जाती थी। इस तख्ती पर क़ैदी के अपराध की धारा और क़ैद की अवधि लिखी रहती थी।

इस जेलखाने का दारोग़ा एक हिन्दू था। वह ईमानदार था और देशभक्तों से सहानुभूति भी रखता था। उसने मुझे एक कोठरी में बन्द कर दिया था, लेकिन चक्की पीसने को नहीं दी थी, और न ही मेरे पांवों में बेड़ियां डाली थीं। जेलखाने की रोटी तो देता था, लेकिन वह अपेक्षाकृत अच्छी होती थी। दाल और साग भी खाने के योग्य होते थे। हमारी चक्की[1] का रुख या द्वार उत्तर की ओर था। उसमें धूप बिलकुल नहीं आती थी और उसमें सख्त सर्दी लगती थी।

मुझे तीन कम्बल और एक बोरी की किस्म का टाट दिया गया था। लेकिन उनमें गुज़ारा करना बहुत ही कठिन था। इसके अतिरिक्त हम दिन-रात कोठरी में बन्द रहते थे। जब कभी किसी अच्छे जमादार की ड्यूटी लग जाती, तो वह एक-आध घण्टे के लिए कोठरी से बाहर निकाल देता था और हम लोग धूप में बैठ जाते थे। एक मुसीबत यह थी कि हम रात के समय नींद नहीं ले सकते थे। क्योंकि तीन-तीन घण्टे के बाद हमारे पहरेदारों की ड्यूटी बदलती रहती थी। एक के बाद जब दूसरा पहरेदार आता तो पहले वह ताले को खटखटाता, फिर आवाज़ देता, "बोल भाई।" जब तक उसे इसके उत्तर में उत्तर न मिलता, तब तक वहां से टलने का नाम न लेता। यदि क़ैदी की ओर से उत्तर देने में ज़रा विलम्ब हो जाता, तो दूसरे दिन क़ैदी को दण्ड मिला करता।

मुझे जिस समय गिरफ़्तार करके पेशावर जेल में पहुंचाया गया तो हवालात में बन्द करने के स्थान पर जेलखाने की कसूरी चक्की में बन्द कर दिया गया था। जब मैं चक्की के अन्दर दाखिल हो रहा था, तो वहां बहुत दुर्गन्ध फैली हुई थी, क्योंकि उसमें पाखाने से भरा हुआ मिट्टी का बर्तन पड़ा था। मैंने जेलखाने के अधिकारी से कहा कि यह चक्की बहुत गन्दी है। उसने उत्तर दिया कि यह जेलखाना है, और मुझे चक्की के

---

१. जेल की भाषा में 'चक्की' से अभिप्राय एकान्त बन्दी-कोठरी होता था। यहां पीसने को चक्की रखी रहती थी।

अन्दर धकेल दिया गया और दरवाज़ा बन्द कर दिया गया।

मेरी गिरफ़्तारी के पश्चात् खिलाफ़त के मेरे दूसरे साथियों को भी गिरफ़्तार कर लिया गया था और उन्हें भी ऐसी ही चक्कियों में बन्द कर दिया गया था। हम चौबीसों घण्टे चक्कियों में बन्द रखे जाते थे। रोटी भी हमें चक्कियों की सलाखों में से दी जाती थी। केवल उसी समय हमारी चक्कियों के द्वार खुलते थे, जब जेलख़ाने का भंगी सफ़ाई के लिए आता था। चक्कियों के बाहर हमपर हर समय दुहरा पहरा लगा रहता था, ताकि कोई व्यक्ति हमारे निकट फटक न सके, न हमारे साथ बातें कर सके। इस अत्याचारपूर्ण बर्ताव का परिणाम यह निकला कि हमारे साथियों ने ज़मानतें दाख़िल कर दीं और केवल मैंने और अब्दुल क़ैयूम ख़ां सवाती ने ज़मानत देने से बराबर इन्कार जारी रखा। अस्तु हम दोनों को तीन-तीन वर्ष के लिए कड़े कारावास का दण्ड दे दिया गया।

मुझे यह तीन वर्ष की क़ैद के दण्ड का आदेश कैसे सुनाया गया, यह क़िस्सा भी सुनने के योग्य है। जब जेलख़ाने में आए हुए मुझे दस दिन हो गए थे, तो मुझे चक्की से निकाला गया था और डिप्टी कमिश्नर के सामने पेश किया गया था। डिप्टी कमिश्नर एक विचित्र प्रकार का अंग्रेज था और मेरा मुक़द्दमा भी अजीब था। जब पुलिस ने उसके सामने पेश किया, तो उसने मेरे अपराध के सम्बन्ध में पूछा। पुलिस ने उसे बताया कि एक तो मैंने हिज्रत की थी और दूसरा मैंने आज़ाद मदरसा स्थापित किया है।

डिप्टी कमिश्नर ने उन्हें कहा, "जब इसने इस देश से एक बार हिज्रत की थी, तो फिर इसे वापस क्यों आने दिया गया? इसे इधर दाख़िल होने की अनुमति क्यों दी गई?"

मैंने उससे कहा, "अफ़सोस इस बात का है कि एक तुम लोगों ने हमसे हमारा देश ले लिया है और अब इसमें हमें रहने भी नहीं देते हो।"

मेरा यह कहना ही था कि साहब और भी जल-भुन गया। उसने पुलिस को आदेश दिया, "जाओ, इसे यहां से दूर करो। मैंने इसे तीन वर्ष कड़े कारावास का दण्ड दे दिया है।"

पुलिस मुझे ले आई और जेलवालों के हवाले कर दिया।

उस समय जेलखाने में क़ैदियों के लिए अपने पास खाने की कोई चीज़ रखना भी अपराध था। मैं अपनी चक्की में बैठा हुआ था कि इतने में हमारे गांव का एक क़ैदी नम्बरदार आया। उसने मेरी चक्की पर

गुड़ के दो टुकड़े रख दिए और चला गया। थोड़ी देर के पश्चात् उस पहरेदार ने, जिसका पहरा हमपर लगा हुआ था, मुझसे कहा, "जेलर साहब आ रहे हैं।" यह सुनकर मुझे इस गुड़ के लिए चिन्ता हुई कि इसका क्या करूं। कभी सोचता कि कम्बल के नीचे छिपा लूं। कभी सोचता कि टाट के नीचे दबा दूं। फिर खयाल आया कि यदि यह कम्बल जेलर ने ऊपर उठा लिया, तो मैं क्या उत्तर दूंगा। खैर किसी तरह गुड़ मैंने छिपा लिया।

जेलर साहब आए, लेकिन उन्होंने तलाशी न ली और वापस चले गए। उस ज़माने में क़ैदियों की तलाशियां प्रतिदिन हुआ करती थीं। जब जेलर साहब चले गए, तो मैंने गुड़ उठा लिया और बाहर फेंक दिया। फिर मैंने दिल में फ़ैसला कर लिया कि जेलखाने में कभी कोई ऐसा काम नहीं करूंगा, जो जेल के क़ानून के विरुद्ध होगा। क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य के मन में भय पैदा होता है। मैंने बहुत-से ऐसे राज-नीतिक क़ैदियों को देखा था, जो इस प्रकार के काम करते थे। वे जेलवालों की बड़ी खुशामदें करने के अतिरिक्त उन्हें सलाम भी किया करते थे।

कुछ दिनों के बाद मुझे मिलने के लिए डाक्टर खान साहब और कुछ अन्य लोग भी आए। वे मेरे लिए सरकार का संदेश लाए थे। सर-कार के संदेश में मेरे सामने यह प्रस्ताव रखा गया था कि मैं मदरसे बेशक खोल लूं, परन्तु ये दौरे बन्द कर दूं। यदि मैं दौरे बन्द कर दूंगा, तो सरकार मुझे जेलखाने से मुक्त कर देगी। लेकिन मैंने सरकार का यह प्रस्ताव ठुकरा दिया।

इन चक्कियों में मेरे साथ और भी बहुत-से क़ैदी थे। इनमें से चमर-कंद के मुजाहिद भी शामिल थे। मैं जब काबुल से बाजोड़ आया था, तो चमरकंद में इन मुजाहिदों से मिलने के लिए गया था और मैंने उन्हें बहुत समझाया था कि ध्यान रखना सरहद और पंजाब की ओर मत आना, क्योंकि उनके कुछ आदमी गिरफ़्तार हो चुके थे। दूसरी बात मैंने कही थी, "चन्दों के पीछे तुम लोग कितने दिन घूमते रहोगे, क्यों नहीं तुम अपने यहां खड्डियों का कोई धन्धा आरम्भ कर देते। इसके अतिरिक्त तुम्हारे पास खच्चर मौजूद हैं और तुम्हारे निकट कुनड़ का अफ़ग़ान इलाक़ा है। वहां भांति-भांति के मेवे होते हैं। यदि तुम लोग मेवे खरीदो और उन्हें मामुन्दों के इस इलाक़े में बेचो, तो इससे तुम्हारा अच्छी तरह निर्वाह होता रहेगा तथा दूसरों के सामने हाथ फैलाने से छुटकारा भी मिल जाएगा।"

मैंने उनके इलाक़े में एक-दो दिन रहकर उनके हालात और स्वभाव का अध्ययन किया था। मैंने देखा था कि वे लोग बेकार पड़े रहते थे।

ये मुजाहिद बुनेर से यहां आए थे। वहां उनकी आपस में लड़ाई हो गई थी और उन्होंने अपने अमीर को क़त्ल कर दिया था। ये पंजाबी थे। हमारे इन पंजाबी भाइयों की प्रकृति में पार्टीबाज़ी और झगड़े-फ़साद के तत्त्व मानो भरे हुए थे। बुनेर में जो मुजाहिद थे, उनमें बहुसंख्या बंगालियों की थी और वे आपस में प्यार से रहते थे। लेकिन उनमें ज्योंही पंजाबी सम्मिलित हो गए, तो उन्होंने गुटबंदियां और झगड़े-फ़साद आरम्भ कर दिए। अंत में उन्होंने अमीर को मौत के घाट उतार दिया था। अतः उन्हें बुनेर से निकाल दिया गया था। तब ये लोग चमरकन्द आ गए थे। यहां भी उनमें पार्टीबाज़ी जारी थी। उनका नेता मौलवी फ़ज़्ल इलाही एक बहुत बड़ा पार्टीबाज़ और ख़तरनाक आदमी था। काबुल से वापस आते समय मैंने उसे काबुल में देखा था। इसी फ़ज़्ल इलाही ने एक बहुत अच्छे कार्यकर्ता मौलवी बशीर को अपनी इसी पार्टीबाज़ी की सनक में क़त्ल करवा दिया था। मौलवी बशीर एक अत्यन्त निश्छल और सच्चे कार्यकर्ता थे।

जेलख़ाने में इन मुजाहिदों का बहुत बुरा हाल था। ये आपस में एक-दूसरे को निर्दयता से मारा-पीटा करते थे। लेकिन जेल में मेरे आते ही इनकी हालत अच्छी हो गई थी। चमरकन्द में इनका एक आदमी क़ुरान का हाफ़िज़ था। उसे पुलिस ने अपने हाथ में ले रखा था। इनमें जो भी आदमी काम का होता था, उसे वह पुलिसवालों को दिखा दिया करता था और स्वयं खिसक जाता था और चमरकन्द से इस बहाने से उस आदमी को भेज दिया करता था कि चलो अमुक स्थान पर चलें, वहां चन्दा ख़ूब मिलेगा। इस प्रकार जब उसे अपने साथ लेकर निश्चित स्थान पर पहुंच जाता था, तो उस बेचारे को पुलिस के जाल में फंसाकर स्वयं रफ़ूचक्कर हो जाता था।—यह क़िस्सा इन मुजाहिदों ने मुझे सुनाया और यह भी बताया कि—"वह हाफ़िज़-ए-क़ुरान फिर नये शिकार फांसने के लिए गया हुआ है। अब उसकी नज़र हमारे एक बहुत अच्छे और विशेष कार्यकर्ता पर है। उसे पुलिस का यह जासूस अपने जाल में फंसाकर यहां ले आएगा। इसलिए कोई ऐसा प्रबन्ध हो जाए, जिससे चमरकन्द में यह सूचना पहुंच जाए कि इसके साथ कोई भी व्यक्ति आने का नाम न ले।"

इन मुजाहिदों ने मुझसे यह भी कहा, "यहां एक मामुन्द भी है और

वह कुछ ही दिनों के पश्चात् रिहा होनेवाला है। इसका घर चमरकन्द के निकट है। यदि आप एक छोटा-सा पत्र लिख दें, तो यह पत्र हम इस मामुन्द के हाथ चमरकन्द पहुंचवा देंगे। इस तरह से हमारे वहां के मुजाहिदों को सूचना मिल जाएगी और वे इस हाफ़िज़-ए-क़ुरान के चंगुल में नहीं आएंगे।"

पहले मेरा इरादा इस प्रकार का पत्र लिखकर देने का नहीं था, लेकिन जब मैंने यह सोचा कि यह तो इन लोगों के लिए बहुत बड़ी मुसीबत है और हानि का कारण है, तो फिर मैंने एक संक्षिप्त-सा पत्र लिखा और जिस दिन वह मामुन्द रिहा होनेवाला था, उससे एक दिन पहले हमने उसे वह पत्र दे दिया।

इस जेल में साधारण क़ैदी तो उन चक्कियों में एक सप्ताह तक बन्द किए जाते थे, लेकिन मुझे बन्द हुए दो महीने हो गए थे। दो महीने के पश्चात् मुझे इस जेलख़ाने से डेरा इस्माइल खां के नैतिक क़ैदियों के लिए निश्चित जेल में भेजने के लिए रवाना कर दिया गया।

९

मुझे डेरा इस्माइल खां पहुंचा दिया गया। लेकिन पेशावर से ले जाते समय मुझे जो बेड़ियां पहनाई गई थीं, वे मेरे पांव से निकाली न गईं, और मुझे चक्की में बन्द कर दिया गया। दूसरे दिन मुझे बीस सेर गेहूं पीसने के लिए दिया गया। लेकिन यह अच्छा हुआ कि उस गेहूं में एक भी दाना साबित नहीं था, सब कीड़ों ने खा रखे थे, इसलिए गेहूं पीसने में मुझे कुछ कष्ट न हुआ। इस जगह का दारोग़ा एक बूढ़ा मुसलमान था। वह सिपाही के पद से दारोग़ा बना था। वह अंग्रेज़ी नहीं जानता था। पेन्शन पर रिटायर्ड होनेवाला था। जेलख़ाने का सुपरिंटेंडेंट एक अंग्रेज़ था, जो अंग्रेज़ी के अतिरिक्त कोई भाषा नहीं जानता था। इस कारण जेलख़ाने का सारा काम गंगाराम ही किया करता था। वह डिप्टी जेलर था। दारोग़ा बहुत नेक व्यक्ति था, लेकिन गंगाराम बहुत घूसखोर और गंदा आदमी था। वह घूस लेने के लिए क़ैदियों को आपस में लड़ाता-भिड़ाता रहता था। एक दिन मैं चक्की पीस रहा था कि इतने में दारोग़ा साहब आ गए। उन्होंने मुझसे कहा, "यह चक्की तुम मत पीसो।"

मैंने पूछा, "क्यों?"

उन्होंने उत्तर दिया, "मैं ख़ुदा को क्या उत्तर दूंगा, जब वह मुझे

कहेगा कि इस जेल में चौदह सौ क़ैदी थे, उनमें से एक ख़ुदा के वास्ते आया था, तुमने उससे भी चक्की पिसवाई थी ?"

मैंने उनका मन रखने के लिए चक्की पीसना बन्द कर दिया और जब वे बाहर चले गए, तो मैंने चक्की पीसना शुरू कर दिया। वे बाहर खड़े होकर दरवाज़े के एक छेद से मुझे देख रहे थे। वे फिर मेरी चक्की के अन्दर आए और बोले, "तुम यह चक्की क्यों पीसते हो ?"

मेरे बिलकुल सामने चक्कियों की दूसरी पंक्ति में एक व्यक्ति चक्की पीस रहा था। मैंने दारोग़ा साहब से कहा, "आप उस व्यक्ति को देखें। यह व्यक्ति क़त्ल और डाके का अपराधी है और इसी गंदे काम के कारण वह चक्की पीस रहा है। किन्तु मेरा काम तो बड़ा नेक है। मैं अपने इसी उद्देश्य के लिए चक्की क्यों न पीसूं ?"

दूसरे दिन दारोग़ा साहब ने चक्कियों के जमादार को मेरे सम्बन्ध में यह आदेश दिया कि मुझे भविष्य में गेहूं के स्थान पर आटा दिया जाए। दूसरे दिन जमादार जब मेरे पास आटा लेकर आया, तो उसके साथ थोड़े-से गेहूं भी थे। ये दोनों चीज़ें मेरे हवाले करते हुए जमादार ने मुझसे कहा, "जब साहब आएं तो यह गेहूं पीसना।"

मैंने उससे कहा, "यदि साहब ने मुझसे पूछ लिया कि मुझे आटा दिया जाता है या गेहूं ?—तो मैं झूठ नहीं बोलूंगा और उनसे कह दूंगा कि मुझे आटा दिया जाता है।"

जमादार बोले, "फिर मैं नौकरी से भी जाऊंगा।"

मैंने उत्तर दिया, "लेकिन मैं तो आपको नौकरी से हटवाना नहीं चाहता। मैं तो आपसे कहता हूं कि मुझे गेहूं दिया कीजिए।"

इस जेलख़ाने की ख़ुराक बहुत ख़राब थी। रोटी में इतनी मिट्टी होती थी कि इन्सान उसे चबा नहीं सकता था। और जो साग हमें दिया जाता था, उसे मैंने एक दिन बिल्ली के आगे रखा था, लेकिन बिल्ली ने खाया नहीं था। दारोग़ा साहब ने मुझे बहुतेरा कहा कि वे मेरे लिए खाना अपने घर से भिजवा दिया करेंगे, लेकिन मैंने यह बात स्वीकार न की। जो व्यक्ति दूध बांटा करता था, वह मुझे दूध देना चाहता था, लेकिन मैं नहीं लिया करता था, क्योंकि दूध मेरे कूपन पर नहीं लिखा गया था। डाक्टर साहब उस व्यक्ति से कहा करते थे कि वह मुझे दूध दिया करे, लेकिन मैं दूसरे का हिस्सा नहीं लेता था। उधर गंगाराम था कि उसने मेरे पास अपने एजेण्ट भेजने आरंभ कर दिए। वे मुझे कहा करते थे, "देखो, गंगाराम को कुछ दे दो, ऐसा करने से तुम्हें चक्की से निकाल देगा। दूसरी बात यह है कि हम पेशावरियों के लिए यह

शर्म की बात है कि तुम चक्की में बन्द रहो और गेहूं पीसते रहो। यदि तुम कुछ भी नहीं देना चाहते, तो हम अपनी जेब से दे देंगे।"

मैं उनकी बातें सुनकर हैरान होता और कहता, "भई, रिश्वत देना अच्छा काम नहीं होता, इसलिए न रिश्वत आप दें और मैं तो खैर कभी देने का नहीं हूं। आप नहीं जानते कि मैं केवल इसलिए क़ैद का दण्ड भुगत रहा हूं कि मैं ज़मानत देने से इन्कारी हूं। यदि मुझे रिश्वत ही देनी होती, तो ज़मानत क्यों न देता, ताकि क़ैद की यातनाएं न उठानी पड़तीं।"

इस जेलखाने में क़ैदियों का बहुत बुरा हाल था। जिस किसीने गंगाराम को पांच रुपए दे दिए, वह अपनी पसन्द के लड़के को या तो अपने साथ चक्कीवाली कोठरी में बन्द कर लेता था या उसे अपने साथ बैरक में ले जाता था। एक दिन मैंने दारोग़ा साहब से कहा, "आप एक अच्छे नमाज़-गुज़ार महानुभाव हैं, लेकिन खुदा को इस बात का क्या उत्तर देंगे कि आपके जेलखाने में मुसलमान बच्चों की मर्यादा सुरक्षित नहीं है। पेशावर के जेलखाने में हिन्दू दारोग़ा है। वहां मुसलमान बच्चों की इज़्ज़त पर कोई हाथ नहीं डाल सकता।"

ख़ैर, बात तो जेल की खुराक की चल रही थी। एक दिन मैं चक्की पीस रहा था और बाल्टी में वह साग पड़ा था कि जेल के सुपरिंटेण्डेण्ट साहब आ गए। मैंने वह साग दिखाकर उनसे कहा, "देखिए, यहां एक बिल्ली आई थी। मैंने उसके आगे यह साग रखा था और उसने नहीं खाया था। यह साग पशु भी नहीं खाते, इसे आप मनुष्यों के लिए देते हैं।"

ये सुपरिंटेण्डेण्ट डाक्टर भी थे। उन्होंने कहा, "यह साग तो बहुत अच्छा है।"

अब मैं इस सम्बन्ध में उनसे क्या कहता। मैंने इसी तरह की दूसरी बात छेड़ दी। मैंने कहा, "अच्छा, वह सामने की चक्कीवाला आदमी है, उसकी बेड़ियों को देखिए और मेरी बेड़ियों को भी। वह भी बीस सेर गेहूं पीसता है और मैं भी बीस सेर पीसता हूं। वह भी चक्की में बन्द है और मैं भी। उसका अपराध क्या है और मेरा अपराध क्या है? आपके देश में जो मेरी तरह का क़ैदी होता है, उसके साथ किस प्रकार का बर्ताव किया जाता है?"

सुपरिंटेण्डेण्ट साहब ने मुझे कोई उत्तर न दिया और चले गए। दूसरे दिन मेरा श्रम बदल दिया। मुझे कारखाने में भेज दिया, ताकि लिफ़ाफ़े बनाऊं। एक दिन सुपरिंटेण्डेण्ट फिर उधर आए। मुझसे बोले

कि वे कुछ दिनों के बाद मुझे इस चक्की (कोठरी) से भी निकाल देंगे। इस कारखाने में सीमा प्रान्त के समस्त ज़िलों के क़ैदी मौजूद थे। वे आपस में प्रायः लड़ते-झगड़ते रहते और उनके समस्त झगड़े लड़कों के सिलसिले में होते। वे सब मेरे पास आया करते और मैं उन्हें आपस में लड़ने-झगड़ने और बुरे कामों से रोकता रहता। मैंने उनमें सुलह-सफ़ाई करा दी।

कुछ ऐसे क़ैदी भी थे कि वे श्रम से डरते थे और श्रम उन्हें बहुत बड़ी मुसीबत नज़र आती थी। इसी कारण वे गंगाराम को घूस दिया करते थे। मैंने उन्हें इस काम से भी मना किया। इससे गंगाराम की दुकान ठण्डी पड़ गई। वह इस चिन्ता में पड़ गया कि मुझे कैसे इस जेल से कहीं दूसरी जेल में स्थानान्तरित कर दे। मेरे विरुद्ध उसने सुपरिंटेण्डेण्ट से रिपोर्ट कर दी कि मैं जेलख़ाने में अपना प्रचार करता हूं और उसके लिए कठिनाई पैदा करता हूं। इसलिए मुझे यहां रखा जाएगा, तो जेलख़ाने का अनुशासन क़ायम नहीं रह सकेगा। इस प्रकार उसने मेरे विरुद्ध एक मुक़द्दमा-सा बना दिया।

गंगाराम की इस रिपोर्ट के सम्बन्ध में सुपरिंटेण्डेण्ट जब इधर आए, तो उन्होंने मुझसे कुछ बातें पूछीं। उन्हें मालूम हो गया कि गंगाराम झूठ बोलता है, लेकिन बीच में अनुशासन का प्रश्न पैदा हो गया था। अंग्रेज़ के सामने यदि अनुशासन का नाम ले लो, तो फिर उससे जो भी कराना चाहो, करा सकते हो। अस्तु, इसी अनुशासन की आड़ लेकर मुझे डेरा ग़ाज़ी खां के जेलख़ाने में भेज देने के आदेश जारी हो गए। मैंने दो महीने पेशावर के जेलख़ाने में गुज़ारे थे और लगभग दो ही मास मुझे यहां आए हो गए थे। इस अवधि में मेरा वज़न पैंतालीस पौंड कम हो गया था और ख़ुराक की ख़राबी के कारण मेरे मसूड़े दूषित हो गए थे और उनमें पायोरिया पैदा हो गया था।

एक दिन जेलख़ाने में पुलिस की एक मोटरगाड़ी आई, जिसके चारों ओर परदे लगे हुए थे। मेरे पांव में बेड़ियां, हाथों में हथकड़ियां और गले में तौक़ पड़ा था। जेल के तंग और छोटे लिबास में अपनी रूप-आकृति अजीब नज़र आती थी। ख़ुदा जाने लोगों को मैं कैसा नज़र आता हूंगा। ख़ैर, एक परदानशीन ख़ातून की भांति मुझे गाड़ी में परदों के भीतर बिठा दिया गया और दर्याख़ान पहुंचा दिया गया। रेलगाड़ी हमारे पहुंचने से पहले निकल गई थी। हमें रात स्टेशन पर हो गई। वहां मुझे किसी भी व्यक्ति के पास फटकने नहीं दिया जाता था और न ही किसीको मेरे निकट आने दिया जाता था। और तो क्या, मेरे

हाथों की हथकड़ियां तक खोली न गईं। मेरे साथ पुलिसवाले सब पख्तून थे, इसपर मज़े की बात यह थी कि थानेदार इन्चार्ज तो हमारे ही इलाक़े का था। नाम था उसका नादिर खां और वह 'डेकायट' नाम से विख्यात था।

दूसरे दिन जब रेलगाड़ी आई तो मुझे नौकरों के डिब्बे में बिठा दिया गया। रास्ते में गाड़ी जिस भी स्टेशन पर पहुंचती, मुझपर ऐसा कड़ा पहरा लग जाता कि मुझे देखने के लिए किसी व्यक्ति को मेरे निकट न आने दिया जाता। अन्त में हम ग़ाज़ी घाट पहुंच गए। वहां मुझे जो पुलिस लेने आई थी, उसका अधिकारी एक हिन्दू था। वह मेरे पास आया और पठान गार्ड से मेरा चार्ज ले लिया। उस अधिकारी ने मेरी हथकडियां खोल दीं और मुझसे कहा कि आइए, थोड़ा स्टेशन पर घूम-फिर लीजिए। मैं जब उसके साथ टहल रहा था, तो हमारा वह पहला पख्तून इंचार्ज आया और उस हिन्दू पुलिस अधिकारी से बोला, "बाप रे, यह तुमने क्या कर दिया है, मुझे तो तुमने डुबोकर रख दिया है।"

हिन्दू पुलिस अधिकारी ने उत्तर दिया, "अब ये मेरे चार्ज में हैं और इनकी सारी ज़िम्मेदारी मेरे सिर है। जाओ, तुम चिन्ता किसलिए करते हो!"

थोड़ी देर के बाद पुलिस मुझे लेकर डेरा ग़ाज़ी खां के लिए रवाना हो गई। नदी के किनारे पहुंचे और नाव के द्वारा जब हमने सिन्ध नदी को पार कर लिया, तो वहां तांगा मौजूद था। हम उस तांगे में बैठ गए और डेरा ग़ाज़ी खां के जेलखाने पहुंच गए। मैं जिस समय जेल के दरवाज़े पर था, उस समय वहां अब्दुर्रशीद खां जो कर्नल अब्दुलमजीद ख़ां के बेटे थे, लाला दुनीचन्द अम्बालवी से भेंट कर रहे थे। उनके साथ उनके सगे-सम्बन्धी भी थे। फिर जब मैं जेलखाने के भीतर चला गया, तो लाला दुनीचन्द ने मुझसे कहा, "हमने जब तुम्हें पहले-पहल देखा, तो हमने समझा कि यह कोई बड़ा भयंकर डाकू, लुटेरा और क़ातिल होगा, जिसे यहां लाया गया है।"

ख़ैर, जेल के अन्दर पहुंचते ही मेरी बेड़ियां काट दी गईं। यह एक छोटा-सा जेलखाना था। इसमें पंजाब के राजनीतिक बन्दी थे। एक बैरक में सी क्लास के क़ैदी थे और दूसरी में स्पेशल क्लास के। हमारे प्रान्त में कोई क्लास नहीं थी। इसलिए मुझे सी क्लास के क़ैदियों में रखा गया। लेकिन उस सी क्लास की रोटी बहुत अच्छी थी। इस जेल का सुपरिंटेण्डेण्ट बहुत अच्छा व्यक्ति था। वह राजनीतिक क़ैदियों को गेहूं दिया करता था। वे उन्हें स्वयं साफ़ किया करते थे और स्वयं

उनका आटा पीसते थे। फिर अपने ही हाथों रोटी पकाया करते थे और साग-भाजी भी स्वयं अपने हाथों पकाया करते थे।

मेरे लिए तो सबसे बड़ी मुसीबत वे बेड़ियां थीं, जिनसे अब मुझे मुक्ति मिल गई थी। सी क्लास के सब क़ैदी सिख और हिन्दू थे। ये सब प्यारे और सौहार्द प्रकृति के लोग थे। मेरी तो बहुत ही आवभगत करते थे। इनको बान बटने का श्रम मिला हुआ था और मैं यह काम नहीं कर सकता था। मैंने सुपरिंटेण्डेण्ट से कह दिया था कि मुझे इसके स्थान पर कोई दूसरा काम दे दिया जाए। स्पेशल क्लास के बन्दियों को मेरा पता चला, तो उन्होंने सुपरिंटेण्डेण्ट पर मेरे लिए ज़ोर दिया कि मुझे उनकी बैरक में भेज दिया जाए। सुपरिंटेण्डेण्ट एक बहुत अच्छा मुसलमान था, उसने मुझे उन्हींकी बैरक में भेज दिया और मुझे चर्खा कातने का श्रम दे दिया। यह मुझपर भगवान की बड़ी कृपा थी कि मुझे डेरा इस्माईल खां से डेरा गाज़ी खां के जेलख़ाने में भेज दिया गया था। यदि मुझे वहीं रखा जाता, तो मुझे विश्वास नहीं होता कि मैं वहां जीवित रह जाता। वहां मुझे ऐसे भद्र, सुसभ्य विद्वानों की संगति कहां मिल सकती थी, जिससे मैंने यहां बहुत लाभ उठाया। सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि पंजाब के लोगों से मेरी जान-पहचान हो गई और अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो गए। इसके अतिरिक्त हम एक-दूसरे के विचारों और सिद्धान्तों या आस्थाओं से भी परिचित हो गए। जब ये लोग हालात समझ गए, तो उन्होंने अखबारों के द्वारा मेरे पक्ष में सरकार के विरुद्ध इतना ज़ोरदार आंदोलन किया कि कुछ ही समय में पंजाब की सरकार मुझे भी स्पेशल क्लास में रखने पर विवश हो गई।

डेरा इस्माईल खां में गन्दी खुराक़ मिलने के कारण मेरे दांत खराब हो गए थे। जब मैं यहां आ गया, तो सुपरिंटेण्डेण्ट ने मुझे चिकित्सा के लिए लाहौर सेण्ट्रल जेल में भेज दिया। उस जेल का दारोग़ा खैरुद्दीन ख़ां था, जिसे राष्ट्रवादियों या देशभक्तों से कोई सहानुभूति नहीं थी। वह अंग्रेज़ों को प्रसन्न करने के लिए बड़ी कठोरता से काम लेता था। इसके बदले में अंग्रेज़ों ने उसे छुट्टी दे रखी थी कि क़ैदियों के साथ जैसा चाहे, वैसा वर्ताव करे। राजनीतिक क़ैदियों के प्रति उसका व्यवहार बहुत ही खराब था। जेलख़ाने में ख़िलाफ़त और कांग्रेस दोनों संस्थाओं के बन्दी थे। मैं भी तो ख़िलाफ़त वालों में से एक था। मुझे उनके पास न रखा गया और मुझे अलग तौर पर एक चक्की में बन्द कर दिया गया। इन चक्कियों में बहुत-से सिख भी बन्दी थे। उन्हें इस कारण बन्दी किया गया था कि वे 'सत् सिरी अकाल' नारा लगाते थे।

सिखों में एक प्रबल भाव पैदा हो गया था। जेलवालों की ओर से इन-पर जितनी अधिक सख़्ती या अत्याचार किया जाता, उनका भाव उतना ही बढ़ता जाता था।

जब ख़िलाफ़त वालों को मेरी स्थिति का पता चला तो उन्होंने शोर मचा दिया और दूसरे दिन मुझे उस चक्की से निकाल लिया गया और उन्हीं राजनीतिक बन्दियों के साथ एक जगह कर दिया गया। इस जगह आग़ा सफ़दर, मलिक लाल खां, लाला लाजपतराय, और इसी प्रकार के बहुत-से कांग्रेसी नेता बन्दी थे। मुझे इन सबसे विचार-विनिमय करने का अवसर मिला। आग़ा सफ़दर, मलिक लाल खां और मैंने क़ुरान का पाठ आरम्भ कर दिया। लेकिन मलिक लाल खां ने शीघ्र इस क़ुरान-पाठ से हमारा साथ छोड़ दिया। क्योंकि वे कहते थे हम लोग क़ुरान के और ही अर्थ निकालते हैं। वे बेचारे लकीर के फ़क़ीर थे। उनमें इतनी सूझ-बूझ और ज्ञान न था कि हमारे समझाने का उनपर कुछ प्रभाव हो पाता।

कुछ दिनों के पश्चात् दांतों का डाक्टर आया। मुझे उसके कार्यालय में ले जाया गया। उसका नाम प्रेमनाथ था। क्या कहिए, वह सचमुच ही प्रेम की मूर्ति था। उसने मेरे दांत देखे और उनमें से एक-दो निकाल दिए और शेष दांतों को साफ़ कर दिया। उसने मुझे बताया कि पायोरिया है और ख़राब ख़ुराक के कारण मेरे दांतों को यह रोग लगा है। उसने औषध और सेवन-विधि भी मुझे लिख दी। मैंने उससे कहा कि मैं अमीर आदमी हूं और मेरे पास रुपये हैं, कृपा करके अपनी फ़ीस ले लो। लेकिन वह फ़ीस लेने से निरन्तर इन्कार करता ही रहा और अपना बैग उठाकर चला गया। जब मैंने उससे बहुत अनुरोध किया, तो उसने मुझे कहा, "आपने कौन-सा अपराध किया है? आप तो देश और जाति से प्रेम और सेवा करते हुए यहां आए हैं। इसलिए यदि मैं आपसे फ़ीस लूंगा, तो मुझे शर्म नहीं आएगी क्या? यदि मैं आपकी भांति इतना बलिदान नहीं कर सकता, तो यह थोड़ी-सी सेवा तो कर ही सकता हूं।"

१०

कुछ दिनों के पश्चात् मैं फिर डेरा गाज़ी खां जेल में भेज दिया गया। रेलगाड़ी में पुलिस की टुकड़ी की रक्षा में यात्रा आरम्भ हुई। गर्मी का मौसम था और दोपहर का समय। गर्मी के मारे बुरा हाल हो रहा था।

गाड़ी शेरशाह स्टेशन पर रुकी तो मुझे वहां उतार लिया गया। यहां से हमें गाड़ी बदलनी थी। पुलिस का अधिकारी, जो पुलिस गारद का इंचार्ज था, बहुत अच्छा आदमी था। वह मुझे विश्राम-गृह की ओर ले गया। विश्राम-गृह के दरवाज़े बन्द थे। पुलिस अधिकारी ने दरवाज़ा खट-खटाया। एक आदमी ने दरवाज़ा खोल दिया। कमरे में एक पीर साहब अपने मुरीदों के साथ सो रहे थे। पुलिस अधिकारी ने एक कुर्सी उठा ली और मेरे आगे बिछा दी। मैं उसपर बैठ गया। पुलिस अधिकारी ने मुझे सलाम किया और बाहर चला गया।

पीर साहब का एक मुरीद उनके लिए हाथ से पंखा खींच रहा था और हमारे आने से पीर साहब की नींद खुल गई थी। पीर साहब ने सारा तमाशा देख लिया था। उनको यह भ्रम हो गया था कि मैं शायद पुलिस का कोई बहुत बड़ा अधिकारी हूं। पीर साहब के साथ उनका भोला-भाला छोटा-सा बच्चा भी था। पीर साहब भारत में खैरात और सदक़े बटोरने के लिए गए थे और बहुत-से सन्दूक माल-असबाब के भर-कर लाए थे। वे तौंसे शरीफ़ के बड़े पीर थे। मुझे नन्हे बच्चों से असीम स्नेह है और इस नन्हे बच्चे का भी मुझसे बहुत प्यार हो गया। वह मेरे पास बैठ गया तो हिलने का नाम ही नहीं लेता था। पीर साहब पहले तो बहुत प्रसन्न थे कि मैं शायद पुलिस का एक बहुत बड़ा अधि-कारी हूं। लेकिन बाद में जब मैं बाहर निकला और वह बच्चा भी मेरे साथ आ गया, लोगों ने मुझे देखा और पहचान लिया। फिर क्या था, वे भारी संख्या में मेरे इर्द-गिर्द जमा हो गए। तब पीर साहब को मालूम हुआ कि मैं तो ख़िलाफ़त का आदमी हूं, तो पीर साहब ने तुरन्त अपना एक मुरीद अपने नन्हे बच्चे के ले जाने के लिए हमारे पीछे भेज दिया। लेकिन वह बच्चा मुझसे कहां जुदा होने लगा था। आख़िर उसे रुला-कर ही मुझसे अलग किया गया। बच्चे को लेकर पीर साहब विश्राम-गृह छोड़कर चल दिए। हम डेरा ग़ाज़ी ख़ां के लिए रवाना हो गए।

डेरा ग़ाज़ी ख़ां पहुंचकर मुझे जेल की एक बैरक में बन्द कर दिया गया। इस बैरक में मुसलमान बहुत थोड़े थे। हिन्दू और सिख बहुत अधिक थे। हमारा एक मास्टर था। नाम था उसका गुरुदित्तामल। बहुत अच्छा व्यक्ति था और मेरे साथ तो उसकी गहरी दोस्ती हो गई थी। जब वह प्रार्थना किया करता था, तो 'शांति ! शांति !' का पाठ खूब किया करता था। लेकिन वह स्वयं शांत नहीं था। साधारण-सी बात पर बिगड़ उठता था। सिख जब इकट्ठे हो जाते, तो ये शब्द बड़े शौक़ से गाया करते, "सिर जावे तां जावे, मेरा सिखी धरम न जावे।" यह

सुनकर मुझे बहुत आनन्द प्राप्त होता था। मैं कहता था कि हिन्दुओं और मुसलमानों की अपेक्षा सिखों में धर्मभाव इसलिए अधिक है कि उनका धार्मिक ग्रन्थ अपनी मातृभाषा में है और वे शब्दों के अर्थों का यथार्थ प्रभाव ग्रहण कर सकते हैं। इसी कारण वे अपने धर्म के महत्त्व और शक्ति से भी बहुत अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं। और हम हिन्दू और मुसलमान जिस भाषा में ईश्वरभक्ति करते हैं, उसे हम नहीं समझते।

इस जेलख़ाने में हमारे दिन बड़ी अच्छी तरह से गुज़र रहे थे और पख़्तूनों के सम्बन्ध में अंग्रेज़ों ने जो बहुत-सी मिथ्या धारणाएं हिन्दुओं के मन में उत्पन्न कर रखी थीं, उनका किसी हद तक निराकरण हो गया।

एक दिन एक हिन्दू दोस्त मुझसे कहने लगा, "मैं एक बात आपसे पूछता हूं, लेकिन शर्त यह है कि आप विक्षुब्ध नहीं होंगे?"

मैंने उत्तर दिया, "कदापि नहीं।"

हिन्दू दोस्त ने कहा, "पठान हिन्दू का ख़ून पीते हैं?"

मैंने उत्तर दिया, "हां, ख़ूब पीते हैं।"

वह चिल्ला उठा, "बाप रे बाप! क्यों पीते हैं?"

मैंने उत्तर दिया, "इसलिए कि वह बहुत ही स्वादिष्ट होता है।"

अब मैंने ज़रा गम्भीर स्वर में हिन्दू मित्र से पूछा, "दोस्त! यह बात तुम्हारे दिमाग़ में पैदा कैसे हो गई? क्या तुम कभी पठानों के देश में गए हो? तुमने पठान देखे हैं? तुम्हारा उनसे कभी वास्ता भी पड़ा है?"

उसने उत्तर दिया, "नहीं।"

मैंने उससे पूछा, "फिर तुम कैसे इस परिणाम पर पहुंच गए हो?"

इस बात का उत्तर उसके पास केवल यह था कि उसने किसी पुस्तक में पढ़ा है।

कुछ दिनों के पश्चात् हमें सूचना मिली कि जेल-विभाग का जरनैल दौरे पर आ रहा है। उसका नाम कर्नल वाड था। वह बड़ा कठोर व्यक्ति था और देशभक्तों से उसका ख़ुदा वास्ते का वैर था। वह हर प्रकार से बहुत दुष्ट व्यक्ति था। वह इस जेल का निरीक्षण करता हुआ जिस समय हमारी बैरक में प्रविष्ट हुआ और उसने हिन्दुओं के सिरों पर टोपियां और सिखों के सिरों पर काली पगड़ियां देखीं तो आग-भभूका हो गया। वह दारोग़ा पर बरस पड़ा कि इस बात की अनुमति उसने उन्हें क्यों दी है!

हमारा सुपरिंटेण्डेण्ट बहुत अच्छा आदमी था। वह भी अंग्रेज़ था। उसने जरनैल से कहा, "यह इसका अपराध नहीं, मेरा है।"

जरनैल चला गया और जेल के अधिकारियों को आदेश दे दिया कि वे इन क़ैदियों से गांधी टोपी और काली पगड़ियां ले लें।

दूसरे दिन जब सुपरिंटेण्डेण्ट और दारोग़ा आया, तो हमें जरनैल का यह आदेश सुनाया गया। सरदार खड़कसिंह ने उनसे कहा, "हम स्पेशल क्लास के क़ैदी हैं और सरकार ने हमें अपने वस्त्र पहनने की अनुमति दे रखी है। इसलिए यह हमारी इच्छा पर निर्भर है कि जिस प्रकार के कपड़े हमें पसन्द हों, वैसे पहनें। अतः जरनैल का यह आदेश अवैध है और इन अधिकारों में, जो सरकार ने हमें दे रखे हैं, अनुचित हस्तक्षेप है।"

लेकिन इस बात पर उन अधिकारियों ने ध्यान नहीं दिया। उन्होंने कहा, "हम तो विवश हैं। हम तो जरनैल साहब के आदेश पर ही चलेंगे और उसकी पूर्ति करेंगे। इसलिए हम तुमको आदेश देते हैं कि ये टोपियां और पगड़ियां उतार लो।"

हमने उनके साथ अधिक तर्क न किया। क्योंकि तर्क तो वे मानते ही नहीं थे। जब वे लोग चले गए तो हम सब एक स्थान पर इकट्ठे हुए। आपस में विचार-विमर्श करके हमने निश्चय किया कि चूंकि सरकार ने हमें अपने कपड़े पहनने का अधिकार दिया है, तो यह हमारी इच्छा है कि जिस प्रकार के कपड़े पहनने को हमारा मन चाहे, पहनें। जेल अधिकारियों का यह आदेश वैध नहीं है। इसलिए हम यह आदेश नहीं मानेंगे और टोपियां तथा पगड़ियां नहीं उतारेंगे।

दूसरे दिन जेल के अधिकारी आए। एक-एक व्यक्ति को कार्यालय में ले गए और वहां उनकी टोपियां तथा पगड़ियां सिरों से हटाने लगे। इस प्रकार उन्होंने हम सबकी टोपियां और पगड़ियां सिरों से उतरवा लीं, तो हमने फैसला किया कि अब ये शेष वस्त्र भी नहीं पहनेंगे। हम चाहे हिन्दू थे या मुसलमान या सिख थे, सबने अपने-अपने वस्त्र उतार लिए और नग्न हो गए तथा लंगोटियां कस लीं। इस अवसर पर मैंने उन साथियों से निवेदन किया कि यह टोपी और पगड़ी का झगड़ा हमारे प्रान्त में नहीं है और हम लोगों पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं है। इसलिए आप लोग यदि कहें तो आपकी ख़ातिर मैं भी इस आंदोलन में सम्मिलित हो जाऊं।" लेकिन उन्होंने मुझे अनुमति न दी। और कह दिया कि उनका पंजाब का मामला है और यह आंदोलन पंजाबी ही चलाएंगे।

कुछ दिनों के पश्चात् डेरा ग़ाज़ी खां का डिप्टी कमिश्नर जेलखाने में आया। इसका नाम विल्सन था। हम सबकी ओर से सरदार खड़क-सिंह ने बातचीत की। सरदार साहब ने उससे कहा, "यह हमारा अधिकार है। जब एक बार सरकार ने हमें अपनी इच्छा के अनुसार वस्त्र पहनने का अधिकार दे दिया है, तो फिर यह हमारी इच्छा पर निर्भर है कि जिस प्रकार के वस्त्र हम चाहें, पहनें।"

डिप्टी कमिश्नर ने कहा, "तुम्हें पगड़ी और टोपी पहनने का अधिकार नहीं है।"

सरदार साहब ने पूछा, "क्यों? क्या ये टोपियां और पगड़ियां कपड़ों की संज्ञा में नहीं आतीं?"

डिप्टी कमिश्नर ने उत्तर दिया, "नहीं।"

इस बातचीत में धीरे-धीरे कटुता-सी पैदा हो गई, तो हठात् सिखों ने नारा लगाया, "बोले सो निहाल—सत् सिरी अकाल!"

इस नारे से सारा वातावरण कांप उठा। डिप्टी कमिश्नर पर ऐसा भय छा गया कि सिर पर पांव रखकर कार्यालय की ओर भाग गया और कार्यालय में जाकर यह आदेश लिख दिया कि इन क़ैदियों को इस बात के लिए दण्ड देना चाहिए।

दूसरे दिन सुपरिंटेण्डेण्ट आया और उसने हमें यह आदेश सुनाया कि तुम लोग कपड़े पहन लो। यदि कपड़े नहीं पहनोगे, तो कल तुम्हें जेल के विधान के अधीन मुक़द्दमे में घर लिया जाएगा।

सब मुसलमानों ने, केवल मौलवी मुहम्मद इस्माईल ग़ज़नवी के अलावा, अपने-अपने कपड़े पहन लिए। हिन्दुओं और सिखों ने न पहने, तब जेलखाने में एक मजिस्ट्रेट आ गया और उसने उन सबको नौ-नौ महीने की और भी क़ैद का दण्ड दे दिया।

मैं सी क्लास में था और सी क्लास के क़ैदियों को तीन महीने के पश्चात् एक पत्र लिखने की आज्ञा थी। इसी प्रकार तीन महीने के पश्चात् जिसके नाम जेलखाने में पत्र आता था, वह उसे दे दिया जाता था। ऐसी अवस्था में मैं अपने इलाक़े के वृत्तान्त की बहुत कम जानकारी प्राप्त कर सकता था। इसी प्रकार तीन मास के उपरान्त एक क़ैदी की अपने सम्बन्धियों से भेंट हुआ करती थी। इस नियम के अनुसार जो भी मेरे साथ भेंट करने आता, वह मुझे अपने प्रान्त के हालात सुना जाता। हमारी संस्था ने अपने इलाक़े में ज़ोर-शोर से काम जारी कर रखा था। उन दिनों जलसों का अधिक रिवाज नहीं था और सरकार भी किसीको जलसों में नहीं जाने देती थी। लोग भी डरते थे। इन

परिस्थितियों में हमारे साथी मसजिदों में 'मौलूद शरीफ़ की मजलिसें'[1] किया करते थे और उन्हीं मजलिसों में हमारे कार्यकर्ता भाषण किया करते थे। उनमें अधिकांश भाग लेनेवाले स्कूल के विद्यार्थी हुआ करते थे।

उस समय ग़नी की आयु नौ वर्ष थी। वली बहुत अच्छी 'क़िराअत' (क़ुरान के शब्दों का शुद्ध उच्चारण) करता था। और वह एक बहुत अच्छा 'क़ारी' (शुद्ध उच्चारणपूर्वक पढ़नेवाला) था। ग़नी एक बहुत अच्छा वक्ता था और बड़े शानदार भाषण करता था। वह अपने भाषण के अन्त में लोगों से कहा करता था, "ऐ लोगो ! आप लोग ज़रा इस सरकार से यह तो पूछें कि मेरे बाप को किसलिए क़ैद कर रखा है ? आखिर उनका गुनाह क्या है ? और उन्होंने क्या जुर्म किया है ?"

हमारे लोगों पर इस बात का प्रभाव होता था। उनके प्रभावित होने से देश में एक नई ज़िन्दगी पैदा हो गई। सारांश यह कि मेरी क़ैद से मेरी जाति को बड़ा लाभ पहुंचा। एक तो उनमें शिक्षा के लिए अनुराग पैदा हो गया। दूसरे उनमें राजनीतिक जागृति आ गई। मेरी क़ैद के कारण हमारे मदरसे से लोगों को सहानुभूति और प्यार हो गया। वे मदरसे के लिए सहायता जुटाया करते थे।

मेरी माता मेरे लिए बहुत दुःखी और उदास रहती थीं और जेल के नियम के अनुसार जब पत्र लिखने का अवसर मुझे प्राप्त होता, तो मैं अपनी माता के नाम अपना पत्र लिखता। मेरी माता की सदा यही इच्छा रही कि वे मेरी भेंट के लिए आतीं, लेकिन वे बूढ़ी थीं और डेरा गाज़ी खां बहुत दूर था। इसके अतिरिक्त मार्ग में सिन्ध नदी भी पड़ती थी। अतः इस प्रकार की कष्टदायक यात्रा के करने में असमर्थ थीं। इसलिए मैंने उन्हें भेंट का कष्ट उठाने से रोक दिया था। लेकिन मुझे क्या ख़बर थी कि उन्हें खुदावन्द पाक मुझसे सदा के लिए विलग कर देगा।

१९२३ ई० के अन्त में वे बीमार हुईं और कुछ ही दिन के पश्चात् अल्लाह को प्यारी हो गईं। मुझे किसीने उनकी बीमारी या निधन की सूचना तक न दी और मुझसे यह शोक-समाचार छिपाकर रखा गया। लेकिन मुझे समाचारपत्रों के द्वारा ज्ञात हो गया और मैं अत्यन्त दुःखी हुआ। जब मैं रिहा होकर अपने गांव में आया, तो मेरी बहन ने मुझे बताया कि अंतिम सांस लेते समय अम्माजान ने मुझे बहुत याद किया—बहुत ही याद किया। वे प्राण छोड़ते समय यही पुकारती रहीं—ग़फ़्फ़ारा

१. ऐसी सभाएं जिनमें रसूल हज़रत मुहम्मद के चरित्र आदि की चर्चा की जाए।

किधर गया है ? वह आया है या नहीं आया ?—बस, मेरा ही नाम उनकी ज़ुबान पर था कि प्राण-पखेरू उड़ गया !

डेरा ग़ाज़ी खां के क़ैदियों में सबसे लम्बी क़ैद मेरी थी। मेरी क़ैद तीन वर्ष थी। दूसरे क़ैदियों में से कोई छः महीने, कोई नौ महीने और अधिक से अधिक वर्ष-भर के लिए क़ैद था। छः महीने तक के क़ैदी हमारे देखते-देखते रिहा हो चुके थे। वे लोग इससे भी पहले रिहा हो जाते, यदि जेलख़ाने में वस्त्रों की बात पर आंदोलन न किया होता और अधिकारियों ने उनकी क़ैद की अवधि को बढ़ाया न होता। जब उनकी नौ महीने की क़ैद पूरी हो गई, तो सुपरिंटेण्डेण्ट फिर आया और उनसे कहने लगा कि अब भी वस्त्र पहन लो। अन्यथा फिर एक और मुक़द्दमा तुम्हारे विरुद्ध चलाया जाएगा। इसपर हिन्दुओं और मुसलमानों ने तो वस्त्र पहन लिए, लेकिन सिखों ने फिर भी न पहने। अतः उन्हें नौ-नौ महीने की और क़ैद का दण्ड दे दिया गया। जिन महानुभावों ने वस्त्र पहन लिए थे उन्होंने सुपरिंटेण्डेण्ट से कहा कि उन्हें उस जेलख़ाने से किसी अन्य जेलख़ाने में स्थानान्तरित कर दिया जाए। उन्हें किसी अन्य जेल में भेज दिया गया। जब नौ मास और व्यतीत हो गए और सिख समझ गए कि जेलख़ानेवाले फिर उनके विरुद्ध मुक़द्दमा चलाना चाहते हैं, तो उनमें भी दुर्बलता आ गई और उन्होंने भी यह कोशिश की कि वे इस जेलख़ाने से अपने-आपको किसी अन्य जेल में स्थानान्तरित करा लें। अस्तु, उन्हें भी दूसरी जेल में भेज दिया गया।

अब इस सारे जेलख़ाने में बस मैं और सरदार खड़कसिंह दो ही क़ैदी रह गए। खड़कसिंह बड़ा बलवान व्यक्ति था और पर्वत के समान अपने संकल्प पर अटल था। उसे कोई हिला नहीं सकता था। इस बीच जरनैल फिर आया। जब वह हमारी बैरक में पहुंचा तो वह बड़े गर्व और अभिमान से भरा था। उसने सरदार साहब से कहा, "वेल ! खड़कसिंह !"

सरदार खड़कसिंह ने उत्तर दिया—"येस ! वाइ !"

यह सुनकर अंग्रेज़ जल-भुन गया ! जब वह चला गया, तो आदेश दे गया, 'खड़कसिंह को चक्की में बन्द कर दो और डाक्टर ने जो दूध उसके लिए निश्चित कर रखा है, वह भी उसे देना बन्द कर दिया जाए।'

जेल के अधिकारी सरदार साहब को वहां से ले गए। अस्पताल में एक चक्की थी, उसमें उन्हें बन्द कर दिया गया। अब अकेला मैं ही बैरक में रह गया। अस्पताल मेरी बैरक से लगा हुआ था और वहां

दरवाज़े में एक छेद था। मेरी और सरदार साहब की भेंट कभी न कभी उस छेद में से हो जाया करती थी। सरदार साहब बहुत दुर्बल हो गए थे। मैं उन्हें इसी छेद में से कभी-कभी खाने की चीज़ें दे देता। लेकिन वे एक महान व्यक्ति थे। इतनी यातनाओं और कष्टों के बावजूद उनके संकल्प और आत्माभिमान में किसी प्रकार की लड़खड़ाहट नहीं आई थी।

अब जेल के अधिकारियों ने उच्च अधिकारियों को रिपोर्ट की कि मैंने जेल की एक बड़ी-सी बैरक रोक रखी है और इस जेल में क़ैदियों की संख्या बढ़ गई है, इसलिए उन्हें बैरक की आवश्यकता है। अतः मुझे इस स्थान से किसी दूसरी जेल में स्थानान्तरित कर दिया जाए।

इस जेलख़ाने में केवल दो बैरकें थीं। एक में मैं बन्दी था और छोटी बैरक जेल के अधिकारियों के पास थी। सारांश यह कि क़ैदियों की संख्या के मुक़ाबले में स्थान कम था। इसलिए मुझे मियांवाली के जेलख़ाने में भेज दिया गया। मियांवाली की जेल भी छोटी-सी है। उसमें बैरकें नहीं हैं। और सब चक्कियां ही चक्कियां हैं। यहां भी काफ़ी राजनीतिक क़ैदी थे। कांग्रेसवाले भी थे और ख़िलाफ़त वाले भी थे, तथा गुरु के बाग़ के क़ैदी भी थे। लेकिन ये क़ैदी डेरा गाज़ी ख़ां के क़ैदियों में से यहां स्थानान्तरित किए गए थे। और उनके सम्बन्ध जेलवालों से अच्छे थे। इस जगह हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों के पृथक्-पृथक् लंगर थे। हमारे लंगर के कार्यभारी मौलाना इक़बाल थे। ये महोदय पानीपत के रहनेवाले थे और खिलाफ़त आंदोलन में पांच वर्ष क़ैद से दण्डित हुए थे। ये खाना पकाने में बड़े दक्ष थे, लेकिन हांडी में मिर्च अधिक डालते थे और इससे मेरे लिए एक बहुत बड़ी मुसीबत पैदा कर देते थे। मौलाना ज़फ़रअली ख़ां का लड़का अख्तरअली ख़ां भी हमारे साथ था।

इस जेल का दारोग़ा भी अजीब व्यक्ति था। मियांवाली में भीषण गर्मी पड़ती है और रेत भी उड़ती है। जेलख़ाने में एक कुआं था। इसका पानी बहुत ठण्डा था। दारोग़ा साहब राजनीतिक क़ैदियों को नहलाने के लिए वहां ले जाया करता था। मुझे भी वह बहुत कहा करता था, लेकिन मैं नहीं जाता था। सायं समय जब गिनती बन्द की जाती थी, तो जेलख़ाने के मध्यस्थल में एक बुर्ज था, जिसके चारों ओर बैठने को बड़ी अच्छी जगह थी, दारोग़ा वहां बैठा करता था और हमारे राजनीतिक बन्दी भी वहां जाकर बैठा करते थे। इस जगह जाकर बैठने के लिए मुझे भी कहा जाता था। लेकिन मैं वहां भी नहीं

जाता था, क्योंकि इन जेल अधिकारियों का सारा जीवन यद्यपि क़ैदियों के साथ व्यतीत होता है, लेकिन अधिकारी आख़िर अधिकारी और क़ैदी क़ैदी ही होता है। इसके अतिरिक्त इन अधिकारियों के स्वभाव अद्भुत प्रकार के होते हैं।

एक दिन अख़्तरअली खां और कुछ अन्य वन्दी दारोग़ा के साथ उस स्थान पर बैठे हुए थे। इसी अवधि में जेलखाने का डाक्टर आ पहुंचा। वहां जितनी कुर्सियां थीं वे सब राजनीतिक बन्दियों ने घेर रखी थीं। डाक्टर को देखकर वे राजनीतिक बन्दी न तो उसके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए उठकर खड़े हुए और न ही उसके लिए कोई कुर्सी खाली की। इसपर दारोग़ा ने उन बन्दियों का वहुत अपमान करके उनसे कुर्सियां खाली कराई और उन्हें चलता किया।

राजनीतिक बन्दियों के इस अनादर से मेरे दिल को तो वहुत आघात पहुंचा, लेकिन मुझे ऐसा लगा कि इन राजनीतिक बन्दियों ने स्वयं कुछ भी परवा नहीं की थी, क्योंकि दूसरे ही दिन मैंने देखा कि वे फिर दरवाज़े के साथ खड़े हैं और सिपाही से कह रहे हैं कि वह दारोग़ा साहब से उनके लिए वहां जाने की अनुमति मांगे।

१९२४ ई० में मेरी क़ैद की अवधि समाप्त होने में कुछ दिन रह गए थे कि दारोग़ा साहब ने आकर सूचना दी कि मुझे पेशावर जेल में भेज देने के आदेश जारी हो गए हैं और मुझे लेने के लिए पुलिस आ गई है तथा वह दरवाज़े पर बैठी हुई है। दारोग़ा के कहने पर मैंने अपना सामान उठा लिया और दरवाज़े की ओर चला गया। वहां से जेल के कर्मचारी मुझे स्टेशन पर ले गए। अब यात्रा आरंभ हो गई। गाड़ी जब बैरआबाद पहुंची, तो मुझे गाड़ी से उतार लिया गया और पेशावर की पुलिस के हवाले कर दिया गया। पेशावर की पुलिस ने मुझे मोटर में बिठाया। मोटर जो रवाना हुई, तो मरदान की इस ओर पकंचर हो गई। पुलिस बहुत चिन्तित हुई। उसने मोटर छोड़ दी, एक तांगा पकड़ लिया और मुझे चार सद्दा ले आई। वहां के असिस्टेण्ट कमिश्नर के सामने मुझे पेश किया गया। उस समय चार सद्दा का असिस्टेण्ट कमिश्नर दिलावर खां था। उसने पुलिस को आदेश दिया कि वह मुझे ले जाए और मेरे गांव में पहुंचाकर रिहा कर दे।

इस आदेश के अनुसार पुलिस मुझे मेरे गांव में ले आई और हमारे मदरसे के निकट मुझे छोड़कर चली गई। लड़कों की छुट्टी का समय था। उन्होंने मुझे देखा तो सब दौड़कर मेरे पास आ गए और मेरे चारों ओर जमा हो गए। लेकिन मेरे गांव में आज के दिन मेरी रिहाई प्रत्या-

शित नहीं थी, क्योंकि वास्तव में सरकार ने कुछ दिन पहले ही इस नाटकीय ढंग से रिहा कर दिया था। इसका एक विशेष कारण था। हमारे गांव के लोगों ने निश्चय कर रखा था कि मैं जब निश्चित दिन को रिहा किया जाऊंगा, तो वे मेरे स्वागत के लिए 'अटक' जाएंगे और उस स्थान से मुझे जुलूस के साथ अपने गांव में ले आएंगे। उन्होंने घोड़ों का प्रबन्ध कर रखा था। लेकिन सरकार इस बात को पसन्द नहीं करती थी, क्योंकि इससे हमारा बहुत प्रापेगण्डा हो जाता। अतः सरकार ने मुझे कुछ दिन पहले रिहा कर दिया और चुपके से मेरे गांव में लाकर छोड़ दिया गया।

तीन वर्ष के पश्चात् मैं जेलख़ाने से रिहा हुआ था। इन तीन वर्षों में हमारी जाति बहुत आगे बढ़ चुकी थी। हमारे मदरसे ने अच्छी उन्नति कर ली थी। इस सफलता का समस्त श्रेय हमारे मदरसे के लड़कों और अध्यापकों को था। उन्होंने मेरे क़ैद हो जाने के बाद देश में बड़ा काम किया था। मानो मेरी क़ैद का यथार्थ लाभ उठाया था। यह सब उन लोगों के परिश्रम का फल था।

हमारे मदरसे का वार्षिक अधिवेशन निकट ही था और मेरे आ जाने के कारण उन्होंने अधिवेशन की तारीखें कुछ दिन आगे डाल दीं। ख़ैर, जलसा बड़े समारोह से हुआ। उसमें हज़ारों लोग उपस्थित हुए। लोगों में बहुत प्रेम, प्यार और जोश व ख़रोश था। जलसे में बहुत भाषण हुए और कविताएं भी पढ़ी गईं। इस अवसर पर जाति की ओर से मुझे एक पदक प्रदान किया गया और 'फ़ख़्र-ए-अफ़ग़ान' की उपाधि से सम्मानित किया गया। मैंने इस जलसे में संक्षिप्त-सा भाषण किया और अपनी जाति को मैंने शेर के एक बच्चे की यह कहानी सुनाई :

"एक थी शेरनी। उसने भेड़ों के रेवड़ पर आक्रमण कर दिया। वह गर्भवती थी। आक्रमण के दौरान उसके बच्चा पैदा हो गया और वह स्वयं मर गई। उसका यह बच्चा एक भेड़ ने अपने पीछे लगा लिया। शेर का बच्चा उन्हीं भेड़ों के रेवड़ में पला और बड़ा हुआ। उसने भेड़ों के गुण और प्रकृति ग्रहण कर ली। वह भेड़ों के साथ ही घूमता फिरता रहता और चरता। एक दिन एक शेर उधर आ निकला और उसने उन भेड़ों पर आक्रमण कर दिया। आक्रमण के समय शेर ने देखा कि इन भेड़ों में शेर का भी एक बच्चा है। वह भी उससे डरकर भेड़ों के साथ दौड़ा जा रहा है और भेड़ों की भांति 'भाएं-भाएं' कर रहा है। आक्रमणकारी शेर को यह बात बहुत अद्भुत लगी कि कहां शेर का बच्चा और कहां यह भाएं-भाएं और भेड़ों का सा डरपोकपन। वह

शेर के बच्चे के निकट आया और उसने शेर के बच्चे को भेड़ों से अलग कर लिया। फिर वह उसको एक तालाब के किनारे ले गया ताकि वह पानी के अन्दर अपना मुंह देख ले और उसे मालूम हो जाए कि वह भेड़ नहीं शेर है।

"शेर के बच्चे ने जब पानी में अपना प्रतिबिम्ब देखा, तो उस आक्रमणकारी शेर ने उससे कहा—'अरे क्या देखता है, तू भेड़ नहीं शेर है, शेर। शेर की भांति दहाड़।'

"फिर क्या था, शेर के बच्चे का भ्रम दूर हो गया और वह ज़ोर-ज़ोर से दहाड़ने लगा। जंगल कांप उठा और भेड़ों के रेवड़ तो क्या, अन्य बड़े-बड़े जंगली पशुओं में भी भगदड़ मच गई।"

यह कहानी सुनाकर मैंने गरजकर कहा, "ऐ पख़्तूनो, मैं भी तुम्हें यही कहता हूं कि तुम भेड़ नहीं हो। तुम शेर हो शेर! ग़ुलामी में पलने के कारण तुम अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गए हो। अपने-आपको पहचानो। 'बाएं-बाएं' मत करो और शेरों की भांति गरजो।"

मेरे इस भाषण से सरकार बहुत सटपटाई, परन्तु मेरी जाति बहुत प्रसन्न हुई। उसपर इसका जादू-सा प्रभाव हुआ। जलसा समाप्त हो गया। लोग अपने-अपने गांवों को चले गए। लेकिन उनके कानों में मेरा यह भाषण गूंजता रहा।

११

मई १९२६ ई० में मेरी बड़ी बहन हज को जा रही थी। उसने मुझे भी विवश किया कि मैं भी उसके साथ जाऊं। अस्तु, मैं और मेरी बीवी दोनों ने उसके साथ हज के लिए प्रस्थान किया। कराची से आगे हमारी यात्रा समुद्री जहाज़ में आरम्भ हुई। लेकिन हमें फर्स्ट क्लास के या सेकण्ड क्लास के टिकट न मिल सके, क्योंकि वे सब लोगों ने पहले ही से ले लिए थे। गर्मी का मौसम था और थर्ड क्लास में बहुत-से हाजी सवार थे। जब जहाज़ कराची से दूर निकल गया, तो हमें वमन आने आरम्भ हो गए और कामरान तक हम कुछ भी खा न सके। कामरान में जब जहाज़ ठहरा और हम जहाज़ से नीचे उतरे, तो खाने-पीने को मन चाहा और हमने खाया-पिया। रात हमने वहां व्यतीत की और दूसरे दिन जहाज़ ने वहां से प्रस्थान किया। अब मुझे इंफ्लूएंज़ा हो गया। ख़ुदा भला करे उस अरब का कि वह मुझे अपनी सेकण्ड क्लास में ले गया और मुझे अपने स्थान पर सुला दिया। उसने मेरी देखभाल की।

जद्दा पहुंचकर हम जहाज़ से नीचे उतरे। उस समय तक मैं वैसा ही बीमार था। अध्यापक हमें अपने स्थान पर ले आया। हमारे पास सामान बहुत था, मुअल्लस (धार्मिक गाइड) की लापरवाही से वह जहाज़ में रह गया और गुम हो गया। या उसीने चुरा लिया।

जद्दा से दूसरे दिन हम मक्का चले गए। गर्मी का मौसम था और मक्का में भीषण गर्मी पड़ रही थी। हमारे लिए यह बात बड़ी विपत्ति का कारण था कि दिन के समय कड़ी गर्मी होती थी और रात के समय काफ़ी ठण्डक हो जाती थी। इससे बेचारे हाजी बहुत बुरी तरह बीमार पड़ जाते थे और प्रायः मरते रहते थे। उस वर्ष सऊदियों ने मक्का पर अधिकार कर लिया था और शरीफ़-ए-मक्का (मक्का के शासक) को भगा दिया था। सऊदियों ने शासन की बागडोर को सुचारु रूप से संभाला और सब प्रकार से शांति स्थापित कर दी थी। हाजी लोग बताते थे कि जिस समय शरीफ़-ए-मक्का का शासन था, उस समय उस देश में बड़ी अशांति और उपद्रव था। हाजियों के क़ाफ़िले लूट लिए जाते थे और उस लूट में शरीफ़-ए-मक्का स्वयं लुटेरों के साथ हिस्सेदार हुआ करता था। इस वर्ष सऊदियों ने मुहम्मदअली, शौकतअली और ज़फ़र-अली ख़ां आदि तथा भारत के दूसरे बहुत-से नेताओं को आमंत्रित किया था और भारत से बहुत-से नेता वहां पहुंचे थे। उस वर्ष संसार-भर के मुसलमानों का एक विराट सम्मेलन हुआ। उसमें मैं भी सम्मिलित हुआ। लेकिन सम्मेलन से कोई विशेष लाभ न हुआ। समस्त विचार-विमर्श केवल प्रस्तावों और भाषणों तक ही सीमित रह गया। उल्टे, इस सम्मेलन से लोगों में मतभेद और विरोध ही अधिक बढ़ा।

हमने हज से अवकाश प्राप्त कर लिया। मेरी बहन मदीना चली गई और वहां से अपने देश को लौट गई। लेकिन मेरा स्वास्थ्य पूर्ववत् ख़राब था, अतः मैं और मेरी बीवी 'ताइफ़' चले गए। ताइफ़ हजाज़ प्रदेश में एक स्वास्थ्यप्रद रमणीक ठण्डा स्थान है। ताइफ़ के समस्त बंगले, जो तुर्कों ने बनाए थे, वीरान पड़े थे। हमारा सौभाग्य था, क्योंकि जब हम ताइफ़ जा रहे थे, तो रास्ते में एक पठान हमारा सहयात्री हो गया। उसका घर ताइफ़ ही में था। हम उसके साथ चले गए। उसे और उसकी बीवी को तो 'पश्तू' आती थी, लेकिन उसके बच्चों को नहीं आती थी। उसका घर बहुत सुन्दर था। हमने उसके साथ कुछ दिन बड़े आनन्द और सुख से गुज़ारे और बाद में वापस मक्का चले गए।

ताइफ़ में एक घटना, जो मेरे अनुभव में आई, उल्लेखनीय है। एक दिन मैं शहर से बाहर निकला ही था कि क्या देखता हूं—एक व्यक्ति

जिसकी दाढ़ी सफ़ेद थी और एक लम्बा-सा चोग़ा पहने हुए था, मुझे आवाज़ें दे रहा था, "ऐ शेख़! तआल, तआल"—अर्थात् इधर आओ।

मैं उसके निकट चला गया, तो उसने मुझसे कहा, "यहां रसूलिल्लाह की दाढ़ी का एक बाल पड़ा है और इसके साथ एक पत्थर भी पड़ा है, जिसपर रसूलिल्लाह के पांव का चिह्न है।"

मैंने उसे उत्तर दिया, "मैं यहां इसके लिए नहीं आया हूं, बल्कि मैं इसलिए आया हूं कि मैं उस रसूल-ए-पाक का वह धैर्य, सहिष्णुता और साहस देखूं कि जिससे वे मक्का से इन निर्जन मरुस्थलों में लोगों के भले के लिए ताइफ़ पधारते हैं और ताइफ़ के लोग उन्हें पत्थर व ढेले मारते हैं, उनके पीछे कुत्ते लगाते हैं, उन्हें मारते-पीटते हैं और वे इन समस्त अत्याचारों के बावजूद अपनी जाति से निराश नहीं होते, प्रत्युत उसके लिए प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि ख़ुदाया! तू मेरी इस जाति को सन्मति प्रदान कर कि ये नेकी के रास्ते पर चलें।

मेरा यह उत्तर सुनकर वह लम्बी दाढ़ीवाला कुछ कह न सका। मौन होकर रह गया।

मक्का पहुंचकर हमने कुछ दिन वहां व्यतीत किए। फिर जद्दा चले आए। जद्दा में कुछ दिन गुज़ारने के पश्चात् हम लोग मदीना चले गए। हमारे क़ाफ़िले में चार महिलाएं और छः पुरुष थे। उस ज़माने में मोटरें नहीं हुआ करती थीं और यात्रा ऊंटों के द्वारा हुआ करती थी। मंज़िल रात को तय की जाती थी। चारों ओर निर्जन, निस्तब्ध मरुस्थल फैला हुआ था। लेकिन नज्दियों के कारण वहां इतनी शांति थी कि मैं वर्णन नहीं कर सकता।

मदीना पहुंचकर हमने वहां भी कुछ दिन गुज़ारे और वहां से हमने बैतुलमुक़द्दस जाने का संकल्प किया तथा हम मदीना से राबग़ चले गए। यह एक छोटी-सा बन्दरगाह है। तीसरे दिन जहाज़ आया। हम लोग उसमें बैठ गए और स्वेज़ के स्थान पर उससे उतर पड़े। स्वेज़ से हम रेलगाड़ी द्वारा बैतुलमुक़द्दस पहुंच गए। बैतुलमुक़द्दस में मेरी पत्नी सीढ़ियों से गिर पड़ी और उसके प्राण छूट गए। वह अपने पीछे दो बच्चे—एक लड़का और एक लड़की छोड़ गई। मुझे उसके निधन पर अत्यन्त दुःख और शोक हुआ, क्योंकि वह मेरी दूसरी जीवन-संगिनी थी। इसके बाद मैंने फिर विवाह नहीं किया जबकि मैं अभी जवान था। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि मेरे दिल में देश और जाति की सेवा का भाव पैदा हो चुका था और मैं विवाह के लिए तैयार नहीं था। कुछ दिन मैंने फिलस्तीन में व्यतीत किए और उसके प्रसिद्ध स्थान देखे।

फिर इस स्थान से 'लेबनान', शाम और इराक़ की यात्रा की। नजफ़ और करबला भी देखे और बग़दाद में कुछ दिन गुज़ारने के पश्चात् मैं बसरे चला गया। फिर बसरे से जो जहाज़ में सवार हुआ, तो कराची आकर उतरा। लेकिन इस जहाज़ और हाजियों के उस जहाज़ में बड़ा अन्तर था, जिसपर हम कराची से जद्दा जाते हुए सवार हुए थे। उसमें बहुत कष्ट और इसमें बहुत सुख था। कराची में मैंने कुछ दिन गुज़ारे और वहां से वापस अपने गांव आ गया।

१२

हमारे प्रान्त में एक भी राष्ट्रीय अख़बार नहीं था। मैंने इरादा कर लिया कि पख़्तूनों के लिए उनकी भाषा में एक पश्तू समाचारपत्र जारी किया जाए, जो सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय समाचारपत्र हो और जाति की सम्पत्ति हो। इस उद्देश्य के लिए बड़ी दौड़-धूप के पश्चात् मई १९२८ में मैं अपने इस संकल्प में सफल हुआ। 'पश्तून'[1] के नाम से मैंने समाचारपत्र प्रकाशित किया। यह वह ज़माना था कि जब पख़्तूनों को अपनी भाषा से किसी प्रकार का अनुराग या रुचि नहीं थी, और न ही वे यह बात जानते थे कि यह हमारी अपनी भाषा है, जबकि प्रत्येक जाति अपनी भाषा से पहचानी जाती है और अपनी भाषा ही से कोई जाति जाति कहलाती है। अपनी भाषा के बिना कोई जाति संसार में उन्नति नहीं कर सकती। जो भी जाति अपनी भाषा को भुला देती है, वह जाति संसार से मिट जाती है। खेद की बात है कि पख़्तून एक ऐसा बेपरवाह और प्रमादी इन्सान है कि जहां भी वह चला जाता है, उसकी अपनी भाषा तो छूट जाती है और वह दूसरों की भाषा सीख लेता है। उसने कहीं भी ऐसा नहीं किया कि उसने दूसरों को अपनी भाषा सिखाई हो। पख़्तूनों को अपनी भाषा के लिखने-पढ़ने में रुचि नहीं है। अनपढ़ लोगों को तो रहने दीजिए, पढ़े-लिखे व्यक्तियों को जब मैंने कहा कि

---

१. 'पश्तून' अख़बार को सीमा प्रान्त में वही महत्त्व प्राप्त था जो सारे भारत में गांधीजी के अख़बार 'हरिजन' को था। बाचाख़ान अपने विचार और आवश्यक सूचनाएं इसी पत्रिका के द्वारा लोगों तक पहुंचाते थे। यह पत्रिका लगभग प्रत्येक देश के पख़्तूनों तक पहुंचता था। स्वाधीनता के आंदोलन के दिनों में अंग्रेज़ी सरकार ने इसको बन्द कर दिया, लेकिन पाकिस्तान की इस्लामी सरकार ने भी इसके प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा दिए। 'पश्तून' अख़बार का यह संक्षिप्त-सा जीवन भी विशेष महत्त्व रखता है।

'पश्तून' अख़बार के ग्राहक बन जाओ और इसे पढ़ा करो, क्योंकि यह पख्तूनों का अपना अख़बार है, तो इसका उत्तर उनकी ओर से यह होता था कि 'पश्तू' में क्या धरा है! वह इसमें क्या पढ़ेगा और इससे क्या सीखेगा।

मैं उन्हें कहता था कि "यह तो पश्तू का दोष नहीं है। आज तुम संसार-भर की जो भाषाएं देख रहे हो, ये भाषाएं भी पहले हमारी पश्तू भाषा की भांति पिछड़ी हुई थीं। ये आकाश से नहीं उतरी थीं। लेकिन इनमें ऐसे लोग पैदा हुए, जिन्होंने अपनी इन भाषाओं की सेवा की और इन्हें आकाश पर पहुंचा दिया। हममें से किसने अपनी भाषा की सेवा और उन्नति के लिए प्रयत्न किया है? भाषाएं कहीं जादू की छड़ी या छूमन्तर से उन्नति नहीं करतीं।"

पश्तू भाषा में क्या रखा है? इत्यादि—ये तो हमारे बड़े-बड़े अंग्रेज़ी शिक्षित लोगों के विचार थे और दूसरी ओर मुल्ला लोग थे जो यह प्रचार करते थे कि पश्तू दोजख़ियों (नरकवासियों) की भाषा है और यह दोज़ख में बोली जाएगी। अब हमारी जाति बेचारी इतनी नासमझ और विद्याहीन थी कि उसने मुल्ला साहब से यह भी नहीं पूछा कि तुम दोज़ख से कब आए हो और यह जानकारी तुम्हें किस प्रकार से प्राप्त हुई है कि पश्तू दोज़खी भाषा है?

ऐसी ही परिस्थितियों में पश्तून पत्रिका जारी हुई और थोड़े ही समय में पश्तूनों में सर्वप्रिय हो गई और संसार के प्रत्येक भाग में, जहां भी पख्तून रहते थे, वे इसे मंगाते थे। अमेरिका में रहनेवाले पश्तूनों ने इस पत्रिका की प्रकाशन संख्या को उन्नति देने में सराहनीय सहायता की। उन्होंने केवल इसकी संख्या बढ़ाने ही में नहीं, प्रत्युत इसकी आर्थिक स्थिति सुधारने में भी सहायता पहुंचाई। मैंने तो यह भी सुना है कि अमानुल्लाह खां के समय में अफ़ग़ानिस्तान में यह पत्रिका बहुत लोकप्रिय थी। इसने लोगों में पश्तू भाषा के लिए इतना प्यार-प्रीति उत्पन्न की थी कि अमानुल्लाह खां और उनके साथियों ने भी पश्तू का एक अख़बार अफ़ग़ानिस्तान में जारी किया था, जिसका नाम 'द पुश्तुन ज़ग़' (पश्तून की आवाज़) था। अमानुल्लाह खां को स्वयं पश्तू भाषा से इतना शौक़ पैदा हो गया था कि कहा जाता है कि उन्होंने आदेश जारी कर दिया था कि तीन वर्षों के भीतर प्रत्येक सरकारी कर्मचारी पश्तू सीख ले, क्योंकि तीन वर्ष के पश्चात् पश्तू सरकारी और राष्ट्रीय भाषा बन जाएगी। लेकिन अंग्रेज़ों ने उन्हें ऐसा करने का मौक़ा नहीं दिया। कहा जाता है कि 'द पुश्तून ज़ग़' के अभी केवल नौ

अंक ही निकले थे कि फिरंगियों ने मुल्ला-मुलाटों, हज़रतों और बुज़ुर्गों आदि नाममात्र के धार्मिक नेताओं और धार्मिक विद्वानों द्वारा अमानुल्लाह खां को काफ़िर घोषित करवा दिया। उन्होंने अमानुल्लाह खां को अफ़ग़ानिस्तान से बाहर निकलवाकर ही दम लिया। अमानुल्लाह खां को अपना देश छोड़कर इटली चले जाना पड़ा।

अब सोचिए पश्तूनों के इस व्यवहार से किसे हानि पहुंची? स्वयं उन्हींको। अमानुल्लाह खां तो उन लोगों की भलाई, समृद्धि, और सुख का इच्छुक था। परन्तु वे लोग उठ खड़े हुए और मित्र और शत्रु में भेद न जान सके। उत्तेजना में आकर उन्होंने अपने ही हितैषी को देश से निकाल बाहर किया। यह उनकी अत्यन्त कृतघ्नता थी और कृतघ्नता भगवान के निकट बड़ा भारी अपराध है। इसीलिए तो उनके सिर पर खुदा ने बच्चा-सक्का को बिठा दिया था, उनकी और उनके देश की उन्नति को अवनति में बदल दिया था।

अफ़ग़ानिस्तान की बरबादी को हम लोग अपनी तबाही समझते थे। अंग्रेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान को हमारे कारण तबाह किया, क्योंकि अफ़ग़ानिस्तान की उन्नति का प्रभाव सीधा हमपर पड़ता था; फिरंगी यह नहीं चाहते थे। हमसे जितना भी हो सकता था, चाहे आर्थिक रूप से या जन-सहायता के रूप से, हमने उस विपत्ति में अफ़ग़ानिस्तान की सहायता की और उस समय तक अपनी सहायता जारी रखी, जब तक कि नादिर खां सफल न हो गए।

मैं अफ़ग़ानिस्तान की क्रांति के ज़माने में उसके पक्ष व हित में प्रचार करने और सहायता जुटाने के लिए भारत गया था। पंजाब में मैंने डाक्टर इक़बाल, ज़फ़रअली खां, मलिक लाल खां और ऐसे अन्य बहुत से मुसलमान नेताओं से भेंट की थी। लाहौर में डाक्टर इक़बाल से मिलने पर मेरे ख़िलाफ़त के साथियों ने मेरी बड़ी निन्दा की थी और वे मुझे कहते थे कि मैंने इक़बाल से क्यों भेंट की। वह तो किसी काम का आदमी नहीं है। वह तो एक शायर है, रुबाइयां और ग़ज़लें कहता है। उसमें कर्मशीलता का अभाव है। लेकिन आज मैं पंजाब के समाचार-पत्रों और नेताओं को देखता हूं, तो आश्चर्यचकित होता हूं कि वे उसी इक़बाल की प्रशंसा के पुल बांधते हुए नहीं थकते और यह भी कहते हैं कि पाकिस्तान की कल्पना सबसे पहले उसीके मस्तिष्क में पैदा हुई थी—उसीने यह विचार प्रदान किया था। पंजाब के मुसलमानों का कोई गुनाह नहीं है। संसार-भर में यह नियम है कि जीवित जातियां जीवित पुरुषों की क़द्र करती हैं और मुर्दा जातियां मुर्दों की क़द्र करती

हैं। हम मुसलमान लोग सदा मुर्दों की क़द्र करते हैं। हमारे यहां जीवित मनुष्यों की कोई क़द्र नहीं।

अफ़ग़ानिस्तान के लिए प्रचार के सम्बन्ध में मैं लाहौर से लखनऊ चला गया। लखनऊ में कांग्रेस का जलसा था और उसमें गांधीजी और जवाहरलाल भी सम्मिलित हुए थे। यह १९२८ ई० की बात है। मेरा यह पहला अवसर था कि मुझे गांधी और जवाहरलाल से भेंट का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन दोनों महानुभावों से पहले मेरी कोई जान-पहचान नहीं थी, लेकिन जवाहरलालजी के साथ मेरे भाई डाक्टर ख़ान साहब के अच्छे सम्बन्ध थे। क्योंकि वे दोनों एक जगह इंगलैंड में रह चुके थे और लन्दन के विश्वविद्यालय में इकट्ठे पढ़े थे। डाक्टर ख़ान साहब ने एक पत्र उनके नाम लिख दिया था। जब जलसा समाप्त हुआ, तो जवाहरलालजी चौ० खलीकुज़्ज़मां के अतिथि थे, मुझे भी अपने साथ अपने मेज़बान (आतिथेय) के यहां ले गए। खाना खाने के पश्चात् मेरे और नेहरू के मध्य अफ़ग़ानिस्तान के विषय में बहुत बातें हुईं।

लखनऊ से मैं फिर दिल्ली चला आया। जुमा के दिन मसजिद में मौलाना मुहम्मद अली से मेरी भेंट हो गई। वे बहुत अच्छे इन्सान थे और मुझपर दयालु थे, लेकिन उनके बड़े भाई शौकत अली कोई अच्छे इन्सान सिद्ध नहीं हुए थे, परन्तु उनका प्रभाव मुहम्मद अली पर बहुत था और कभी-कभी वे मुहम्मद अली को ग़लत रास्ते पर चला देते थे। यही कारण था कि मैं मुहम्मद अली से रुष्ट था और मैंने उनसे कुछ नज़र बचाई। लेकिन उन्होंने मुझे देख ही लिया। वे स्वयं मेरे पास चले आए और मुसकरा दिए और मुझसे कह दिया—"हम पठानों की परवाह नहीं करते!"

फिर क्या था, थोड़ी नोंक-झोंक हो गई और मैंने तुर्की-व-तुर्की उत्तर दिया, "हम भी ऐसे नेताओं की परवाह नहीं करते, जो लोगों के फुसलाने से ग़लत रास्ते पर चलते हैं।"

लगे हाथों मैंने यह भी कह दिया, "मौलाना साहब! आप ज़रा विचार करें। आप जो बातें अमानुल्लाह के विषय में कहते हैं, वही तो अंग्रेज़ भी कहते हैं।"

इस बात का उनपर मानो बहुत प्रभाव हुआ। उन्होंने तुरन्त मुझे गले से लगा लिया और कहा, "भाई! मुझे सचाई से वाक़िफ़ कर दो।"

इसके पश्चात् मुहम्मद अली साहब मुझे अपने घर ले गए। सच्ची बात तो यह थी कि अमानुल्लाह खां जिस समय यूरोप जा रहे थे, उस

समय शौकत अली ने बड़ी धूमधाम से उनका स्वागत किया था और उन्हें अभिनन्दन-पत्र भी भेंट किया था। उस अभिनन्दन-पत्र में शौकत अली ने अमानुल्लाह खां की प्रशंसा के पुल बांध दिए थे। मैं भी उस उत्सव में उपस्थित था। किन्तु विदा के पश्चात् मैंने लोगों को यह कहते सुना कि शौकत अली को जितनी आशा थी, अमानुल्लाह खां ने उन्हें उतने पैसे नहीं दिए थे। इसलिए वे अमानुल्लाह खां से नाराज़ थे।

कुछ दिनों के बाद नादिर खां की ओर से काबुल-विजय का तार प्राप्त हुआ, तो हमने बड़ा हर्ष मनाया। इस उल्लास में लोगों ने एक जुलूस हस्तनगर के उत्तरी छोर से और दूसरा जुलूस दक्षिणी छोर से निकाला। ये दोनों जुलूस उतमान ज़ई में एक स्थान पर इकट्ठे हो गए और उस स्थान पर एक विराट जलसा हुआ। जलसे में अनेक राष्ट्रीय कविताएं पढ़ी गईं और भाषण भी हुए। मैंने भी इस अवसर पर भाषण किया। मैंने अपने भाषण में पठानों से कहा :

"संसार में दो ही रास्ते हैं, जिनपर चलकर जातियां उन्नति कर सकती हैं—एक धर्म और दूसरा राष्ट्रीयता। आज यदि तुम्हें विद्या प्राप्त न हो, तो आंखें तो मौजूद हैं। यूरोप और अमरीका को देखो, जिनमें धर्म तो नहीं है, लेकिन उनमें राष्ट्रीयता मौजूद है। यही कारण है कि वे आकाश तक जा पहुंचे हैं और हम हैं कि भूमि पर भी नहीं चल सकते। वे आबाद हो गए हैं और हम बरबाद हैं। उनके जीवन को देखो और अपने जीवन को भी देखो। हमारी इस तबाही व बरबादी का बड़ा कारण यह है कि हममें न धर्म है न राष्ट्रीयता। संसार में एक क्रांति आ रही है और तुम लोगों को उसकी खबर तक नहीं। मैं हाल ही में भारत गया था। वहां मैंने देखा कि भारत की महिलाओं और पुरुषों—दोनों ने अपनी जाति की सेवा के लिए कमर कस रखी है और तुम्हारी महिलाओं की तो बात एक तरफ़ रही, यहां पुरुष भी सेवा के लिए तैयार नहीं हैं और तैयारी की बात तो क्या, वे जाति और देश ही से अनभिज्ञ हैं।

"क्रांति की उपमा जल-प्रवाह से दी जा सकती है और जो जातियां जागृत होती हैं, वे प्रवाह की प्रतीक्षा में खड़ी रहती हैं और ज्योंही जल-प्रवाह आता है, वे प्रवाह के साथ हो जाती हैं और उसे अपनी भूमियों की ओर मोड़ लेती हैं, उससे लाभ उठा लेती हैं और जो जातियां सोई होती हैं, जिनमें भाईचारा, आपस में मेल-जोल और राष्ट्रीयता का अभाव होता है और जो स्वार्थपरायण होती हैं, उनपर जब यह क्रांति रूपी जल-प्रवाह आता है, तो वे उसमें बह जाती हैं—यह जल-प्रवाह

ऐसी जातियों को बहा ले जाया करता है और उनकी भूमियों को भी।"

इसके बाद मैंने उपस्थित लोगों से फिर कहा—"पठानो! तुम इन समुन्नत जातियों को देखो। तुम्हारा यह ख़याल होगा कि ये जातियां शायद ऐसी ही हालत में आकाश से उतरी थीं। लेकिन ऐसी बात नहीं है। ये भी हमारी तरह की जातियां हैं। जब यह बात है, तो उन्होंने क्योंकर ऐसी उन्नति कर ली और हम क्यों पीछे रह गए? यह बात विचारणीय है। उनकी उन्नति का रहस्य यह है कि उनमें ऐसे लोग पैदा हो गए, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत भोग-विलास, सुख-सुविधा, अपनी उन्नति और अपनी समृद्धि को जाति की समृद्धि पर न्योछावर कर दिया। इससे उनकी पूरी समृद्धि और उन्नति हो गई। लेकिन हममें ऐसे लोग पैदा नहीं हुए, इसलिए हम पीछे रह गए। दूसरे लोग इस बात को समझते हैं कि उनकी जाति उन्नति प्राप्त कर लेगी, तो उनकी उन्नति भी हो जाएगी। लेकिन हम लोग अपनी-अपनी चिन्ता में लगे रहते हैं। हममें प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता है कि जाति चाहे नदी में डूब जाए, परन्तु किसी प्रकार वह स्वयं समृद्धिशाली हो जाए। वह इस बात को नहीं समझता कि यदि वह आबाद हो गया अर्थात् समृद्धिशाली हो गया, तो केवल वही आबाद हुआ, इससे जाति तो आबाद नहीं होती; और यदि जाति आबाद या समुन्नत हो जाती है, तो हम सब समुन्नत हो जाते हैं। दूसरी जातियों का जीवन सामूहिक जीवन है। हमारा जीवन वैयक्तिक है और वैयक्तिक जीवन पशु-जीवन होता है। पशु या पक्षी भी अपना घर अथवा घोंसला बनाता है और बीवी भी रखता है, बच्चे भी पैदा करता है, बच्चों का पालन करता और बड़ा करता है। हम भी यही कुछ करते हैं। इस दृष्टि से हममें और पशु में क्या अन्तर है? हम कैसे जीवों में श्रेष्ठतम जीव बन बैठे हैं। इसीलिए मैं कहता हूं, अपितु इस बात पर ज़ोर देता हूं कि यदि देश और जाति की उन्नति व समृद्धि चाहते हो, तो इस वैयक्तिक जीवन के स्थान पर जाति के अन्दर सामूहिक जीवन पैदा करो। इसके बिना जातियां उन्नति नहीं कर सकतीं।

"मैंने सुना, अमानुल्लाह खां कहा करते थे कि 'मैं पश्तूनों का क्रांतिकारी बादशाह हूं।' यह सत्य बात है, हम पश्तूनों में तो क्रांति उन्होंने ही पैदा की है। अफ़ग़ानिस्तान की क्रांति से जितना लाभ पश्तूनों ने उठाया है, उतना लाभ स्वयं अफ़ग़ानिस्तान के लोगों ने नहीं उठाया, क्योंकि वे सो रहे थे और हम थोड़े-थोड़े जाग चुके थे।"

इस जलसे का प्रभाव लोगों पर बहुत गहरा हुआ।

जलसे के दूसरे दिन कुछ नवयुवक मेरे पास आए और उन्होंने मुझसे कहा कि वे जाति की सेवा और सुधार के लिए एक संस्था बनाना चाहते हैं। इस विषय पर हमारे मध्य विचार-विमर्श आरंभ हो गया। हमारी एक संस्था पहले ही से विद्यमान थी—'इसलाह-अल-अफ़ग़ाना। यह संस्था हमारे प्रान्त में शिक्षा फैलाने का काम कर रही थी। हमारा विचार था कि यह संस्था तो यही काम करती रहे, क्योंकि यह काम अत्यावश्यक था, लेकिन हमारी जाति में और बहुत-सी सामाजिक त्रुटियां और दोष हैं और सामाजिक तौर पर बहुत पिछड़ी हुई है। इन त्रुटियों को दूर करने के लिए हमें अलग सामाजिक आंदोलन आरंभ करना चाहिए। अस्तु, हमने ख़ुदाई खिदमतगारी के आंदोलन की, जो एक सामाजिक आंदोलन है, नींव रख दी। इस आंदोलन का राजनीति से कोई सम्वन्ध नहीं था, लेकिन फिरंगियों के अत्याचार-अनाचार ने इसका सम्बन्ध राजनीति से भी जोड़ दिया। सच्ची बात तो यह है कि स्वयं अंग्रेज़ों ने कांग्रेस से हमारा एकत्वभाव पैदा कर दिया।

हम पठानों में दलबन्दियां, आपस की शत्रुता, द्वेष व ईर्ष्या, कुरीतियां और बुरी प्रथाएं विद्यमान थीं। हमारे मध्य झगड़े, फ़साद और मुक़द्दमे चलते थे। जो कुछ हम पैदा करते थे, वह सब हम इन्हीं बुराइयों की भेंट कर देते थे और इसी प्रकार भूखे-प्यासे, नंगे और दुर्दशा-पीड़ित रह जाते थे। हम न तो व्यापार का काम करते थे और न ही कृषि, और न इन कामों के लिए हमारे पास अवकाश था। अन्त में बहुत सोच-विचार और सलाह-मशवरे के पश्चात् १९२९ ई० में हमने इस संस्था की स्थापना कर दी और इसे हमने ख़ुदाई खिदमतगारी नाम दिया। यह नाम भी हमने इस संस्था का एक विशेष उद्देश्य से रखा था, क्योंकि पठानों में हम लोग ख़ुदा के वास्ते पर या भगवान के निमित्त अपनी जाति और देश की सेवा का विचार तथा भाव पैदा करना चाहते थे। यह इसलिए कि पठानों में ख़ुदा के लिए अपनी जाति और देश की सेवा करने के भाव का अभाव था। दूसरी बात यह भी थी कि पठानों में हिंसा भाव बहुत भरा हुआ था और इनका यह हिंसा भाव दूसरों के लिए नहीं था, प्रत्यत इनकी सारी हिंसा अपनी जाति और अपने भाई-बन्धुओं के विरुद्ध थी। जो भी व्यक्ति इनका निकट सम्बन्धी होता था, वह इनकी हिंसा के हाथ सदा अपने-आपको आग में खड़ा पाता था। इनकी हिंसा की सारी ज्वाला अपने ही भाई-बन्धुओं के ऊपर बरसती

थी। इसके अतिरिक्त पठानों में ऐसी फूट और पार्टीबाज़ी थी कि इससे इनका देश बरबाद था। फिर इनके रीति-रिवाज रूढ़िवादी थे, जो इन्हें तबाह व बरबाद कर रहे थे। इनमें प्रतिशोध-भावना भी असाधारण सीमा तक थी और इनमें अच्छे आचरण और अच्छी आदतों का अभाव था।

इन परिस्थितियों में खुदाई खिदमतगारी संस्था का सदस्य बनने के लिए सदस्य को यह शपथ लेनी पड़ती थी—"मैं खुदाई खिदमतगार हूं और चूंकि खुदा को खिदमत (सेवा) की आवश्यकता नहीं है, इसलिए खुदा की मखलूक (जीवों) की सेवा ही खुदा की सेवा है। अस्तु, मैं खुदा की मखलूक—मानव-मात्र की—सेवा बिना किसी स्वार्थ, काम-भावना या मतलब के केवल खुदा के वास्ते करूंगा।"

खुदाई खिदमतगार को दूसरी प्रतिज्ञा यह करनी पड़ती थी—"मैं हिंसा नहीं करूंगा और न ही किसी प्रकार का प्रतिशोध या बदला लूंगा। मुझपर कोई चाहे कितना ही अत्याचार और ज़ुल्म करेगा, मैं उसे क्षमा कर दूंगा।" खुदाई खिदमतगार यह भी शपथ लेता था—"मैं आपस की फूट, दलबन्दी, शत्रुता और गृहयुद्ध नहीं करूंगा और प्रत्येक पख्तून को अपना भाई तथा मित्र समझूंगा। मैं गलत रीति-रिवाजों को छोड़ दूंगा। सादा जीवन व्यतीत करूंगा और नेक काम करूंगा। बुराइयों से अपने-आपको बचाऊंगा। मैं अपने अन्दर अच्छे गुण, सच्चरित्रता और अच्छी आदतें पैदा करूंगा। मैं बेकारी का जीवन व्यतीत नहीं करूंगा।"

इसके अतिरिक्त प्रत्येक खुदाई खिदमतगार पर प्रतिबन्ध था कि कि चाहे वह अमीर है या ग़रीब, दिन में दो घण्टे शारीरिक श्रम का काम अवश्य किया करेगा।

दिसम्बर १९२८ में कलकत्ता में खिलाफ़त कांफ्रेंस हुई। सीमा प्रान्त से हम लोग भी उसमें सम्मिलित होने के लिए गए। कलकत्ता में पेशावर के और भी बहुत-से लोग रहते थे, जो मेवे का व्यापार करते थे। जब खिलाफ़त कांफ्रेंस आरंभ हुई, तो हमारे ध्यान में यह बात लाई गई कि मुहम्मद अली व शौकत अली से पंजाबियों का कड़ा विरोध है।

पंजाबी बड़े विचित्र लोग हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूं। एक दिन 'ज़मींदार' (समाचारपत्र) के कार्यालय में मैं अख्तरअली खां से यह शिकायत कर रहा था कि "देखो, मेरे और तुम्हारे पिता के मध्य अच्छे सम्बन्ध हैं। यदि पंजाब के दूसरे समाचारपत्र मेरे विरुद्ध प्रचार करें तो अलग बात है, परन्तु कम से कम तुम्हें तो नहीं चाहिए कि मेरे विरुद्ध

भ्रामक बातें फैलाओ।"

मेरी यह शिकायत सुनकर अख़्तरअली खां हंस पड़े और बोले, "हमारा यह स्वभाव है कि न तो हम अपने पंजाब के किसी नेता को बख़्शते हैं और न ही भारत के किसी नेता को। स्वभावतः ही हम सबकी पगड़ियां उछालते रहते हैं।"

यह तमाशा कलकत्ता में पंजाबियों ने सबजेक्ट कमेटी (विषय सिमति) के अधिवेशन में किया। एक रात खिलाफ़त की सबजेक्ट कमेटी की बैठक थी और हम सब मंच पर बैठे हुए थे। एक पंजाबी नेता भाषण कर रहे थे और मुहम्मद अली साहब की कुछ आलोचना कर रहे थे। मुहम्मद अली साहब मेरे साथ ही बैठे हुए थे। वे सहन न कर सके और क्रोध में आ गए और उनके मुहं से उस पंजाबी नेता के विरुद्ध असभ्य वाक्य निकल पड़े। हमारे पास ही एक और पंजाबी भी बैठा हुआ था। उसने मुहम्मद अली के मुंह से ज्योंही गाली-गलौच सुनी, तो वह एकदम उठ खड़ा हुआ, चाकू निकाल लिया और उत्तर में मुहम्मद अली को गालियां देने लगा। मंच पर एक ज़बरदस्त हंगामा मच गया। यह अच्छा हुआ कि हम पठान लोग उस रात सबजेक्ट कमेटी की बैठक में बहुत अधिक संख्या में थे, हम उठ खड़े हुए और झगड़ा समाप्त करा दिया, एवं मुहम्मद अली को उससे छुटकारा दिला दिया। यदि हम न होते, तो उन्होंने मुहम्मद अली का घोर अपमान किया होता।

उन्हीं दिनों कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन भी हो रहा था और हालात से ऐसा मालूम होता था कि मुहम्मद अली हिन्दुओं से नाराज़ हैं, क्योंकि उन्होंने अपने अध्यक्षीय अभिभाषण में हिन्दुओं पर बड़े कड़े आक्रमण किए थे और उनकी सभ्यता, संस्कृति, सामाजिकता तथा रीति-रिवाजों की बड़े अच्छे तरीक़े से आलोचना की थी। ये चीज़ें एक नेता के व्यक्तित्व को शोभा नहीं देती थीं। इस तरह इधर हमारी कांफ्रेंस में कोई विशेष रुचिकर बात नहीं रही थी, मैंने सोचा कि चलो जाकर कांग्रेस का वह सम्मेलन देख आएं। उस समय कांग्रेस की विषय समिति की बैठक थी। मैं उसे देखने चला गया।

मैं कांग्रेस के जलसों में पहले कभी सम्मिलित नहीं हुआ था। उस समय गांधीजी भाषण कर रहे थे। वहां एक नौजवान लड़का था, जिसे लोग राजा कहकर पुकारते थे। वह उनके भाषण के बीच बार-बार खड़ा हो जाता और गांधीजी पर आक्रमण करता। गांधीजी बिल्कुल क्रोध में नहीं आते थे, अपितु वे ठहाके लगाकर हंस पड़ते थे और फिर अपना भाषण आरम्भ कर देते थे। वह नौजवान फिर हस्तक्षेप करता।

गांधीजी फिर मुस्करा देते। इस बात का असीम प्रभाव मुझपर हुआ और मैं जब वापस अपने शिविर में आया, तो मैंने यह सारा वृत्तान्त अपने साथियों को सुनाया और मैंने उनसे कहा, कि यह देख लो! ये हिन्दू नेता हैं। उनके चरित्र को देखो और अपनी कांफ्रेंस के इन नेताओं के आचरण को भी देखो।

हमारे हृदय में एक विचार पैदा हुआ और हम कुछ पठान मुहम्मद अली साहब के पास गए। हम इस बारे में उनसे कुछ बातें करना चाहते थे, क्योंकि वे हमारे नेता थे। हमने मुहम्मद अली साहब से अपनी बात-चीत आरम्भ की, "मुहम्मद अली साहब! आप हम मुसलमानों के नेता हैं। हम आपका सम्मान-समादर करते हैं। हम कल कांग्रेस की विषय समिति की बैठक में गए थे। उस समय गांधीजी भाषण कर रहे थे। उनके भाषण के बीच ही में एक नौजवान उनका विरोध और उनकी कड़ी आलोचना करता था। यहां तक कि उन्हें असभ्य शब्दों से सम्बोधित करता था। लेकिन गांधीजी उसके सामने हंस देते थे। और हमने यह भी देखा कि इस विरोध और कड़ी आलोचना के कारण शायद ही उनके भाषण में किसी प्रकार की उत्तेजना या कटुता पैदा हुई हो। यह बात आपको हम इसलिए बता रहे हैं कि आप हमारे नेता हैं। हम आपकी प्रतिष्ठा और श्रेष्ठता के इच्छुक हैं। इसलिए आप अपने अन्दर धैर्य भाव पैदा कर लेंगे, तो यह बहुत ही अच्छी बात होगी।"

हमारी ये बातें सुनते ही मुहम्मद अली साहब बहुत विक्षुब्ध और क्रुद्ध हो उठे और बोले, "यह देखो, जंगली पठान मुहम्मद अली को समझाने आए हैं।" यह कहते ही वे उठ खड़े हुए और हमें वहीं छोड़कर स्वयं कहीं और चले गए। हम उनके इस व्यवहार से बहुत ही खिन्न और निराश हुए। उस दिन से मैं फिर कभी खिलाफ़त के उन जलसों में शामिल न हुआ और वापस चला आया।

इसके पश्चात् दिसम्बर १९२९ में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में हमारे प्रान्त के बहुत-से लोग सम्मिलित हुए और मैंने भी भाग लिया। अधिवेशन में यह बात देखकर हम पठान लोगों पर गम्भीर प्रभाव हुआ कि वहां पुरुषों की बात तो क्या, लड़कियों ने भी देश और जाति की सेवा के लिए कमर कस रखी थी। पख्तून महिलाओं से बहुत प्रभावित होता है। यहां महिलाओं को इतना तत्पर और कर्मशील देखा तो हमपर इस बात का प्रभाव होना स्वाभाविक ही था। हम सीमा प्रान्त के जितने भी लोग वहां गए थे, एक स्थान पर इकट्ठे हुए। अपने मध्य हमने भी एक छोटा-सा जलसा किया और हमने

निश्चय किया कि हमें अपनी जाति और देश की सेवा करनी चाहिए। यह भाव कांग्रेस का सम्मेलन देखकर ही हममें उत्पन्न हुआ। इसके अतिरिक्त हमारे निकट यह बात भी बड़ी महत्त्वपूर्ण थी कि कांग्रेस के अधिवेशन में भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकार हो गया था।

हम लोग जब लाहौर से अपने गांव पहुंचे, तो हमने काम आरम्भ कर दिया। हम लोग गांव-गांव फिरते थे। भाषण करते थे। जिरगे स्थापित करते थे। ईश्वर के बन्दों की सेवा लिए खुदाई खिदमदगार भरती करते थे। हमारा यह आन्दोलन बहुत ही थोड़े समय में सारे प्रान्त में फैल गया। हमारे क़बीलों में भी जा पहुंचा और इतना लोकप्रिय हो गया कि जिस गांव में हम जाते थे, वहां जिरगा और खुदाई खिदमतगार संस्थाएं स्थापित हो जाती थीं। इसके अतिरिक्त हमारे इस आन्दोलन ने सबसे बड़ी बात यह पैदा कर दी कि लोगों के दिलों से अंग्रेज़ सरकार के भय और आतंक का नामोनिशान मिट गया। उनमें स्वतन्त्रता का एक प्रबल भाव तरंगित हो उठा। जब हम दौरे पर निकलते थे, तो पुलिस और सी० आई० डी० के अतिरिक्त कभी-कभी स्वयं फिरंगी भी हमारे इन जलसों को देखने के लिए आया करते थे और वे आश्चर्यचकित हो जाया करते थे कि यह इतनी महान क्रान्ति किस चीज़ ने पैदा कर दी है? वे लोग मुझसे कभी-कभार पूछा करते थे कि "यह तुमने पठानों पर क्या जादू कर दिया है?"

वास्तव में अंग्रेज़ों को एक खतरा अनुभव होने लग गया था। कुछ महीनों तक तो उन्होंने बड़े धैर्य और सहिष्णुता से हमारे काम को देखा-भाला और हमें लम्बी अवधि दे दी। इधर चार महीनों में हमने भी दिन-रात इतना अधिक काम किया कि हमारा यह आन्दोलन सारे प्रान्त में फैल गया। अभी लगभग तीन मास हमने काम किया था कि चीफ कमिश्नर ने मेरे विरुद्ध यह आदेश मेरे पीछे भेज दिया—"तुमने प्रदेश में यह क्या सिलसिला जारी कर रखा है? इसे तुरन्त बन्द कर दो।"

मैंने इस आदेश के उत्तर में चीफ कमिश्नर को यह लिखा कि "यह तो एक सामाजिक आन्दोलन है, राजनीतिक नहीं है और सत्य तो यह है कि यह काम, जो हम कर रहे हैं, देश की सरकार को करना चाहिए। यह काम तो सरकार के करने का है। अब यदि आपका या सरकार का यह काम हम कर रहे हैं, तो आपको इस काम में मेरी सहायता करनी चाहिए—सहयोग देना चाहिए।"

चीफ कमिश्नर ने मुझसे कहा, "मैं मानता हूं कि आज यह काम

सामाजिक है, पर, यदि तुम इन पठानों को कभी संगठित कर लो, तो फिर इसकी क्या दलील और ज़मानत है कि इन्हें हमारे विरुद्ध इस्तेमाल नहीं करोगे।"

मैंने उन्हें उत्तर दिया, "क़ौमों की ज़मानत विश्वास और भरोसे पर होती है। आप हमपर विश्वास और भरोसा कीजिए, तो हम आपपर विश्वास करेंगे। हम आपके विरुद्ध कुछ भी नहीं करते। हम देख रहे हैं कि इस देश में एक क्रांति आ रही है और क्रांति एक जल-प्रवाह की भांति होती है। हम केवल इतना करते हैं कि पठानों को संगठित करते हैं, ताकि वे इस क्रांति में बह न जाएं।"

हमारी इस बात का उनपर कुछ प्रभाव न हुआ। अंग्रेज़ों ने हमपर भरोसा व विश्वास न किया। जब अप्रैल १९३० में उतमान ज़ई में हम ख़ुदाई खिदमतगारों का एक विराट सम्मेलन हो चुका और मैं उस सम्मेलन के पश्चात् पेशावर जा रहा था कि मार्ग में नाकी थाने के निकट मुझे गिरफ़्तार कर लिया गया और वापस चारसद्दा लाया गया। मेरे साथ मियां अहमदशाह, जो हमारे प्रधान थे और अब्दुल अकबर ख़ां जो मंत्री थे, और सालार सरफ़राज ख़ां, हाजी शाहनिवाज ख़ां जो हमारे जलसे के प्रबंधक थे—ये सब गिरफ़्तार कर लिए गए।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि जब मुझे नाकी थाने की सीमा में गिरफ़्तार किया गया, तो उस समय मेरे साथ कोई ख़ुदाई ख़िदमतगार स्वयंसेवक नहीं था। नाकी थाने के लोगों ने जब मेरी गिरफ़्तारी का दृश्य देखा, तो उन्हें बड़ा क्रोध आया और वे कहने लगे, "अंग्रेज़ों ने हमारा अनादर किया है कि बादशाह ख़ां को हमारी सीमा के भीतर गिरफ़्तार किया है।" अपने इस क्रोध और रोष का उत्तर नाकी थाने के लोगों ने एक ऐसी सभ्य रीति से दिया कि उससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ। उन्होंने ख़ुदाई ख़िदमतगारी की घोषणा कर दी और स्वयं भी सुर्ख़पोश (लाल वस्त्रधारी) बन गए तथा मुझे भी अंग्रेज़ों के सामने, जिनसे मेरी जंग थी, उत्तरादायित्व से मुक्त कर दिया।

मेरी गिरफ़्तारी की ख़बर आग की भांति जनसाधारण में फैल गई। चारसद्दा में हज़ारों की संख्या में लोग अपने क्रोध और क्षोभ का प्रदर्शन करने के लिए एकत्र हुए। इस प्रकार उसी दिन पेशावर में भी हमारे साथी गिरफ़्तार किए गए थे। हमारी इन गिरफ़्तारियों के कारण क़िस्सा ख़ानी बाज़ार पेशावर में एक बहुत बड़ा हंगामा हुआ और गोलियां बरसाई गईं। फलस्वरूप भारी संख्या में लोग शहीद हुए।

२३ अप्रैल का दिन,[1] जिस दिन यह घटना हुई एक महान ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त कर गया। चार सद्दा में भी लोगों ने हवालात को चारों ओर से घेर लिया था। लेकिन चूंकि हमने लोगों को अहिंसा की शिक्षा दी थी और डाक्टर खान साहब भी घटनास्थल पर पहुंच गए थे, उन्होंने लोगों को समझा दिया, इसलिए वहां किसी प्रकार की हिंसात्मक कार्यवाही न हुई। सायं के समय हमें मोटर में बिठाया गया। मरदान से एक सैनिक दल आया था। सैनिक दल का कुछ भाग हमारी मोटर के आगे और कुछ भाग पीछे था। इस प्रकार सेना के पहरे के साथ हमें मरदान पहुंचाया। उसी सायं के समय हमें मरदान के जेलखाने में बन्द कर दिया गया। रात हमने जेलखाने में गुज़ारी और दूसरे दिन हमें रिसालपुर ले जाया गया। यहां हमारे इलाक़े का मैजिस्ट्रेट खान बहादुर कुली खां आया हुआ था। हमें उसके सामने पेश किया गया। उसने हमें धारा ४० के अधीन तीन-तीन वर्ष क़ैद का दण्ड दे दिया और उस स्थान से हमें पंजाब में गुजरात की जेल में भेज दिया गया। जब हम जेलखाने में पहुंचे, तो वहां पेशावर के हमारे अन्य साथियों—अली गुल खां, सैयद लाल बादशाह आदि को भी लाया जा चुका था। इस जेलखाने में पंजाब, दिल्ली और सीमा प्रान्त के राजनीतिक बन्दी थे। उनमें चाहे हिन्दू थे या सिख या मुसलमान थे, सभी लोग बहुत समझदार और गंभीर स्वभाववाले थे। इस जेलखाने में

---

१. क़िस्सा ख़ानी बाज़ार की यह रक्तरंजित घटना स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास में सुनहरे अक्षरों में लिखी गई है। जनसाधारण के उत्तेजनापूर्ण भावों को दबाने के लिए जब अंग्रेज़ सरकार की शस्त्र-सज्जित कारें पेशावर छावनी से नगर में प्रविष्ट हुईं, तो हिन्दू, सिख और मुसलमानों ने एक-दूसरे से कंधे से कंधा मिलाकर एक दीवार खड़ी कर दी। शस्त्र-सज्जित कारें इस दीवार को कुचलती हुई आगे बढ़ीं। दीवार टूट गई। कई स्वाधीनता के दीवाने शहीद हो गए। इतने में एक नौजवान ने शस्त्र-सज्जित कार में आग लगा दी। जिससे चार गोरे जलकर भस्म हो गए। फिर क्या था, अन्धाधुन्ध गोली-वर्षा होने लगी। लोगों ने अपने सीने में गोलियां खाकर आत्मबलिदान किया। फिर उसी दिन चौक यादगार में गढ़वाली सेना ने गोली चलाने से इन्कार करके अपनी देशभक्ति का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत किया। किस्सा ख़ानी बाज़ार का बलिदान यज्ञ और गढ़वाली सैनिकों की देशभक्ति अमिट यादगारें कही जा सकती हैं। २३ अप्रैल के पश्चात् ३१ मई को भी गोलीकाण्ड हुआ। उसका आरंभ सरदार गंगासिंह के दो मासूम बच्चों के बलिदान से हुआ। दोनों बच्चे शहीद हुए, उनकी मां घायल हुई और सरदार गंगासिंह सरकारी नौकरी से मुक्त हो गए।—(नगीना)

मैंने जिस क़दर धार्मिक, ज्ञानात्मक और राजनीतिक लाभ ग्रहण किए और जो उत्तम, आनन्दमय तथा शानदार क्षण व्यतीत किए, वैसे मुझे अन्य किसी जेलखाने में फिर कभी प्राप्त नहीं हुए। यहां विद्वानों की जो उत्कृष्ट संगति मुझे मिली थी, वैसी संगति भी फिर मुझे कहीं नहीं मिली। वहां की बहुत-सी बातें मेरे मनस्पटल पर इतने गहरे संस्कार छोड़ गई कि आजीवन नहीं मिटेंगी।

डाक्टर अनसारी ने हमारे लिए क़ैदखाने में एक पार्लामिण्ट स्थापित की थी। वे कहते थे कि ख़ुदा हमें बहुत जल्द शासन-भार देने-वाला है। इसलिए उचित है कि हम उसके लिए अपने-आपको तैयार करें। वे हमें संसद से सम्बद्ध कामों की शिक्षा दिया करते थे। डाक्टर गोपीचन्द भार्गव हमें विभिन्न प्रकार की पुस्तकें मंगवा दिया करते थे और रोहतक के लाला शामलाल वे पुस्तकें हमें पढ़कर सुनाया करते थे। एक रायज़ादा हंसराज थे। जब कभी उनसे भेंट हुआ करती थी, तो उनकी पत्नी हमारे लिए नाना प्रकार की खाने-पीने की चीज़ें लाया करती थीं। मैंने और पण्डित जगतराम हरयाणवी ने क़ुरान और गीता का अध्यापन जारी कर रखा था और हमारी कोशिश हुआ करती थी कि हिन्दू क़ुरान से और मुसलमान गीता से परिचित हो जाएं।

मौलाना ज़फ़र अली खां और डाक्टर किचलू के मध्य सदा अध्य-क्षता के लिए जंग होती थी और दोनों सदा सीमा प्रान्तीयों की ख़ुशामदें किया करते थे, क्योंकि हम जिस दल का साथ दे देते, उसी दल का उम्मीदवार प्रधान निर्वाचित हो जाता था। एक और महानुभाव सेठी जी थे, जो प्रायः पकौड़े तलकर गर्मागर्म हममें बांटा करते थे। देवदास गांधी भी कुछेक महीनों के लिए इस जेलख़ाने में आए थे। मुफ़्ती किफ़ायतुल्लाह उड़द की दाल पकाया करते थे। वह बहुत स्वादिष्ट हुआ करती थी। परन्तु उसमें मिर्चें बहुत अधिक हुआ करती थीं।

एक दिन हमारे जेलख़ाने में जो सिख भाई थे, उन्होंने सुपरिंटेण्डेण्ट से कहा, "गुजरात शहर में झटका नहीं होता है। किन्तु हम झटका खाते हैं, इसलिए यदि आप हमें आज्ञा दें, तो हम यहां अपने खाने के लिए मुर्गी का झटका कर लेंगे। आपकी बड़ी कृपा होगी।"

सुपरिंटेण्डेण्ट ने उन्हें उत्तर दिया, "देखो, सीमा प्रान्त के मुसलमान यह बात पसन्द नहीं करते।"

सुपरिंटेण्डेण्ट से यह उत्तर पाकर सिखों के एक नेता मेरे पास आए और कहने लगे, "सुपरिंटेण्डेण्ट कहता है कि झटके पर आप लोगों को आपत्ति है और इस बात के विरोधी हैं।"

मैंने सरदार साहब से पूछा, "सरदार साहब! यह झटका आप लोग करेंगे और इसे आप ही खाएंगे ?"

सरदार साहब ने उत्तर दिया, "जी हां, हमीं करेंगे और हमीं खाएंगे।"

तब मैंने उनसे कहा, "हमें इसपर कोई आपत्ति नहीं है। हमारी ओर से आपको इस बात की अनुमति है।"

इसके बाद मैंने अपने साथी इकट्ठे किए। इनमें से सैयद लाल बादशाह झटके के विरोधी थे। मैंने उन्हें कहा, "सैयद साहब, यदि कोई व्यक्ति अब हलाल का विरोध करे, तो आपको यह बात कैसी लगेगी ?"

सैयद साहब ने उत्तर दिया, "यह तो हमारा धर्म है। धर्म का कोई क्यों विरोध करेगा ?"

मैंने उनसे कहा, "झटका उनके धर्म में है। हमारे लिए भी यह उचित नहीं है कि हम उसका विरोध करें।"

मेरे इस तर्क से सैयद साहब सहमत हो गए और उन्होंने अपना विरोध वापस ले लिया।

इधर हमें गुजरात की जेल में बन्द कर दिया गया, उधर हमारे देश में सरकार ने लोगों पर भीषण अत्याचार और हिंसा आरंभ कर दी। हमारे प्रान्त को घेर लिया गया। प्रान्त के लोगों को बाहर नहीं जाने दिया जाता था ताकि वे बाहर जाकर प्रचार न कर सकें और संसार के लोगों को अंग्रेज़ों के उन अत्याचारों की जानकारी न पहुंच सके जो पठानों पर अन्धाधुन्ध किए जा रहे थे। बाहर के लोगों को भी हमारे प्रान्त के भीतर नहीं आने दिया जाता था, ताकि वे हमारी दुर्दशा न देख पाएं।

इन परिस्थितियों में भी हमारे एक-दो साथी मियां जाफ़र शाह और मियां अब्दुल्ला शाह अत्यन्त कष्ट झेलकर और सिन्ध नदी को पार करके हमारे पास पहुंच गए। मेरे लिए तो किसीसे भेंट करने पर प्रतिबन्ध था परन्तु हमारे उन साथियों ने मेरे दूसरे साथी क़ैदियों से भेंट करने की अनुमति ले ली और उन्हें सीमा प्रान्त के हालात की जानकारी पहुंचा दी। हमारे उन साथियों ने बताया कि आंदोलन को तो क्या, अंग्रेज़ पठानों के बच्चे-बच्चे को कुचल देना चाहते हैं और इनके अस्तित्व को मिटा देने पर उतारू हैं। जिस समय हम लोगों को गिरफ़्तार कर लिया गया था और अपने प्रान्त से बाहर पंजाब में लाकर गुजरात जेल में बन्द कर दिया गया था, उसी समय वहां सेना पहुंच

गई थी और उसने उतमान ज़ई को अपने घेरे में ले लिया था। इससे पहले सैनिक जवान खुदाई खिदमतगारों के कार्यालय पर चढ़ गए और दूसरी मंज़िल से, जहां हमारा कार्यालय है, समस्त खिदमतगारों को नीचे पक्की सड़क पर फेंक दिया। मेरे लड़के वली को जो उस समय ग्यारह वर्ष का था और स्कूल से छुट्टी मिलने पर कार्यालय में खुदाई खिदमत-गारों के पास बैठा हुआ था, एक गोरे ने संगीन मारना चाहा, लेकिन एक सूबेदार ने संगीन के आगे अपना हाथ बढ़ा दिया और उसे बचा लिया। इसी सूबेदार ने वली को हाथ से पकड़कर सीढ़ी से नीचे उतार दिया। सैनिकों ने कार्यालय में आग लगा दी और उसे राख कर दिया। लाल वस्त्र पहननेवाले जितने लोग थे, वे सब गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें निर्दयता से मारा-पीटा गया।

इसके पश्चात् डिप्टी कमिश्नर ने लोगों को सम्बोधन करते हुए बड़े क्रोध और अभिमान से कहा, "क्या अब भी कोई सुर्खपोश बाकी है?"

डर के मारे किसी व्यक्ति को जुबान खोलने की हिम्मत न पड़ती थी। इतने में हमारे गांव के एक खान, मुहम्मद अब्बास खां, जो वहां खड़े थे, डिप्टी कमिश्नर की यह चुनौती सुनकर दौड़कर घर गए। कपड़े रंग देग़ में डाला और तुरन्त उसमें अपने कपड़े रंग लिए और अपने नौकरों के वस्त्र भी रंग दिए। ये लाल वस्त्र उन्होंने पहन लिए। वस्त्रों से अभी पानी बह रहा था कि दौड़कर फिर उसी स्थान पर आ गए और सैनिकों के सामने खड़े हो गए तथा अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर से बोले, "ये हैं लाल वस्त्र, देखो, मैंने पहन रखे हैं।"

मुहम्मद अब्बास खां नियमित रूप से खुदाई खिदमतगार नहीं थे; बल्कि हमसे थोड़े-बहुत नाराज भी थे। फिर भी उन्होंने बड़े आत्मा-भिमान और देशभक्ति का प्रमाण प्रस्तुत किया। उनके इस साहस और बलिदान ने पठानों में ऐसी निर्भीकता पैदा कर दी कि अंग्रेजों के सीमातीत अत्याचार और हिंसात्मक दमनचक्र के बावजूद लाल वस्त्र समाप्त न हुए, बल्कि दिन-प्रतिदिन उनमें वृद्धि होने लगी।

उतमान ज़ई के ऐतिहासिक जलसे के दिन प्रान्त-भर में सुर्खपोशों अर्थात् खुदाई ख़िमतगारों की संख्या पांच सौ तक सीमित थी और जब हम जेलखानों से रिहा होकर अपने इलाके में गए थे, तो खुदाई खिद-मतगारों की संख्या पचास हजार तक आ पहुंची थी। हमारे इस आन्दो-लन का प्रचार वास्तव में अंग्रेजों ने स्वयं किया था। अंग्रेज अपनी सेना लेकर गांवों में चले जाते थे। गांवों को अपने घेरे में ले लेते थे। लोगों

को अपने घरों से निकाल लेते थे। उन्हें धूप में बिठा देते थे और उन्हें कहते थे, "शाबास! अंगूठे के निशान लगा दो कि तुम खुदाई खिदमतगार नहीं हो।"

लोग कहते ही रह जाते—हम तो सचमुच ही खुदाई खिदमतगार नहीं हैं, और वास्तव में वे खुदाई खिदमतगार होते भी नहीं थे। लेकिन ये फिरंगी उन्हें कहते कि बस अंगूठा लगा दो। लेकिन वे लोग अंगूठा नहीं लगाते थे।

अंग्रेज़ों के इस व्यवहार का प्रभाव आम स्त्री-पुरुषों पर ऐसा हुआ कि यदि किसीने अंगूठा लगा भी दिया होता, तो लोग उसे अपमान की दृष्टि से देखते थे। हमारे गांव में एक आदमी ने अंगूठा लगा दिया। जब वह घर गया तो उसकी बीवी कपड़े धो रही थी। कपड़े धोने-वाला डण्डा उसके हाथ में था। उसने अपने पति से पूछा, "तुम किस तरह घर आ गए हो?"

पति ने उत्तर दिया, "मुझे उन्होंने छोड़ दिया है।"

बीवी ने फिर पूछा, "और लोगों को छोड़ा नहीं, तुम्हें कैसे छोड़ दिया है? तुम ज़रा मुझे अपना अंगूठा तो दिखाओ? ऐसा मालूम होता है कि तुमने अंगूठा लगा दिया है।"

उस महिला ने कपड़े धोनेवाला डण्डा अपने पति के आगे लगा लिया और कहा, "बेहया कहीं के! तुमने अंगूठा लगा दिया है, तो अब मैं जाती हूं!"

बीवी की इस फटकार ने उस आदमी के होश ठिकाने लगा दिए। वह व्यक्ति घटनास्थल पर चला गया और दूसरे लोगों के साथ पंक्ति में बैठा गया।

अंग्रेज़ ने उसे पहचानकर पूछा, "तुम फिर क्यों आ गए?"

उसने उत्तर दिया, "साहब! मेरी बीवी मुझे घर में घुसने नहीं देती।"

एक और इसी प्रकार की घटना हुई।

हमारे गांव के हाजी शाहनवाज़ ने जो हमारे साथ जेलखाने में बन्दी थे, अपनी ज़मानत दाखिल कर दी थी और रिहा हो गए थे। लेकिन ज्योंही गांव में अपने घर पहुंचे तो लोगों की फटकारों से इतने लज्जित हुए कि उनके लिए जीवन बोझ बन गया और उन्होंने आत्म-हत्या करके शान्ति प्राप्त की।

इन हालात की जानकारी हमें अपने उन साथियों से प्राप्त हो गई, जो जेल में हमें मिलने के लिए आए थे। इस जानकारी के प्रकाश में

हमने यह फ़ैसला किया कि हमारे ये साथी अपने गांव या प्रान्त में वापस न जाएं, बल्कि ये लाहौर, शिमला और दिल्ली चले जाएं; और हमारे उन मुसलमान भाइयों को, जो मुस्लिम लीग में हैं, अपने वृत्तांत सुनाएं और उनसे कहें कि वे हमारी सहायता करें। और नहीं तो कम से कम दुनिया को हमारे हालात से परिचित करा दें।

हमारे ये साथी चले गए और दो मास के उपरान्त फिर गुजरात आए और जेल में हमसे मिले। भेंट के दौरान इन्होंने बताया कि ये हिन्दुस्तान-भर में मुस्लिम लीगी नेताओं के पीछे मारे-मारे फिरते रहे। लेकिन मुस्लिम लीगी नेता हमारी सहायता के लिए तैयार नहीं हुए, क्योंकि हमारी लड़ाई अंग्रेज़ों से थी और वे अंग्रेज़ों से लोहा लेने के सामर्थ्य से वंचित हैं। उन्हें तो अंग्रेज़ों ने हिन्दुओं से लड़ाने-भिड़ाने के लिए सुरक्षित कर रखा है।

उस समय तक हम कांग्रेस में सम्मिलित नहीं हुए थे और न ही कांग्रेस से हमारी कोई खास जान-पहचान थी। एक व्यक्ति, जो नदी में डूब रहा हो और बहा जा रहा हो, वह तो एक तिनके का भी सहारा ले सकता है। हम जब मुस्लिम लीग से निराश हो गए, तो हमने अपने साथियों से कहा कि अब तुम लोग जाओ और कांग्रेस के नेताओं से मिलो। यदि वे हमारी सहायता करें, तो हमपर उनका यह बड़ा भारी उपकार होगा। वे चले गए। कांग्रेसी नेताओं से मिले। कांग्रेसी नेताओं ने हमारे साथियों से कहा कि यदि हम लोग उनके साथ भारत की स्वाधीनता के संग्राम में सम्मिलित होना स्वीकार कर लें, तो वे हमारी सब प्रकार की सहायता करने के लिए तैयार हैं।

कांग्रेसी नेताओं का यह संदेश लेकर हमारे साथी फिर आकर हमें मिले। हमने अपने साथियों को आदेश दिया कि वे अपने प्रान्त में जाएं। यह वृत्तान्त प्रान्त के खुदाई खिदमतगारों के जिरगे में पेश करें। हमारे साथी चले गए। उन्होंने जिरगा बुलाया और जिरगे के सामने सारी बातें रख दीं। जिरगे के सदस्यों ने कांग्रेस की बात मान ली और निर्णय किया कि यदि कांग्रेस के नेता हमारी सहायता करते हैं तो हम भी उनके स्वर में स्वर मिला देंगे। अस्तु, उन्होंने कांग्रेस में सम्मिलित होने की घोषणा कर दी।

अंग्रेज़ों को यह समाचार मिला कि हम पठान लोग सामूहिक रूप से कांग्रेस में सम्मिलित हो गए हैं, तो उन्हें अपनी मूर्खता का एहसास हुआ। उनका ऐसा होश ठिकाने आया कि उन्होंने मेरे पास संदेश भेजा, 'आओ, हमारे साथ सुलह कर लो। जो सुधार, सुविधाएं

हमने भारत को दिए हैं, वही तुम लोगों को भी दे देते हैं, बल्कि तुम्हें उससे अधिक देंगे, लेकिन इस शर्त पर कि तुम लोग कांग्रेस को छोड़ दो।"

अंग्रेज़ों का यह संदेश प्राप्त करके हमने उन सब साथियों को, जिनमें मुसलमानों के अतिरिक्त हिन्दू और सिख भी शामिल थे, एकत्र किया और मैंने उनके सामने अंग्रेज़ों के इस प्रस्ताव का सारा वृत्तान्त व्यक्त कर दिया, और उनसे पूछा कि इस विषय में उनका क्या मत है? उनमें से अधिकांश लोगों का मत यह था कि इस अवसर से लाभ उठाना चाहिए और कूटनीति से काम लेना चाहिए। उन्होंने कहा कि वे यह शर्त स्वीकार कर लेंगे। परन्तु मैंने कहा कि मुझे यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं है, क्योंकि फिरंगी बहुत विश्वसनीय जाति नहीं है। हमने कांग्रेस से प्रतिज्ञा कर रखी है, हम उसे नहीं तोड़ेंगे। अस्तु, मैंने सरकार को उत्तर दे दिया कि 'चूंकि तुमने हमपर विश्वास नहीं किया है, इसलिए हम भी तुमपर विश्वास नहीं कर सकते।'

१४

कांग्रेस के साथ हमारा एकत्व हो गया। फलस्वरूप केन्द्रीय विधानसभा (असेम्बली) के स्पीकर श्री विट्ठल भाई पटेल के नेतृत्व में कांग्रेस ने सीमा प्रान्त की घटनाओं की जांच के लिए एक समिति भेजी। वह समिति जब अटक के पुल पर पहुंची, तो उसे सरकार ने वहीं रोक लिया और उसे सीमा प्रान्त में दाख़िल होने की अनुमति न दी। समिति के सदस्य वापस चले गए और रावलपिंडी में जाकर बैठ गए। अब उन्होंने वहीं से जांच-कार्य आरम्भ कर दिया। उन्होंने सीमा प्रान्त पर ढाए गए अत्याचारों का एक विस्तृत वृत्तान्त लेखबद्ध कर डाला। भारत-भर में कांग्रेस के प्रभावाधीन समाचारपत्रों ने सीमा प्रान्त में किए गए ज़ुल्मों की कहानियां प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया और हमारा ख़ूब प्रचार किया।

इस रिपोर्ट को तो अंग्रेज़ सरकार ने ज़ब्त कर लिया, लेकिन कांग्रेस ने इस रिपोर्ट की प्रतियां भारी संख्या में अमरीका और इंगलैंड भेज दीं और वहां की जनता में बांट दीं। पेशावर के क़िस्सा ख़ानी बाज़ार के गोलीकाण्ड के पश्चात् मई के महीने में मरदान ज़िले के टकर नामक गांव में ख़ुदाई ख़िदतमगारों पर एक और गोलीकाण्ड हुआ। बहुत-से लोग शहीद हुए। सरकार ने ख़ुदाई ख़िदमतगारों के नेताओं के हुज्रे

(कार्यालय) जला दिए। उनमें लून्दख्वड़ के ख़ां ग़ुलाम मुहम्मद ख़ां का हुज्रा भी सम्मिलित था। अन्य बहुत-से घरों को भी जलाकर राख कर दिया गया था। अनेक लोगों को गिरफ़्तार भी कर लिया गया था। इसके बाद ज़िला बन्नू के हाथीखेल[1] वज़ीरों के एक शान्तिमय जलसे पर सेना ने जाकर गोलियां बरसाई थीं। कई लोगों को शहीद कर दिया गया था। और जिन्हें गिरफ़्तार किया गया था, उन्हें चौदह-चौदह वर्ष की क़ैद का दण्ड दिया गया था। बन्नू शहर को घेर लिया गया था और शहर के दरवाज़े बन्द कर दिए गए, ताकि शहर से कोई व्यक्ति अपनी

---

१. इन्हीं दिनों डेरा इस्माईल ख़ां में भी राष्ट्रीय आन्दोलन का ज़ोर-शोर था। इस ज़िले के आसपास के स्थानों और गांवों में भी इस आन्दोलन में बहुत रुचि होने से खूब ज़ोर था। कई स्थानों--जैसे टांक, कुलाची, गुल अमाम, गमल बाज़ार और पम्पाला--में लोग आन्दोलन में सक्रिय भाग ले रहे थे। डेरा इस्माईल ख़ां नगर में मर्दों के अतिरिक्त बच्चों और औरतों के जुलूस निकलते रहते थे। १९३० में एक दिन महिलाओं का एक विराट जुलूस नगर के बाज़ारों और गली-कूचों में से गुज़र रहा था। जब यह जुलूस डाक्टर झण्डाराम के चौक में पहुंचा, तो सीमा प्रान्त के इंस्पेक्टर जनरल पुलिस आइस मोंगर ने जुलूस को बिखर जाने का आदेश दिया। लेकिन महिलाओं ने बिखर जाने से इंकार कर दिया। इसपर जनरल को जो क्रोध आया, उसने जुलूस पर पिस्तौल दागना चाही। हठात् एक नवयुवक सरदार भगवानसिंह ने आइस मोंगर का पिस्तौलवाला हाथ पकड़ लिया और उससे कहा, "तुम्हें औरतों पर पिस्तौल चलाते हुए शर्म नहीं आती।" जनरल का हाथ कांपने लगा और पिस्तौल भूमि पर गिर पड़ी। जनरल साहब भयभीत हतबुद्धि होकर डाक बंगले की ओर दौड़कर चला गया। उसका पिस्तौल एक सिपाही ने उठाकर उसके पास पहुंचा दिया। भगवानसिंह के इस साहस और देशभक्ति का दण्ड सरकार ने दूसरे वर्ष अगस्त, १९३१ के साम्प्रदायिक दंगों के पश्चात् दिया। उसे हत्या के एक झूठे मुक़द्दमे में फांस लिया गया और बेचारे को लम्बे समय तक विभिन्न जेलों में अनिर्वचनीय यातनाएं पहुंचाने के पश्चात् रिहा कर दिया, क्योंकि सरकार अपने मुक़द्दमे में उनके विरुद्ध प्रमाण प्रस्तुत करने में असफल रही।

१९३१ ई० में डेरा इस्माईल ख़ां का डिप्टी कमिश्नर कर्नल नवल विख्यात कर्नल लारेन्स की भांति एक मक्कार अंग्रेज़ था। ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां कोहाट व बन्नू ज़िलों का भ्रमण सम्पन्न करके डेरा इस्माईल ख़ां आनेवाले थे। ज्यों ही इस डिप्टी कमिश्नर को बाचाख़ान के भ्रमण की सूचना मिली, उसने अपने ख़ुशामदियों, स्थानीय नवाबों और रायबहादुरों के द्वारा भरसक प्रयत्न किया कि डेरा इस्माईल ख़ां में बाचाख़ान का भ्रमण सफल न हो, यहां तक कि उनका स्वागत

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बाहर न जाने पाए। बन्नू शहर के रहने-वालों के जीवन का आधार अन्य शहरों की भांति गांवों से सप्लाई पर था। डिप्टी कमिश्नर ने शहरियों के लिए नगर के द्वार बन्द कर दिए थे, ताकि ये लोग भूख-प्यास से अपने माल-मवेशी (ढोर-पशुओं) सहित मर जाएं। उनका खयाल था कि इन परिस्थितियों में लोग अपने-आप कांग्रेस के आंदोलन और खुदाई खिदमतगारी से हाथ खींच लेंगे। उधर गांवों में भी लोग भयभीत हो जाएंगे।

यहां पर यह बात विशेषतः उल्लेखनीय है कि बन्नू शहर और गांवों

भी न होने पाए। लेकिन जिस समय बाचाख़ान डेरा इस्माईल ख़ां पधारे तो शहर के हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों ने उनका भव्य स्वागत किया और एक इतना विराट जुलूस निकाला कि डेरा इस्माईल ख़ां के इतिहास में ऐसा अद्वितीय जुलूस कभी किसीने नहीं देखा। बाचाख़ान डेरा इस्माईल ख़ां शहर का दौरा करने के पश्चात् ज़िला-भर के गांव-गांव में पहुंचे और प्रत्येक स्थान पर लोगों ने उन्हें सिर-आंखों पर बिठाया और बड़े जोश-ख़रोश से ख़ुदाई ख़िदमतगार भरती हुए।

गांधी इरविन समझौते के अनुसार विलायती कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग की आज्ञा थी। कुलाची और डेरा इस्माईल ख़ां में विदेशी कपड़े के व्यापारियों ने लाखों रुपये का कपड़ा कांग्रेस कमेटियों और ख़ुदाई ख़िदमतगारों से सील-मुहर करवाकर बेचना बन्द कर दिया। कांग्रेस और ख़ुदाई ख़िदमतगारों की इतनी लोक-प्रियता देखकर डिप्टी कमिश्नर नवल और असिस्टेंट कमिश्नर शेख़ महबूब अली हतबुद्धि हो गए और उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम दंगे करवाने की नापाक योजना बनाई। इस घृणित तरीक़े से बाचाख़ान के दौरे के प्रभाव को मिटाने और राष्ट्रीय आन्दोलन को बदनाम और असफल बनाने के लिए एक और गंदी चाल चली। ये दोनों विश्व-निन्दित अधिकारी स्थानीय नवाबों, ख़ान बहादुरों से निराश हो चुके थे, क्योंकि वे कुछ मास पहले बाचाख़ान का ऐतिहासिक स्वागत व जुलूस बन्द नहीं करवा सके थे। इसलिए उन्होंने पन्सियाला के ख़ान बहादुर महरबान ख़ां को बुलवा भेजा। महरबान ख़ां से कहा गया कि वह ऐसे व्यक्ति तैयार करे, जिन्होंने लाल वस्त्र पहन रखे हों और ज्योंही डिप्टी कमिश्नर उसे सूचित करें, वह लूटमार के लिए अपने लाल वस्त्रधारी गुण्डों को डेरा इस्माईल ख़ां में भेज दे, ताकि वे शहर में तबाही मचा दें।

डिप्टी कमिश्नर नवल और शेख़ महबूब अली का मन्सूबा यह था कि यह घृणित कार्य तो ख़ान बहादुर महरबान के किराये के टट्टू करेंगे, परन्तु इससे घृणा का भाव पैदा होगा ख़ुदाई ख़िदमतगारों के विरुद्ध। यह आन्दोलन भी समाप्त हो जाएगा और भारत-भर में कांग्रेसी नेता और ख़ुदाई ख़िदमतगार बद-नाम हो जाएंगे एवं जनसाधारण उनसे घृणा करने लग जाएंगे। मिहरबान ख़ां

में खुदाई खिदमतगार आंदोलन बड़े समारोह और उत्साह से चल रहा था। मलिक अकबर ख़ां को ख़ुदा बख़्शे, उन्होंने इस अवसर पर उसी नाले के द्वारा, जो बाहर के गांवों से दाखिल होकर शहर में बहता था, शहर के लोगों को खाने-पीने की वस्तुओं के अतिरिक्त उनके पशुओं के लिए घास-चारे के अम्बारों के अम्बार जुटाए और उनकी रक्षा का प्रबन्ध भी किया। परिणाम यह हुआ कि बन्नू के लोगों को अधिक कष्ट अनुभव न हुआ और मानवी जीवन के अतिरिक्त पशु-जीवन भी नष्ट

के किराये के आदमियों के अतिरिक्त स्थानीय नवाबों, ख़ान बहादुरों और रायबहादुरों ने भी इस घृणित षड्यन्त्र में भाग लिया। इस षड्यन्त्र के अधीन डेरा इस्माईल ख़ां के बाज़ारों और कूचों में आग लगवा दी गई। कई दुकानें और कई मकान जल गए। कुछ हिन्दू और मुसलमान मारे भी गए। इस फ़साद का, जो सरकार के सत्र-संचालन से हुआ था, प्रभाव अन्य शहरों और गांवों पर भी पड़ा। डेरा इस्माईल ख़ां में हड़ताल हो गई। चारों ओर निराशा छा रही थी कि बाचाख़ान फिर पधारे और उन्होंने अपने शुभ प्रयत्नों से हिन्दू-मुसलमान को दूध-शक्कर की भांति एकजान कर दिया। एक चिरस्थायी सुलह होनेवाली थी कि रायसाहबों ने नवल साहब के बहकाने पर काम बिगाड़ दिया। लेकिन थोड़े दिनों के पश्चात् चीफ़ कमिश्नर के आने पर और उसके डराने-धमकाने पर लोगों ने अपने-आप हड़ताल खोल दी और एक-दूसरे का विरोध छोड़ दिया। एक काम हिन्दू और मुसलमानों ने बुरा किया कि उस अंग्रेज़ की बात मान ली, जिसके हाथों तबाह व बरबाद हुए थे। परन्तु शान्ति के दूत की बात न मानी। अंग्रेज़ की ओर से डाली गई घृणा उनके दिलों में निरन्तर परवान चढ़ती रही, यहां तक कि १९३८ में फिर दंगे हुए और उनमें साम्प्रदायिक प्रवृत्तियां अन्त तक स्थिर रहीं। लेकिन गांवों में पुश्तूनोली (पठानी मर्यादा) और भाईचारे के कारण १९४७ के हंगामों में जहां-जहां भी ख़ुदाई ख़िदमतगार आन्दोलन था, विशेषतः डेरा इस्माईल ख़ां में भी, समस्त प्रान्त में हिन्दुओं और सिखों का सम्मान और सम्पत्ति सब कुछ सुरक्षित रहा। इस सम्बन्ध में दरबान, यारक, कुलाची, अब्दुल ख़ैल, चौधवान, गुल इमाम और मरवतों के दूसरे स्थान उल्लेखनीय हैं। जहां ख़ुदाई ख़िदमतगारों ने आक्रमणकारी मुस्लिम लीगी तथा अन्य फ़सादी तत्त्वों का बड़े साहस से मुक़ाबला किया तथा हिन्दुओं और सिखों की रक्षा की। इन हंगामों में शहीद होनेवालों में डेरा के इन्द्रमनी और प्रेम ख़ां के नाम अमर रहेंगे। ख़ुदाई ख़िदमतगारों के कारण सारे प्रान्त में कुछेक अपहरण की घटनाओं को छोड़कर शांति रही, पंजाब की भांति पठानों की धरती पर गंदी और लज्जास्पद घटनाएं नहीं हुईं। (डेरा इस्माईल ख़ां की ये घटनाएं बाचाख़ान की इच्छा और अनुमति से नारंग साहब देने लेखबद्ध की हैं।)

होने से बच गया। डिप्टी कमिश्नर की अमानुषिक और ध्वंसकारी योजना, दिवंगत मलिक साहब ने परवान न चढ़ने दी। अतः विवश होकर उसे घेरा उठा लेना पड़ा।

१५

गांधी-इरविन समझौता हो चुका था, लेकिन फिर भी हमारे गांव उतमान ज़ई में जलसे पर सरकार ने गोलीवर्षा की। घटना इस प्रकार हुई कि हमारे गांव में ख़ुदाई ख़िदमतगारों का जलसा हो रहा था। सेना ने आकर चारों ओर से सभास्थल को घेर लिया और लोगों को बिखर जाने का आदेश दिया। लोग बिखरने को तैयार नहीं थे। फिर क्या था, उनपर गोली चला दी गई। कुछ लोग गोलियों से शहीद हो गए। लेकिन इतने अत्याचार और भीषण दमन के बावजूद अंग्रेज़ हमारे जलसे बन्द न कर सके। जब जलसे होते थे, वे सेना और रिसालों के द्वारा खदेड़ दिए जाते थे। ख़ुदाई ख़िदमतगार कहते थे कि उन सेनाओं में सिखों और आफ़रीदियों की सहानुभूति हमारे साथ रहा करती थी। लेकिन हमारे भाई बंगश और ख़टक हमपर ज़रा भी दया नहीं किया करते थे। अपितु हमें बड़ी निर्दयता से मारा-पीटा करते थे। उतमान ज़ई के जलसे मे गोलीवर्षा के समय गोलियों की बौछार इतनी तीव्र और भयंकर थी कि अन्त में निहत्थे शान्तिमय लोग विवश हो गए कि सभास्थल को छोड़ दें और बिखर जाएं।

यहां भी एक अद्भुत घटना हुई। इस सभा की रौनक़ देखने के लिए बहुत-सी महिलाएं और युवतियां भी उपस्थित थीं। उनमें 'रब-निवाज़ ख़ां की एक युवा बहन भी थी। वह बजाय इसके कि गोलीवर्षा के कारण सभास्थल से दूर भाग जाती, उलटे उस प्रलय-स्थल की ओर दौड़ पड़ी, जिधर से गोलियां चल रही थीं। जलसे से भागनेवाले लोगों ने उसे आवाज़ें दीं—"अरी बहन! कहां जा रही हो? ख़ुदा के वास्ते देखो तो सही, यह क्या हाल हो रहा है। रुक जाओ, उधर मत जाओ, मत जाओ, मृत्यु के ताण्डव-स्थल और···रुको बहन! ख़ुदा रा, यह क्या करती हो—रुकती क्यों नहीं बहन?"

रब निवाज़ ख़ां की बहन ने गरजकर उत्तर दिया, "इसीलिए तो नहीं रुकती मैं उधर जाने से, कि तुम लोग उधर से भागे चले आ रहे हो। मुझे जाने दो, ताकि मैं गोली को छाती पर झेल लूं और फिरंगी को यह कहने का अवसर न दूं कि पठानों में कोई ऐसा इन्सान नहीं रहा,

जो अपने सिद्धान्त की ख़ातिर मौत को ललकारने का साहस करे।"

इस लड़की की आत्माभिमान-भरी बातों और कर्म ने लोगों पर इतना प्रभाव डाला कि सभी लोग वापस सभास्थल की ओर लौट पड़े। अंग्रेज़ों ने देखा कि ये लोग फिर सभास्थल की ओर आ रहे हैं, तो उनसे पूछा कि वे इधर फिर क्यों आ रहे हैं।

लोगों ने उत्तर दिया, "हम अपने आदमियों की लाशें ले जाना चाहते हैं, ताकि तुम लोग उन्हें नष्ट न कर दो!"

ये लोग इतनी भारी संख्या में जमा हो गए कि उन्होंने अंग्रेज़ सेना को घेर लिया और उसे भयभीत कर दिया। उन्होंने सभास्थल से चले जाने के लिए सेना के सामने एक शर्त रख दी कि उन्हें सेना की तलाशी लेने की अनुमति दी जाए, ताकि वे तलाशी लेकर अपनी तसल्ली कर लें कि फ़ौज उनके किसी शहीद की लाश अपने साथ नहीं ले जा रही है।

अंगज़ सेना ने लोगों की यह शर्त मान ली। लोगों ने प्रत्येक सिपाही की तलाशी ले ली। यद्यपि एक ओर उनके आदमी मारे गए, लेकिन दूसरी ओर उनको बड़ी शानदार विजय प्राप्त हुई।

हमारे साथ अंग्रेज़ों के इस व्यवहार और वर्ताव के कारण न केवल सीमा प्रान्त के लोग विक्षुब्ध थे, प्रत्युत एजेन्सियों और क़बाइली इलाक़ों में प्रबल रोष और क्षोभ फैल गया था। फलस्वरूप आफ़रीदियों ने पेशावर में 'मकड़ी-गोदाम' पर सशस्त्र आक्रमण कर दिया। मामुन्दों, सियालों, उतमान खैलों, और सालारज़इयों ने शबक़दर ढेरी, मटा और अन्य स्थानों पर आक्रमण आरम्भ कर दिए। मुजाहिदों ने लेकण्डी और सुब्हानख्वड़ में अपना केन्द्र स्थापित कर लिया था। और महीनों तक अंग्रेज़ी सेनाओं के साथ लड़ाई जारी रही। क़बाइलियों के इन इलाक़ों पर, जहां अंग्रेज़ी सरकार का सीधा प्रभुत्व था और सेना मौजूद थी, ये आक्रमण हुए। लेकिन जहां अंग्रेज़ी सरकार से क़बाइलियों की स्थायी सीमा निश्चित नहीं थी या सीमा की कोई एजेंसी बीच में अवस्थित नहीं थी, वहां वे जिरगों के रूप में अंग्रेज़ों के राजनीतिक ऐजण्टों के पास गए और उन्हें चुनौती दी कि 'मुझे (ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां) और मलंग बाबा (महात्मा गांधी) को तुरन्त रिहा कर दिया जाए; सुर्खपोशों को भी जेलख़ानों से मुक्त कर दिया जाए और पठानों पर अत्याचार और ज़ुल्म करने से हाथ खींच लिया जाए।'

इस प्रकार का विद्रोह या अराजकता समस्त क़बाइलियों में पैदा हो गई थी। (इस सम्बन्ध में 'नेशनल आर्काइवस आफ़ इण्डिया' के गुप्त

रिकार्डों में विस्तृत विवरण पाया जाता है)। उपर्युक्त मांगों के साथ-साथ क़बाइलियों ने अंग्रेज़ों को सशस्त्र युद्ध की धमकियां भी दीं। अस्तु, तरकाणी जाति का एक बहुत बड़ा जिरगा, जो मामुन्दों, सालारज़इयों, उतमान खैलों से संगठित था, मालाकण्ड के राजनीतिक अभिकर्त्ता से मिला। जिरगों का आंखोंदेखा हाल लोगों ने मेरे सामने वर्णित किया। उससे पता चला कि राजनीतिक ऐजेण्ट द्वारा इस जिरगे के लिए भेंट के समय चाय का बहुत भव्य प्रबंध किया गया था। जिरगा वालों के सामने मेज़ पर रुपयों के ढेर और नोटों के बण्डल रखे गए थे, ताकि वह अपने इन अतिथियों के प्रति विशेष सम्मान प्रकट कर सके और रुपयों अथवा धन का लालच देकर उन्हें अभिभूत किया जा सके। किन्तु इस जिरगा के लोगों में से किसीने भी चाय का प्याला अपने मुंह से न लगाया। केवल यही नहीं कि क़बाइलियों ने रुपयों के ढेर और नोटों के अम्बारों पर घृणा और तिरस्कार से थूक दिया, अपितु उन आत्माभिमानी पठान भाइयों का क्रोध और रोब इस सीमा तक बढ़ा हुआ था कि राजनीतिक ऐजेंट ने एक खान के साथ, जिसका नाम 'बादशाह खान' था, हाथ मिलाना चाहा, तो बादशाह खान ने अपना हाथ पीछे खींच लिया और उससे कहा :

"वे हाथ, जो मेरे परख्तून भाइयों के रक्त से रंगे हुए हैं, उन्हें छूकर मैं अपने-आपको नापाक नहीं करना चाहता।"

क़बाइली सरदार बादशाह खान सालारज़ई क़बीले की 'पुशद' जाति के सपूत थे। राजनीतिक ऐजेण्ट ने इन क़बाइली सरदारों की बहुत चिरौरी करते हुए कहा, "आप लोग मुझे अवधि प्रदान करें कि मैं अंग्रेज़ सरकार के सामने आपकी यह राष्ट्रीय मांग प्रस्तुत कर सकूं।"

इसके पश्चात् वह चला भी गया। लेकिन मेरे प्रति क़बाइली भाइयों ने, जिस सम्मान, श्रद्धा और प्रेम का प्रदर्शन किया और देशभक्ति का जो प्रमाण प्रस्तुत किया, उसकी आनन्ददायक स्मृति अभी तक मेरे मन में ताज़ा और सुरक्षित है। मैं उसे मरते दम तक नहीं भुलाऊंगा।

अंग्रेज़ों ने अपने शासन-काल में और पाकिस्तान की सरकार ने भी हमें यह अनुमति कभी नहीं दी कि हम अपने इन क़बाइली भाइयों, एजेन्सी के लोगों और रियासतों के भाई-बन्धुओं से सम्बन्ध रखें या उनके पास जाएं और उनके दुःख-सुख में सम्मिलित हों।

पख्तूनों की यह एकमात्र जाति या कुल और एकमात्र देश अंग्रेज़ों ने विभिन्न व्यवस्थात्मक भागों में विभक्त किया हुआ था। एक तो सरहद का वह इलाक़ा था, जिसमें हम रहते हैं और उसे गवर्नर का प्रान्त

कहा जाता था। दूसरे एजेन्सियों के इलाक़े थे, जो राजनीतिक अभि-कर्त्ताओं के सीधे अधिकार के अधीन होते थे। तीसरे, वे राज्य अथवा रियासतें थीं, जिनका प्रबन्ध राजनीतिक अभिकर्त्ताओं के द्वारा होता था। चौथे, ये स्वाधीन क़बाइली थे। इसी प्रकार बिलोचिस्तान एक पृथक् प्रान्त था, जो सीमा प्रान्त की भांति चार वर्गों में बांटा गया था। सारांश यह कि पठानों का यह एकमात्र देश आठ भागों में विभक्त था, जिनमें से एक भाग भी दिल्ली से सम्पर्क रखने का अधिकारी नहीं था। इससे अंग्रेज़ों का उद्देश्य यह था और अब पाकिस्तान का मतलब भी यह है कि हम लोग छोटे टुकड़ों और क़बीलों में एक-दूसरे से विलग रखे जा सकें और हमें एक अपना भाईचारा स्थापित करने के लिए खुला न छोड़ा जाए। इस ज़ुल्म ने हमारे देश और जाति को इस क़दर हानि पहुंचाई है कि चंगेज़ और हलाकू के अत्याचार व आतंक को भी मात कर दिया है, क्योंकि उन आततायियों ने तो कुछ हज़ार या लाख मनुष्यों की हत्या की थी और इस कहावत के अनुकूल—"बला-इ-आमद वले बख़ैर बगुज़श्त" (विपत्ति आई, किन्तु कुशलतापूर्वक चली चली गई) —चले गए थे। लेकिन इस नीति (अंग्रेज़ और पाकिस्तान की नीति) के हाथों तो लाखों पख़्तून, जो शायद एशिया में एक सुदृढ़ जाति बनते और मानवता की बहुत बड़ी सेवा करते, खण्ड-खण्ड व ध्वस्त होकर संसार के इतिहास और सृष्टि के पटल से धीरे-धीरे मिट चुके हैं।

मेरा सारा विरोध और लड़ाई आज इसी अत्याचार के विरुद्ध है। मैं कहता हूं कि इस जाति ने कौन-सा पाप किया है कि यह इतिहास से मिटाई जा रही है। इसका देश छीना जा रहा है और महती सद्-प्रकृति जाति को मौत के घाट उतारा जा रहा है—इसे ग़ुलाम बनाए रखने की नापाक व असफल कोशिश की जा रही है। मैं बिलोचिस्तान से चतराल तक पठानों के बिखरे हुए क़बीलों को एकता के सूत्र में गूंथना चाहता हूं, ताकि इनमें एक भाईचारा पैदा हो जाए। इनके शोक-हर्ष एक-दूसरे के सम्मिलित शोक-हर्ष बन जाएं और मानवता की सेवा के लिए यह आत्माभिमानी पख़्तून जाति संसार में अपने जातीय कर्तव्य का पालन कर सके। मैं शायद तीव्र वेदना के अनुभव के साथ इस बात की ओर संकेत कर दूं कि हमें ग़ैरों ने बहुत ग़लत रंग में संसार के सामने पेश किया है। जैसे—

एक ओर तो हमपर सब द्वार बन्द कर रखे हैं, ताकि कोई हमारे पास न आ सके और दूसरी ओर हमारे शत्रु हमारे विरुद्ध प्रचार कर रहे हैं कि हम असभ्य हैं, वहशी हैं और न जाने क्या-क्या हैं। यह प्रचार हमारे

क़बाइली भाइयों के विरुद्ध विभिन्न तरीक़ों से इतना अधिक और ज़ोर-शोर से जारी है कि उसपर अफ़सोस होता है। उदाहरणार्थ, इनकी बहादुरी की प्रशंसा तो करेंगे, लेकिन इस बहादुरी पर वहशत या असभ्यता का रंग चढ़ा देंगे! उनको आज़ादी के साथ अनुराग है, इस बात की प्रशंसा तो करेंगे, लेकिन ऐसे शब्दों में कि शायद उनका कोई संगठन नहीं है और न ही वे किसी नियम को मानते हैं। जब भी उनके दिल में आता है, इन्सान को क़त्ल कर देते हैं और जो बात उन्हें पसन्द होती है, वही करते हैं। उनके अतिथि सेवा-भाव की बड़ाई तो करेंगे और बात को झूठ और भ्रम की एक ऐसी सीमा तक पहुंचा देंगे कि इस अपनी अतिथि-भक्ति की परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए ही मानो वे लोग—क़बाइली पठान—विवश हो जाते हैं कि वे चोरी भी करें, डाके डालें, एक या दूसरी सरकार से पैसे और रिश्वत लें—अर्थात् यह कि जैसे वे किसी भी चरित्र के पाबन्द न हों। इसी तौर-तरीक़े से ये चालाक और शासक जातियां चाहती हैं कि वे हर प्रकार से पठानों के इस भद्र और शिष्ट वर्ग को संसार के सामने अशिष्ट रूप में पेश करें और न केवल संसार की सहानुभूति से वंचित रखें, प्रत्युत स्वार्थसेवी सरकार को औचित्य, अवसर और बहाना जुटा दें कि वह उन्हें कुचलकर रख दे। उन्हें बमों से उड़ा दें, मशीनगनों से उनके अस्तित्व को छलनी-छलनी कर डालें, उनके घर मिट्टी में मिला दें।

ये पश्तून लोग कई सौ वर्षों से, जो उनके दुर्भाग्य का ज़माना था, बहुत बुरी तरह से विपत्तियों में ग्रस्त चले आ रहे हैं। मुग़लों के समय से लेकर अंग्रेज़ों के समय तक, फिर अंग्रेज़ों के ज़माने से लेकर आज की पाकिस्तानी सरकार तक, सबने इन क़बाइली पठानों से निरन्तर बर्बरता और अत्याचार से युक्त व्यवहार किया है। उन्हें पहाड़ों के चटियल, कठोरतम अंचलों में और सूखे-सड़े मैदानों में ऐसे रखा गया है या रहने के लिए विवश किया गया है कि जैसे वे दुर्ग के भीतर रखने के योग्य बन्दी हों। इस हालत में उन्हें न तो उनकी भूमि से कुछ प्राप्त होता है और न ही वे लोग कोई व्यापार कर सकते हैं, क्योंकि व्यापार के लिए वर्तमान काल में यातायात तथा पथ-मार्गों के सुचारु प्रबन्धों की आवश्यकता होती है। उन्हें किसी प्रकार के उद्योग व शिल्प में भी कभी प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर नहीं दिया गया, क्योंकि उद्योग की उन्नति और प्रशिक्षण के लिए एक लम्बे शान्तिमय काल की आवश्यकता पड़ती है, जिसका कई सौ वर्षों से उनके लिए अभाव और अकाल है। उनपर प्रतिदिन बमवर्षा होती है, युद्ध होता है और उनकी नृशंस हत्या

होती है। यह इलाक़ा मानो साम्राज्यशाही शक्तियों ने अपनी सेनाओं के सक्रिय प्रशिक्षण के लिए एक प्रकार से युद्धस्थल बना दिया है। उन लोगों को न तो किसीने कभी शिक्षा दी है और न ही उनके लिए कोई अस्पताल स्थापित किया गया, ताकि वे अपनी साधारण से साधारण बीमारी का इलाज करा सकें। रेदीगुल (अपने-आप पैदा होनेवाला मरुस्थली सुन्दर फूल) की भांति वे लोग पैदा होकर पलते हैं और वैसे ही जंगल और पहाड़ में मिट्टी से मिल जाते हैं। न तो उन्हें रोटी प्राप्त है, न पानी, न खेत न क्यारी, न बाग़ न बाग़ीचा, न बाज़ार न मण्डियां—सारांश यह कि कुछ भी प्राप्त नहीं। उनका न कोई जीवन है, और न जीवन की सुविधाएं उपलब्ध हैं। मैं नहीं समझता कि पाषणहृदय दुनिया उनसे चाहती क्या है? बजाय इसके कि मानवता के नाते उन लाखों सुन्दर लड़कियों और आत्माभिमानी नौजवानों पर दया करे, उसने उनके पीछे नरभक्षी लगा रखे हैं और इस-पर ग़ज़ब तो यह है कि उनके घावों पर नमक छिड़कने के लिए उन्हें अपमानित किया जाता है। पीठ-पीछे गालियां भी दी जाती हैं।

मेरी दूसरी आकांक्षा यह है कि उन शिष्ट, बहादुर, देशभक्त, आत्मसम्मानी और मान-मर्यादा के लिए मर-मिटनेवाले पठानों को ग़ैरों के अत्याचार-अनाचार से बचा लूं और उनके लिए एक ऐसी स्वाधीन दुनिया बना दूं कि यहां वे हंसते-खेलते हुए सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें। मैं चाहता हूं कि उनके ध्वस्त खण्डहर, उजड़े हुए घरों के ढेलों और मिट्टी को चूम लूं, जो आततायी बर्बर लोगों ने बर-बाद किए हैं। मैं चाहता हूं कि उनके गली-कूचे और घर-बार अपने हाथों में झाड़ू लेकर साफ़ करूं। मैं चाहता हूं कि उनके रक्त से लतपत कपड़े अपने हाथों से धो डालूं और फिर वे ख़ूबसूरत इन्सान संसार के सामने खड़े कर दूं और संसार से कहूं—आओ, अब मुझे उनसे अधिक शिष्ट, भद्र, सभ्य, संसुस्कृत इन्सान कोई हो, तो दिखा दो!

ख़ैर, चर्चा तो गांधी-इरविन समझौते की चल रही थी। जब यह समझौता हो गया, तो समस्त राजनीतिक बन्दी मुक्त कर दिए गए, केवल एक मैं ही रह गया और मैं गुजरात के जेलख़ाने में अकेला रह गया। मैंने सुपरिंटेण्डेण्ट जेल से पूछा कि मुझे किसलिए बन्द रखा गया है?

उन्होंने मुझे बताया, "यहां मुस्लिम नेताओं की एक कमेटी आ रही है, जिसमें फ़ज़लहुसेन और सर साहबजादा अब्दुल क़ैयूम भी शामिल हैं और वे आपसे मिलना चाहते हैं।"

मैंने सुपरिंटेण्डेण्ट को उत्तर दिया, "मैं तो उनसे नहीं मिलना चाहता, इसलिए कि जब हमपर विपत्ति थी, तब तो उन्होंने हमारी कोई सहायता न की। उस समय तो उन्होंने मुझे विस्मृत कर रखा था और अब जब मुझे आराम व सुख प्राप्त होने लगा है, तो मैं उन्हें याद आ गया हूं। आप कृपा करके उन्हे सूचित कर दें कि वे यहां न पधारें। किन्तु यदि वे आ भी गए तो मैं उनसे भेंट नहीं करूंगा।"

उधर हमारे सारे साथी महात्मा गांधी के पास गए और उन्हें यह बात बताई, "जहां सब राजनीतिक क़ैदियों को रिहा कर दिया गया है, वहां अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां को मुक्त करने का नाम ही नहीं लिया जाता। इसका एक विशेष कारण यह है कि सीमा प्रान्त के चीफ कमिश्नर सर स्टुअर्ट पियरसन ने वायसराय को लिखा है कि सीमा प्रान्त में हम दो व्यक्ति एकसाथ नहीं रह सकते। या तो अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां रहेगा या मैं रहूंगा।"

यह सूचना पाकर महात्मा गांधी लार्ड इरविन के पास गए और उनसे कहा, "अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां को भी रिहा कर दीजिए, क्योंकि वह हमारी कांग्रेस का सदस्य है।"

लार्ड इरविन अच्छे आदमी थे। उन्होंने गांधीजी से कहा, "पठान और अहिंसा? असम्भव है। आपको चाहिए कि सीमा प्रान्त में जाएं और अपनी आंखों से स्थिति का अध्ययन करें कि 'पख्तून' किस हद तक अहिंसा में आस्था रखते हैं।"

इतना कहने के बावजूद लार्ड इरविन ने मेरी रिहाई के आदेश जारी कर दिए और मैं रिहा हो गया। अब मैं अपने प्रान्त में आया। यहां के हालात और लोगों के भाव देखे। ये बड़े अनुकूल थे। मैंने बिस्मिल्लाह कर दी। काम आरम्भ कर दिया। एक मिनट भी व्यर्थ न जाने दिया। लोगों में साहस, हिम्मत और आत्मविश्वास पैदा करने के लिए जब कभी मैं भाषण करता, तो इस बात पर बहुत ज़ोर दिया करता कि फिरंगी का एक सींग टूट गया है। पख्तूनो! अब उठो, कमर कस लो और उसका दूसरा सींग भी तोड़ डालो। यह देश तुम्हारा है और ख़ुदा ने तुम्हारे बच्चों को प्रदान किया है। किन्तु आज तुम्हारी फूट, स्वार्थपरता के कारण अंग्रेज़ तुम्हारे देश को हड़प कर रहे हैं। ख़ुदा का दिया उनका अपना देश भी है, परन्तु तुम्हारे देश को भी खा रहे हैं। तुम्हारे बाल-बच्चे भूखे-प्यासे हैं और तुम्हारे देश की सहायता से उनके बच्चे गुलछर्रे उड़ा रहे हैं और उन्नति कर रहे हैं।"

मेरे भाषण के इस वाक्य—'फिरंगी का दूसरा सींग भी तोड़

डालो'—ने अंग्रेज़ को आग-भभूका कर दिया। उन्होंने मेरे साथियों के मध्य मेरे विरुद्ध प्रचार किया, "अब्दुल ग़फ़्फ़ार सुलह-सफ़ाई और समझौता नहीं चाहता, अपितु बिगाड़ पैदा करता है। उसकी बातों का परिणाम यह होगा कि तुम सबपर विपत्ति आ पड़ेगी।"

अंग्रेज़ ने हमारे कुछ साथियों के मस्तिष्क में यह बात भर देने की बड़ी चेष्टा की, "तुम लोग बड़े योग्य और मेधावी हो और वह अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां तुम्हारे समान विद्वान नहीं है। काम तुम लोग करते हो, किन्तु नाम उसका होता है।"

इस प्रकार के प्रचार का प्रभाव हमारे कुछ साथियों पर हुआ भी और उनके कुछेक नेता एकत्र हुए। उन्होंने हमारे क़ाज़ी अताउल्लाह जान के यहां एक मीटिंग की और उस मीटिंग में मुझसे कहा, "एक तो आप अपने दौरे स्थगित कर दें, दूसरे अंग्रेज़ का दूसरा सींग तोड़ डालने की बात मत किया कीजिए।"

मैंने कहा, "अच्छा! आखिर मैं लोगों से क्या कहूं?"

उन्होंने कहा, "हमने एक-दूसरे की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया है, अब ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए।"

मैंने उनसे कहा, "इससे तो पठानों में वह भाव उत्पन्न नहीं हो सकता, जो मैं उनमें उत्पन्न करना चाहता हूं।"

उन्होंने फिर ज़ोर दिया कि मैं दौरे बन्द कर दूं। मैंने अभिमत प्रकट किया कि यह समझौता स्थायी नहीं है। यह शीघ्र या बिलम्ब से टूटनेवाला है। खैर, खुदा ने हमें काम करने के लिए एक अच्छा अवसर प्रदान किया है, इसे नष्ट नहीं करना चाहिए। लेकिन कुछ व्यक्तियों को भय ने अभिभूत कर लिया था। वे स्वयं तो कोई काम नहीं करते थे और मुझे भी काम करने नहीं देते थे, क्योंकि उनका खयाल था कि मुझे गिरफ़्तार किया जाएगा, तो वे भी मेरे साथ धर लिए जाएंगे। वे क़ैद होने और जेलखाने की यातनाएं सहन करने को तैयार नहीं थे।

१६

कराची में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन था। हमें उसमें भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया। यह पहला कांग्रेस-अधिवेशन था, जिसमें हम शामिल हो रहे थे। हमारे साथ ८० या १०० के लगभग खुदाई खिदमतगार भी कराची के लिए रवाना हुए। वे अपनी

साज-सज्जा से लैस थे। हम बड़े समारोह के साथ कराची पहुंचे। रास्ते में हमने खूब प्रचार किया। जिस भी स्टेशन पर रेलगाड़ी खड़ी होती, हमारे खुदाई खिदमतगार अपनी साज-सज्जा से विभूषित नीचे उतरते और अपना प्रचार करते।

कराची कांग्रेस में हमें एक पृथक् शिविर दिया गया, जो विशेष रूप से हमारे ही लिए स्थापित किया गया था। हमारे खुदाई खिदमतगार बड़े चाव और शौर्यपूर्ण ढंग से अपनी ड्यूटी निभाते थे। उनमें अनुशासन का एक प्रबल भाव काम करता था। जलसों में जिस स्थान पर ड्यूटी देना कठिन होता था, वहीं खुदाई खिदमतगारों को नियुक्त किया जाता था और वे अपने कर्तव्य का पालन बड़ी खूबी और शान से करते थे। इस कारण हमारे स्वयंसेवक वहां के लोगों में बहुत प्रिय हो गए और लोग उन्हें बड़े समादर और आत्मीयता की दृष्टि से देखते थे। इस अवसर पर गांधीजी, जवाहरलालजी और कांग्रेस के दूसरे बड़े-बड़े नेताओं से हमारी जान-पहचान हो गई। इन राष्ट्रीय नेताओं के साथ हमें बातचीत करने का अवसर भी मिला।

दिल्ली में डाक्टर अंसारी के मकान में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति का अधिवेशन हुआ था। मैं भी कार्यकारिणी का सदस्य था और उस अधिवेशन में उपस्थित हुआ था। जवाहरलालजी से मेरा परिचय नहीं था। और न वे मुझे जानते थे। उस समय हम एक-दूसरे के मित्र व परिचित नहीं हुए थे और न ही एक-दूसरे की तबीयतों से परिचित थे।

जवाहरलाल ने मुझे अलग ले जाकर कहा, "हम पेशावर की कांग्रेस कमेटी के कार्यालय को खर्च के लिए पांच सौ रुपया मासिक दिया करते थे और अब आप लोगों के जिरगे के कार्यालय को एक हज़ार रुपया मासिक दिया करेंगे।"

मैंने उनसे कहा, "पण्डितजी! हमें रुपयों की आवश्यकता नहीं है। फिर हम लोग भला रुपये लें ही क्यों? क्या यह देश केवल आप ही लोगों का है, हमारा नहीं? और इसके लिए बलिदान करना केवल आप ही का कर्तव्य है, हमारा कर्तव्य नहीं है? यह आपका और हमारा सबका साझा देश है। अस्तु, आप अपना बोझ उठाइए और हम अपना बोझ उठाएंगे। यदि आप लोग हमारी सहायता करना ही चाहते हैं, तो आप हमारी लड़कियों के लिए एक स्कूल बनवा दीजिए, जिसके साथ एक छोटा-सा अस्पताल भी हो।"

जवाहरलालजी मेरी इस बात पर क्षुब्ध-से हो गए और मुझे तो उन्होंने कुछ न कहा, लेकिन डाक्टर अंसारी से शिकायत की कि बाचा

ख़ान बहुत अभिमानी व्यक्ति है। जब मैं डाक्टर साहब से मिला, तो उन्होंने मुझसे कहा कि मैंने जवाहरलालजी को किसलिए रुष्ट कर दिया है ? मैंने उन्हें बताया कि मैंने तो उनसे रुष्ट होने की कोई बात नहीं कही। मैं तो एक ख़ुदाई ख़िदमतगार हूं और ख़ुदाई ख़िदमतगारी तथा अभिमान तो परस्पर विरोधी चीज़ें हैं। इस प्रकार मैंने डाक्टर अंसारी साहब को अपनी सारी बात समझा दी। इसके बाद मैं और पण्डित जवाहरलाल नेहरू एक-दूसरे के स्वभाव और प्रकृति को भली प्रकार से जान गए तथा हमने अपने पारस्परिक सम्बन्धों में इतना प्रेम-प्यार और सौहार्द पैदा कर लिया कि दो सगे भाइयों में भी ऐसा प्रेम-प्यार नहीं होगा। वास्तव में मुझे पैसों की बात बड़ी निकृष्ट-सी जान पड़ती है और मैंने अपनी सारी आयु में किसीके आगे पैसों के लिए हाथ नहीं बढ़ाया। कार्यकारिणी समिति के सदस्य रेल का किराया लिया करते थे और जवाहरलालजी ने इस बात पर भी मुझसे बड़ी लड़ाइयां कीं, लेकिन मैंने किराया कभी न लिया।

कराची से वापस आकर मैंने फिर अपना दौरा शुरू कर दिया और जब हम कोहाट पहुंचे और ज़िला कोहाट का दौरा आरम्भ किया, तो भरती करनेवाले अंग्रेज़ों ने सीमा प्रान्त की सरकार के द्वारा वायसराय से मेरी शिकायत की और उन्हें लिखा, "कोहाट तो हमारा भरती का एक केन्द्र है, इसलिए अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां को इस ज़िले का दौरा नहीं करने देंगे और यदि वह दौरे पर आएगा तो हम उसे गिरफ़्तार कर लेंगे।"

उन दिनों लार्ड इरविन चले गए थे और उनके स्थान पर लार्ड विलिंगडन आ चुके थे। अब वे हिन्दुस्तान के वायसराय थे। लार्ड विलिंगडन ने गांधीजी को लिखा कि वे मुझे गिरफ़्तार करना चाहते हैं। गांधीजी ने उन्हें उत्तर दिया, "अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां को कदापि गिरफ़्तार न किया जाए। यदि ऐसा किया गया, तो हमारा समझौता (गांधी-इरविन पैक्ट) टूट जाएगा। लार्ड इरविन ने मुझसे कहा था कि मैं सीमा प्रान्त में जाकर पठानों के कार्य-कलाप अपनी आंखों से देखूं, इसलिए आप कृपा कर मुझे सीमा प्रान्त जाने की अनुमति दीजिए, ताकि मैं उन लोगों को देख लूं।"

लेकिन लार्ड विलिंगडन ने महात्मा गांधी को सीमा प्रान्त में जाने की अनुमति नहीं दी। इसपर गांधीजी ने लार्ड विलिंगडन को लिखा यदि वे उन्हें सीमा प्रान्त जाने की आज्ञा नहीं देते, तो पंडित जवाहरलाल नेहरू को आज्ञा दे दें ताकि वे सीमा प्रान्त जाकर स्थिति का अध्ययन

करें। लेकिन वायसराय ने नेहरू के लिए भी अनुमति देने से इन्कार कर दिया। अब गांधीजी ने अपने बेटे देवदास गांधी का नाम सुझाया। तब बार-बार अनुरोध करने पर वायसराय ने देवदास को सीमा प्रान्त जाने की अनुमति दे दी।

देवदास पेशावर पहुंच गए। पेशावर से हम लोगों को उन्हें अपने साथ लेकर उतमान ज़ई रवाना होना था। हम उतमान ज़ई के लिए एक लारी पर बैठ गए। जब वह लारी शाही बाग़ से आगे बढ़ी, तो हमारे एक मित्र की मोटरकार पहुंच गई। लारी को रुकवाया गया और हम लोग नीचे उतरकर मोटर में सवार हो गए। मोटर की अगली सीटों पर दो ख़ुदाई ख़िदमतगार बैठे हुए थे। वे मोटर चला रहे थे। उन्होंने अपनी आकर्षक सुन्दर सुर्ख़ वरदियां पहन रखी थीं और हमारी मोटर पर झंडा भी लहरा रहा था। मैं, देवदास और ख़ुरशीद बहन पिछली सीटों पर बैठ गए। जब हम चार सद्दा पहुंचे, तो हमें सूचना मिली कि हमारी उस लारी पर आक्रमण करने के लिए एक डाकू, जो 'क़ाज़ी' नाम से प्रसिद्ध था, सरदरयाब के पुल के निकटवर्ती जंगल में बैठा हुआ था। जब वह लारी पुल के निकट पहुंची, तो उस डाकू ने उस-पर गोलियां चलाईं। उस लारी को रोककर तलाशी ली, लेकिन डाकू क़ाज़ी को निराशा हुई। इस घटना में डाकू की गोली से एक यात्री घायल हो गया, जिसे हमने स्वयं चार सद्दा के अस्पताल में, जहां उसका इलाज हो रहा था, देखा था और उससे बातचीत भी की थी।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि लारी पर डाकू का आक्रमण एक सोची-समझी योजना के अनुसार हुआ था। डाकू को सरकार के परा-मर्श से कुली खां ने बुलाया था और उसे जंगल में हमें मरवा डालने के लिए बिठा रखा था। हम पेशावर से तो उसी लारी में सवार हुए थे जिसपर डाकू ने आक्रमण किया था। सरकार ने नाकी थाने के द्वारा इस डाकू को सूचना दी थी कि इस लारी में हम लोग यात्रा कर रहे हैं। यह तो भगवान की कृपा थी, हमें संयोगवश अपने मित्र की कार मिल गई और हम लारी से उतरकर मोटर में सवार हो गए। लेकिन उस डाकू को तो यह सूचना नहीं मिल सकी थी कि हम उस लारी से रास्ते में उतर गए हैं। यही कारण था कि सरकार का यह षड्यन्त्र असफल हो गया। लेकिन इस षड्यन्त्र की असफलता का रहस्य जनसाधारण पर खुल गया और इसका परिणाम यह हुआ, जैसाकि बाद में मैंने सुना था कि वह डाकू क़ाज़ी जब आफ़रीदियों में पहुंचा, तो आफ़रीदियों ने उसे केवल इस कारण क़त्ल कर डाला कि उन्हें मालूम हो गया था कि

उसने हमें क़त्ल करने की घृणित चेष्टा की थी। आफ़रीदियों के निकट क़ाज़ी की यह चेष्टा पश्तूनोली (पठानी परम्परा) के सर्वथा विरुद्ध थी। उनको गुस्सा था कि यदि इस षड्यन्त्र में गांधी बाबा के बेटे की हत्या हो जाती, तो इससे पश्तूनों की बदनामी भारत-भर में होती, जो उनके लिए असह्य थी। ख़ैर, हम कुशलतापूर्वक अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच गए और उसके बाद देवदास ने हमारे सारे इलाक़े का भ्रमण किया और हमने सब कुछ दिखाया। वे समझ गए कि राष्ट्रीय कार्य करने के कारण ही अंग्रेज़ हमसे रुष्ट और खिन्न थे।

उस ज़माने में हमारे प्रान्त में मुस्लिम लीग का अस्तित्व नहीं था, अंग्रेज़ों को हमारी संस्था का मुक़ाबला करने के लिए एक दल की आवश्यकता थी। उन्होंने हमारे मुक़ाबले के लिए ख़ाकसार पार्टी की स्थापना कर दी। उस समय इनायतुल्ला खां मशरिक़ी पेशावर गवर्नमेण्ट हाईस्कूल का हैड मास्टर था। सरकार ने उसे अपने आश्वासन में लिया और उसीके द्वारा अंग्रेज़ों ने हमारी संस्था के मुक़ाबले के लिए ख़ाकसार आंदोलन आरंभ करा दिया। लेकिन ख़ुदाई ख़िदमतगार आंदोलन देश में सर्वप्रिय था, इसलिए ख़ाकसार आंदोलन सीमा प्रान्त में उन्नति नहीं कर सका। लेकिन भारत के अन्य भागों में यह तेज़ी से फैल गया। बाद को इनायतुल्ला खां मशरिक़ी में दुर्बलता आ गई और लखनऊ में उसने क्षमा मांग ली। इस कारण उसका आंदोलन समाप्त हो गया। इस प्रकार के अन्य आंदोलन भी हमारे प्रान्त में आरम्भ हुए थे, लेकिन ख़ुदाई ख़िदमतगार आन्दोलन का मुक़ाबला दूसरे आन्दोलन नहीं कर सके और अपनी मौत आप मर गए।

सच तो यह है कि एक ओर तो हम अपने प्रान्त में खूब काम करते थे और दूसरी ओर ख़ुदाई ख़िदमतगार आन्दोलन प्रान्त में जंगल की आग की भांति फैलता जाता था। केवल कोहाट के ज़िले में हमारे ख़ुदाई ख़िदमतगारों की संख्या एक लाख थी। अंग्रेज़ इस बात को सहन नहीं कर सकते थे और इस चिन्ता में थे कि मुझे गिरफ़्तार कर लें। मैं पूरे ज़ोर से काम कर रहा था, क्योंकि मुझे ज्ञात था कि मैं किसी समय भी गिरफ़्तार कर लिया जाऊंगा। उधर अंग्रेज़ कोशिश कर रहे थे कि वे गांधीजी को मेरी गिरफ़्तारी के लिए राज़ी कर लें, लेकिन गांधीजी उनकी यह बात नहीं मानते थे। इस बात को लेकर गांधीजी और भारत के वायसराय के मध्य संघर्ष चल रहा था। अन्त में गांधीजी बहुत विवश हो गए। उन्होंने मेरे पास आदमी भेज दिया कि मैं उनके पास चला जाऊं।

उन दिनों महात्मा गांधी बारदोली में थे। मैंने बारदोली के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में भोपाल के स्टेशन पर मैंने मुहम्मद अली साहब के दामाद शएब क़ुरेशी को, जो पहले हमारे साथ खिलाफ़त में काम करते थे, देख लिया। उस समय वे भोपाल के नवाब के पास थे। शएब ने मुझे वहां उतरने पर मजबूर कर दिया। मैं एक रात के लिए भोपाल ठहर गया। रात को उन्होंने मुझे नवाब भोपाल का अतिथि बनाया। शौकत अली भी उन्हींके अतिथि थे। नवाब साहब ने एकान्त में मेरे साथ लम्बी बातचीत की और अन्त में मुझसे कहा कि यदि मेरी इच्छा हो, तो वे दोनों वायसराय के पास चले जाएंगे। उनके साथ भेंट कर लेंगे। नवाब साहब ने यह प्रबल आशा प्रकट की कि मैं जो कुछ भी पश्तूनों के लिए मांगूंगा, वायसराय साहब अवश्य दे देंगे। लेकिन मैंने वायसराय के पास जाने से इन्कार कर दिया। मैंने नवाब साहब से कह दिया कि मुझे इतना विश्वास उनपर नहीं है; दूसरे, इस समय मैं बारदोली जा रहा हूं।

जब मैं बारदोली पहुंच गया तो महात्मा गांधी से मैंने बातचीत की। मैंने उनसे कह दिया कि ये सब बहाने और प्रवंचना है। सच बात तो यह है कि सरकार मुझे काम नहीं करने देती। अच्छा हो कि आप वायसराय को लिख दें कि जिन लोगों ने मुझपर अभियोग लगाए हैं, उनको वायसराय साहब बुला लें। वे लोग वायसराय और आपके सामने मेरे विरुद्ध लगाए गए अभियोगों के प्रमाण प्रस्तुत करें। आप दोनों जज बन जाएं। यदि मेरे विरुद्ध प्रमाण मिल जाएं—अभियोग सत्य सिद्ध हो जाएं, तो फिर आप दोनों जो सज़ा मुझे देंगे, वह मुझे सिर-आंखों पर स्वीकार होगी।

गांधीजी ने वायसराय के सामने मेरा यह सुझाव रख दिया और इसके साथ दूसरी बात यह लिखी कि यदि वायसराय साहब उन्हें अनुमति दें, तो वे स्वयं सीमा प्रान्त जाकर अपनी आंखों से सारी परिस्थितियां और घटनाएं देख लेंगे। यदि वायसराय साहब चाहें तो गांधीजी मुझे साथ लेकर उनके पास शिमला आ सकते हैं।

यह गर्मी का मौसम था और उन दिनों वायसराय शिमला में थे। गांधीजी ने वायसराय के उत्तर की प्रतीक्षा के लिए कुछ दिन मुझे अपने यहां ठहरा लिया। इस बीच वायसराय का उत्तर मिला कि महात्मा गांधी को मुझे साथ लेकर शिमला आने की आवश्यकता नहीं और न ही उस समय गांधीजी का सीमा प्रान्त जाना वायसराय उचित समझते हैं। यह उत्तर पाकर गांधीजी इस बात को मान गए कि मेरी बात बिलकुल सच है। वे समझ गए कि अब मैं जाकर अपना काम कर सकता हूं।

१७

शिमला में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की मीटिंग थी। मैं भी उसमें भाग लेने के लिए गया। दो ख़ुदाई ख़िदमतगार भी मेरे साथ थे। गांधीजी गोलमेज़ कांफ्रेंस के लिए लन्दन जा रहे थे। उसके बारे में विचार-विमर्श करना था। गांधीजी चले गए और हम लोग शिमला में ठहर गए। हमारे साथ इस्लामिया कालेज का एक नौजवान था, जिसका बाप गुप्तचर विभाग का उच्च अधिकारी था। उसने मुझे शिमला के सेसल होटल में अपना अतिथि बनाया और मेरे साथ फ़ीरोज़ खां नून तथा पंजाब के कुछ अन्य प्रतिष्ठित महानुभावों को भी खाने पर बुला लिया। जब हम खाना खाने के लिए डाइनिंग हाल में जा रहे थे, तो मेरे साथ ख़ुदाई ख़िदमतगार भी थे। वे बहुत रूपवान युवक थे। उन्होंने आकर्षक लाल वर्दियां पहन रखी थीं। चारों ओर बहुत-से अंग्रेज़ और मेमें बैठी हुई थीं। उन्होंने हमारे सुर्ख़पोशों को देखा, तो उत्सुकता-भरी नज़र से देखते ही रह गए। जब हमने खाना खा लिया, तो फ़ीरोज़ खां नून ने उलाहना दिया—"आप पठान लोग कांग्रेस के साथी हो गए हैं, और हमें बहुत भारी हानि पहुंचाई है।"

मैंने उनसे कहा—"इसमें हमारा क्या दोष है। हम तो पहले आप ही के पास आए थे। जब आपने हमें साफ़ उत्तर दे दिया, तो इसके पश्चात् हम लोग कांग्रेस के पास गए। हम लोग अंग्रेज़ों की ग़ुलामी से तंग आ चुके हैं और स्वाधीनता चाहते हैं। यदि आप लोग भी स्वतन्त्रता के इच्छुक हैं, तो माशा-अल्लाह! हम आपके साथी हैं।"

फ़ीरोज़ खां नून ने उत्तर दिया, "बहुत अच्छा! हम आपस में विचार-विमर्श करके आपको सूचित कर देंगे।"

लेकिन फ़ीरोज़ खां नून तब से ऐसे ग़ायब हुए कि फिर १९४६ में पटना स्टेशन पर दिखाई दिए, अर्थात् बिहार के दंगों में।

ख़ैर, मैं शिमला में था। भारत के परराष्ट्र विभाग के सचिव हावल ने मुझे पत्र लिखा—"यदि आप मिलने का कष्ट उठा सकें, तो आपकी बड़ी कृपा होगी।"

मैंने उसे उत्तर दिया, "खेद है कि मैं आपसे नहीं मिल सकता।"

उन्होंने फिर गांधीजी से कहा और गांधीजी ने मुझसे पूछा कि मैंने हावल साहब से भेंट करने से इन्कार क्यों किया है? मैंने गांधीजी से कहा कि मैं एक दुर्बल व्यक्ति हूं। फिसलन पर पांव नहीं रखता, ऐसा न हो कि फिसल जाऊं।

महात्मा गांधी बड़े हंसे और मुझसे बोले—"क्या मैं अंग्रेज़ों से भेंट और वार्तालाप नहीं करता ?"

मैंने उनसे निवेदन किया, "आप तो महात्मा हैं।"

सारांश यह कि महात्माजी ने मुझे विवश कर दिया और उनका मन रखने के लिए मैं हावल से मिलने को चला गया। हावल साहब हमारे सीमा प्रान्त में रह चुके थे। वे बड़े सच्चरित्र और सौम्य प्रकृति के थे। वेली साहब भी जो उप-परराष्ट्र सचिव थे, मुझसे भली प्रकार परिचित थे। जब हम लोग बातें करने बैठे, तो हावल साहब ने मुझसे गिला किया और कहा, "हमारे और पख़्तूनों के बहुत अच्छे सम्बन्ध थे, लेकिन पख़्तूनों में कुछ ऐसे लोग पैदा हो गए कि उनके जोशीले भाषणों के कारण हमारे और पठानों के सम्बन्ध ख़राब हो गए हैं।"

मैंने उनसे कहा, "जोशीले भाषण किसीके सम्बन्ध ख़राब नहीं करते। आप इन्हीं वेली साहब से पूछिए कि आप लोगों ने हमारे साथ क्या किया है ?"

इसके साथ ही वेली साहब से मैंने कहा, "जवान ! तुम बात नहीं करते ? चुप क्यों हो ? तुम्हें तो सब कुछ मालूम है। तुम तो उन दिनों पेशावर के डिप्टी कमिशनर थे और हमें तो कांग्रेस से तुम्हीं लोगों ने मिला दिया है।"

हमने अभी अपनी बातें समाप्त नहीं की थीं कि टेलीफोन आ गया और हावल साहब ने मुझे बुलाया, "यह स्वराष्ट्र सचिव एमरसन साहब का टेलीफोन है। वे कहते हैं कि आप उनसे मिल लें।"

मैंने हावल साहब से कहा, "उन्होंने मेरे साथ समय निश्चित नहीं किया। मैं उनसे नहीं मिल सकता।"

हावल साहब ने फिर उन्हें टेलीफोन के द्वारा कहा, "कृपा करके अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां से कहिए कि वे एक क्षण के लिए आपसे आकर मिलें।"

हावल साहब ने मुझे बताया कि इसी रास्ते में एमरसन साहब का कार्यालय है। अच्छा यह होगा कि कुछेक मिनटों के लिए मैं उनसे मिलता जाऊं। मैं हावल और वेली से विदा हुआ और रास्ते में एमरसन के पास चला गया। मैं उनके कमरे में दाख़िल हुआ ही था कि उन्होंने छूटते ही बड़े भीषण स्वर में कहा, "देखो, तुमने मेरठ में भाषण किया और उसमें तुमने कहा, कि फिरंगी का मुखमण्डल तो सफ़ेद है, किन्तु उसका हृदय काला है। यदि तुम्हारा यह भाषण आज मैं लन्दन में प्रकाशित करा दूं, तो फिर आशा नहीं है कि अंग्रेज़ तुम्हें सुविधाएं दें

और सुधार के लिए पग उठाएं।"

मैंने कहा, "मैंने केवल इतनी ही बात नहीं कही और भी बहुत कुछ कहा। मेरी ओर से आपको खुली छुट्टी है कि आप मेरा वह भाषण सामाचारपत्रों में प्रकाशित करा दें। मैंने तो अपने भाषण में कहा था कि फिरंगियों से हमारे सम्बन्ध बहुत अच्छे थे और हम तो उनपर लट्टू थे। जब हम कभी कहीं से अच्छी वस्तु प्राप्त करते थे, तो स्वयं नहीं खाते थे, अपनी सन्तान को भी नहीं देते थे, बल्कि उसे उनके पास ले जाते थे कि वे हमसे प्रसन्न हो जाएं। लेकिन हम उन्हें प्रसन्न नहीं कर सके। यहां तक कि वे सुधार भी जो भारत स्वीकार नहीं करता था, उन्होंने हमें प्रदान नहीं किए। इसीलिए मैंने कहा था कि ऐसा मालूम होता है कि उनके चेहरे तो सफ़ेद हैं, लेकिन उनके दिल मैले हैं।"

एमरसन साहब की बातें ऐसी नहीं थीं जैसीकि हावल साहब की थीं, क्योंकि एमरसन की सारी आयु पंजाब में गुज़री थी।

शिमला में 'सिवल एण्ड मिलिट्री गज़ट' अख़बार का एक संवाददाता था और उसका एक साथी मेरे पास प्रायः आया-जाया करता था। मेरी और वायसराय की भेंट के विषय में उसने बड़े भ्रम पैदा कर दिए थे और संवाददाता ने एक झूठा समाचार अपने समाचारपत्र में प्रकाशित किया था। यह कि "सीमा प्रान्त की जांच के बारे में कार्यकारिणी समिति ने अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां की बातें नहीं मानी हैं, इसलिए अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां त्यागपत्र दे देंगे।"

इस समाचार ने पंजाब और सीमा प्रान्त में बड़ी हलचल पैदा कर दी थी। मैं जब लाहौर पहुंचा तो सर साहबज़ादा अब्दुल क़ैयूम का एक आदमी मेरे पास आया। यह व्यक्ति विशेष रूप से मेरे लिए सीमा प्रान्त से आया था। उसने मुझसे कहा, "मुझे साहबज़ादा साहब ने विशेष रूप से आपके पास भेजा है और आपसे उन्होंने कहा है कि ख़ुदा के वास्ते कहीं कांग्रेस को छोड़ न दीजिएगा। यदि आप कांग्रेस से अलग हो गए, तो फिर अंग्रेज़ हमें कुछ भी नहीं देंगे।"

मैं शिमला से वापस आया, तो हमारे कुछ साथियों के दिलों में अंग्रेज़ों ने भय और रोष पैदा कर दिया था और उन्होंने छिप-छिपकर मेरा विरोध आरम्भ कर दिया था। हमारे कुछ साथी यह बात आन्दोलन के लिए अच्छी नहीं समझते थे। उन्होंने हमारे सुधार के लिए प्रयत्न किया और ऐसे साथियों ने हमें मियां जाफ़रशाह के यहां इकट्ठा किया। अन्य बहुत-सी बातों के अतिरिक्त मेरे विरोधी यह भी कहते थे, "हमारा हिन्दुओं पर भरोसा और आश्वासन नहीं है। ऐसा न हो

कि वे गोलमेज़ कांफ्रेंस में हमारे अधिकारों की उपेक्षा कर दें। हमें इस विषय में एक प्रस्ताव स्वीकार करना चाहिए।"

मैंने उनसे कहा, "अभी तक उन्होंने हमारे साथ कोई अविश्वसनीय बात नहीं की है। ऐसे समय में हमें इस प्रकार की समस्याएं नहीं उठानी चाहिए। यदि उन्होंने हमारे साथ कोई ऐसा व्यवहार किया, तो हमें किसीने बांध नहीं रखा है। मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूं कि उन्होंने कभी ऐसा कोई काम किया, तो आप सबसे आगे हो जाना और हम सब खुदाई खिदमतगार आपके पीछे चल पड़ेंगे।"

सारांश यह कि इस अवसर पर हमारे समस्त मतभेदों का समाधान हो गया।

सर रेलेफ ग्रिफ़थ उन दिनों सीमा प्रान्त के चीफ़ कमिश्नर थे। वे प्रान्त में एक दरबार आयोजित करना चाहते थे। सर ग्रिफ़थ ने मुझे सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण दिया, लेकिन मैंने अस्वीकार कर दिया। इसके पश्चात् उन्होंने मेरे लिए एक आदेश भेज दिया कि वे मुझसे मिलना चाहते हैं। लेकिन मैंने वह आदेश भी न माना और उनसे भेंट करने नहीं गया। इसपर वे विवश हो गए और उन्होंने मेरे पीछे पुलिस को भेज दिया। पुलिस मुझे चीफ़ कमिश्नर के पास ले गई। उनसे भेंट के दौरान उन खतरों व आशंकाओं की चर्चा हुई, जो ग्रिफ़थ के कथनानुसार देश के सामने थीं। चीफ़ कमिश्नर ने कहा, "हमें तीन खतरों का सामना है—एक क़बाइल, दूसरा अफ़गानिस्तान और तीसरा रूस।"

मैंने उनसे कहा, "यदि आप लोगों को सचमुच ही क़बाइल से खतरा है और चाहते हैं कि उनका सुधार हो, तो हम हाज़िर हैं कि आपसे सहयोग और सहायता करें। लेकिन शर्त यह है कि आप क़बाइल से सम्बद्ध अपनी वर्तमान नीति का परित्याग कर दें।—और उन्हें शत्रु की दृष्टि से नहीं, मित्र की दृष्टि से देखना आरम्भ कर दें तथा हमारी सहायता और सहयोग से क़बाइल में एक ऐसे कार्यक्रम को कार्यान्वित करें, जिससे क़बाइल को लाभ पहुंचे।

ग्रिफ़थ साहब ने कागज़ और क़लम ले लिया और नोट लेने आरम्भ कर दिए। मैं जो कुछ भी कहता था, उसे वे लिखते जाते थे! मैंने उनसे कहा, "आप क़बाइलियों के क़त्ल और ध्वंस पर जितना कुछ खर्च करते हैं, उससे आधे खर्च से उनके लिए गृह-उद्योग स्थापित करने चाहिए, ताकि वे अपने लिए आज़ाद और सम्मानपूर्ण आजीविका की व्यवस्था कर सकें और कि वे शिल्प, उद्योग और व्यापार सीख लें।

क़बाइलियों के बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध भी किया जाना चाहिए, ताकि उनकी सन्तान नये जीवन के लिए अपने अन्दर योग्यता व क्षमता पैदा कर ले। उनके लिए अस्पताल भी स्थापित किए जाने चाहिए, ताकि उनकी चिकित्सा हो सके। इसी तरह से ये आत्मसम्मानी पठान पश्तून जाति के समर्थ व्यक्ति और कार्यकुशल लाभदायक नागरिक बन जाएंगे।"

अफ़ग़ानिस्तान के ख़तरे के विषय में मैंने ग्रिफ़थ साहब से कहा, "अफ़ग़ानिस्तान से आपको कोई ख़तरा नहीं, क्योंकि एक तो अफ़ग़ानिस्तान की सरकार सदा आपकी मित्र रही है, यहां तक कि जो सरकार आपको नापसन्द होती है, वह सरकार स्थिर नहीं रह सकती और दूसरी बात यह है कि हम पठान लोग आपके मित्र हैं, वे भी आख़िर हमारे ही भाई और बन्धु हैं। वे भी अपने-आप आपके मित्र बने रहेंगे। रह गया रूस से ख़तरे का प्रश्न ?—इस ख़तरे के मुक़ाबले का उत्तम उपाय यह है कि हमें हमारा अधिकार दे दिया जाए, ताकि यह देश हमारा हो जाए। हम एक बड़ी जाति हैं, जो आमू नदी से लेकर आधे पंजाब तक फैले हुए हैं। हमपर कोई हमला नहीं कर सकता और यदि किसीके सींग अकारण ही खुजली अनुभव करने लगेंगे, तो हम हाज़िर हैं कि उसकी खुजली का इलाज करते हुए अपने देश की रक्षा के लिए अपनी जान पर खेल जाएं।"

ग्रिफ़थ साहब ने ये सब बातें लिख लीं और मुझसे कह दिया, "मैं दिल्ली जा रहा हूं, ताकि वायसराय से ये बात कह सकूं।" उनकी मुखमुद्रा और दृष्टि से मालूम होता था कि वे मेरी बातों से सहमत हैं।

ग्रिफ़थ साहब ने मुझसे कहा, "अच्छा, फिर भी तो कभी-कभार मुझसे मिला करोगे ?"

मैं उनके सामने हंसकर रह गया और कहा, "हां, लेकिन इस रीति से जिस रीति से आज आपने मुझसे व्यवहार किया है—(अर्थात् पुलिस के द्वारा)।

उन्होंने कहा, "देखो, ये इतने व्यक्ति मुझसे मिलने के लिए इच्छुक हैं और कई दिनों से प्रतीक्षा कर रहे हैं और उनमें ज़रा बाहर बैठे हुए बड़े-बड़े ख़ान बहादुरों और ख़ानों को ही देखो, जो अब भी बैठे हुए हैं। लेकिन मैं उनसे नहीं मिलता हूं और तुम्हारी मिन्नत-समाजत करता हूं, किन्तु तुम मुझे नहीं मिलते।"

मैंने उनसे हंसकर कहा, 'ग्रिफ़थ साहब ! ये लोग व्यक्तिगत लाभ के लिए आपकी परिक्रमा करते हैं, बलाएं लेते हैं। मैं आप लोगों से

कोई व्यक्तिगत इच्छा नहीं रखता कि ऐसी खुशामदें करके अपने-आपको थकाऊं।"

ग्रिफ़थ साहब ने मेज़ पर मुक्का मारकर कहा, "एक भाग्यहीन सरकार, जो ईमानदार लोगों को अपने से दूर रखती है और बेईमान लोगों से घिरी रहती है, उसकी इसके सिवाय और क्या गति होगी कि वह नष्ट हो जाएगी।"

"खुदा अंग्रेज़ की सहायता करें"—मैं ग्रिफ़थ साहब से विदा हुआ और वे भारत के वायसराय से मिलने के लिए दिल्ली चले गए।

मैं इस आशा में था कि यदि भगवान को स्वीकार हुआ तो मेरे देश और जाति के लिए कुछ हो जाएगा। लेकिन कुछ दिन के बाद ग्रिफ़थ साहब जब वायसराय से भेंट करके वापस आए, तो उन्होंने सबसे पहले मुझपर हाथ साफ़ किए और २८ दिसम्बर, १९३१ को मुझे गिरफ़्तार कर लिया। भारत-भर में सबसे पहले मुझे ही गिरफ़्तार किया गया, जबकि गांधीजी लन्दन की गोलमेज़ कांफ्रेंस से भी वापस नहीं आए थे। भारत-भर में अन्धाधुन्ध मार-पीट आरम्भ हो गई और मेरे बाद हज़ारों की संख्या में पठानों को गिरफ़्तार कर लिया गया।

१८

हमारे देश में देश की स्वाधीनता के लिए दो प्रकार के आन्दोलन आरम्भ हुए थे। एक हिंसात्मक था और दूसरा अहिंसात्मक। हिंसा का आन्दोलन पहले आरम्भ हुआ था और उसके चालीस-पचास वर्ष बाद १९२९ में अहिंसात्मक आन्दोलन आरम्भ हुआ था। हिंसात्मक आन्दोलन को अंग्रेज़ों ने हिंसा के द्वारा बहुत शीघ्र दबा दिया था लेकिन अहिंसा पर आश्रित आन्दोलन को अनिर्वचनीय अत्याचारों व ध्वंसकारी दमन के बावजूद वे नहीं दबा सके। हिंसात्मक आन्दोलन ने लोगों में भय और कायरता उत्पन्न कर दी थी तथा लोगों को साहसहीन तथा नैतिक दृष्टि से दुर्बल बना दिया था। लेकिन अहिंसात्मक आन्दोलन ने पठानों के दिलों में भय और आशंका का उन्मूलन कर दिया और उनमें शौर्य पैदा कर दिया। इस आन्दोलन ने लोगों का चरित्र ऊंचा उठा दिया और उनमें साहस पैदा कर दिया। हिंसाश्रित आन्दोलन ने लोगों के दिलों में आन्दोलन से घृणा पैदा कर दी और अहिंसात्मक आन्दोलन ने लोगों में आपस का प्रेम-प्यार उत्पन्न कर दिया। पठानों में जातीयता और भाई-चारे का एक नया जीवन भर दिया तथा उनके काव्य, उनके साहित्य,

उनकी सभ्यता और सामाजिक प्रवृत्तियों में एक महान क्रान्ति पैदा कर दी। सत्य तो यह है कि हिंसा घृणा है और अहिंसा प्रेम है। इस घृणा का कारण यह था कि एक व्यक्ति किसी अंग्रेज को मार डाला करता था, परन्तु उस हत्या का दण्ड अंग्रेज़ केवल उसी व्यक्ति (हत्यारे) को नहीं देते थे, अपितु उससे सम्बद्ध पूरे गांव और सारे इलाक़े को सामूहिक जुर्माने और क़ैद का दण्ड दिया करते थे। लोगों की दृष्टि में इस समस्त अत्याचार और जुल्म का कारण वह व्यक्ति और उसका हिंसात्मक आन्दोलन था, इसलिए लोग यह समझते थे कि उनकी ये सब विपत्तियां उस व्यक्ति और उसके आन्दोलन के कारण से हैं। लेकिन हमारे अहिंसाश्रित आन्दोलन में तो प्रत्येक व्यक्ति विपत्तियों का स्वागत करता था। इससे जाति को कोई हानि नहीं पहुंचती थी, लाभ अवश्य होता था। यही कारण था कि लोगों में इस आन्दोलन के प्रति सहानुभूति और अनुराग पैदा हो गया था। अस्तु, हिंसात्मक आन्दोलन अपने उद्देश्य में असफल हो गया और यह अहिंसात्मक आन्दोलन अपने उद्देश्य में सफल होता गया। इस देश को स्वतन्त्र करा लिया और अंग्रेज़ों को अपने देश से निकाल बाहर किया।

ख़ुदाई खिदमतगार आन्दोलन केवल राजनीतिक आन्दोलन नहीं है। यह आन्दोलन पठानों का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक आन्दोलन है। इस आन्दोलन के कारण पठानों में प्रेम-प्यार, मुहब्बत, भाईचारा, एकता और जाति-भक्ति की भावना पैदा हुई है। इस आन्दोलन ने पठान जाति को दूसरा लाभ यह पहुंचाया है कि चूंकि पश्तूनों की समस्त हिंसावृत्ति अपने भाइयों के विरुद्ध थी और हिंसा के हाथों उनका घर बरबाद था, अहिंसावृत्ति ने उन्हें आबाद और सुखी बना दिया। अंग्रेज़ कहा करते थे—"Non-violent Pathan is More dangerous than violent Pathan" (अर्थात् अहिंसाव्रती पठान हिंसाव्रती पठान से अधिक खतरनाक है।)

यही कारण था कि १९३२ में अंग्रेज़ों ने हमपर बेहद जुल्म ढाए। अत्याचार, अन्याय, दमन और दानवता और क़ैद फांसी तथा अन्य अनेक लज्जास्पद हथकण्डों का शिकार हमें बनाया, ताकि पठान लोग हिंसा पर उतर आएं, लेकिन अंग्रेज़ों को अपने इस नीच उद्देश्य में सफलता प्राप्त न हुई। इन अत्याचारों और दमन-काण्डों के कुछ उदाहरणों का वर्णन कर देना अनुचित नहीं होगा।

अंग्रेज़ों ने पठानों की तलवारें छीन लीं। पठानों को नंगा किया। चार सद्दा की पिकेटिंग में उन्होंने ख़ुदाई खिदमतगारों के समस्त वस्त्र

उतार लिए और उनके आण्डकोशों में फंदे डाले गए। फंदों और रस्सियों के द्वारा ख़ुदाई ख़िदमतगारों के अण्डकोशों को खींचा जाता था। जब वे बेहोश हो जाते थे, तो उन्हें मलमूत्र से भरे हुए मांद या चौबच्चे में फेंक देते और उसमें उन्हें डुबकियां लगवाते थे।

यह तो मैंने उदाहरणार्थ आपके सामने केवल चार सद्दा की एक घटना का वर्णन किया है। इस प्रकार के अत्यन्त लज्जाजनक और अवर्णनीय अत्याचार हमारे प्रान्त में अंग्रेजों ने किए। कोहाट में हमारे ख़ुदाई ख़िदमतगारों को सरकारी व्यक्ति पकड़ लेते थे और उन्हें पौष-माघ के महीनों में हड्डियों को कड़कड़ा देनेवाली सर्दी में ठंडे पानी के भीतर डुबकियां देते थे। गोलियों से ख़ुदाई खिदमतगारों को उड़ा देना तो सरकार का एक मनोरंजक कार्य बन गया था। ख़ुदाई ख़िदमतगार आन्दोलन की लोकप्रियता की यह दशा थी कि केवल हरिपुर के एक ही जेलख़ाने में दस-बारह हज़ार ख़ुदाई ख़िदमतगार बन्दी थे और भीषण सर्दी के दिनों में इन क़ैदियों को केवल एक-एक कम्बल ओढ़ने को और एक-एक चपाती खाने को दी जाती थी। वह भी किसीको मिलती थी और किसीको नहीं मिलती थी। बहुत प्रतिष्ठित और शिक्षित क़ैदियों को बैदों (कोड़ों) से पीटा गया। उनसे चक्कियां पिसावई गईं और घानियों में जोता गया और उन्हें एकान्त कारागृह में बन्द किया गया। सारांश यह कि ऐसा कोई ज़ुल्म नहीं था, जो उन ग़रीबों पर न किया गया हो।

२४ दिसम्बर, १९३१ को मैं डाक्टर खान साहब के बंगले में था। बहुत अधिक काम करने के कारण मैं बीमार हो गया था। आधी रात का समय था कि पुलिस ने आकर मुझे गिरफ़्तार कर लिया और मेरे साथ डाक्टर साहब को भी पकड़ लिया गया। हमें मोटर में बिठाकर अटक के पुल पर पहुंचा दिया गया। थोड़ी देर के पश्चात् क़ाज़ी अताउल्लाह और सअदुल्ला को भी गिरफ़्तार करके वहां लाया गया। सअदुल्ला, डाक्टर खान साहब का बड़ा सुपुत्र था और इंजीनियर था। वह अभी-अभी इंग्लैण्ड से आया था। वहां एक स्पेशल गाड़ी खड़ी थी। हम सबको उसमें बिठा दिया गया। गाड़ी रवाना हुई। हमारे साथ एक सरदार खैल काबुली इन्स्पेक्टर पुलिस था। वह क़ाज़ी साहब का भी जानकार था। इन्स्पेक्टर ने बताया कि उसे डाक्टर साहब ने मौत के मुंह से बचाया था। दूसरा हमारे साथ एक पंजाबी इन्स्पेक्टर था।

मेरा तो सदा यह नियम रहा है कि जब मैं गिरफ़्तार कर लिया जाता हूं और जो पुलिस मेरे साथ होती है, मैं उनसे कोई बात नहीं

पूछता। और न ही उनसे कुछ मांगता हूं। क़ाज़ी साहब ने उस पश्तून अफ़सर से अख़बार मांग लिया, लेकिन वह उन्हें डर के मारे कैसे देता। पंजाबी इन्स्पेक्टर का यह काम था कि जब कभी हम डिब्बे की खिड़की खोल देते थे, तो वह उसे तुरन्त बन्द कर देता था, ताकि हमें कोई देख न ले। आखिर मैंने उससे कहा कि अरे लड़के! हम औरतें तो नहीं हैं कि तुम खिड़कियां बन्द करते हो और तुम्हारी वह चेष्टा होती है कि हमें कोई देख न ले। लेकिन वह बड़ा बेशर्म था। जब हमारा डिब्बा यू० पी० में पहुंच गया तो यहां सीमा प्रान्त की पुलिस से हमारा चार्ज लेने के लिए एक अंग्रेज़ अधिकारी एक गोरे सार्जेण्ट के साथ आया हुआ था। वह अंग्रेज़ मेरे पास आया। उसने मेरे डिब्बे का द्वार खोल दिया और मुझसे कहा, "आओ, बाहर आकर स्टेशन पर अपने पांव आज़ाद करने के लिए टहलो।"

अब इस अंग्रेज़ और उन मुसलमान अफ़सरों के बर्ताव में अन्तर का अन्दाज़ा कीजिए, जबकि अंग्रेज़ों से हमारी लड़ाई थी। हम उनसे राज्य ले रहे थे और वह राज्य या हकूमत इन्हीं अपने भाइयों के लिए हासिल करना चाहते थे। मैं डिब्बे में बैठा हुआ था कि इस बीच वही अंग्रेज़ आया। उसके हाथ में गिलास था और उसमें शराब थी। उसने बड़े प्रेम-प्रीति से मुझे भेंट की और कहा कि 'इसे पी लो'। मैंने उत्तर दिया कि मैं शराब नहीं पीता। यह बात सुनकर वह बहुत चकित हुआ। मैं उसकी यह शिष्टता और प्रेमभाव कभी नहीं भुला सका।

जब हम इलाहाबाद पहुंचे, तो वहां डाक्टर खान साहब को उतार लिया गया और उन्हें नैनी जेल में भेज दिया गया। गाड़ी थोड़ी और आगे बढ़ी तो सअदुल्लाह खां को हमसे अलग कर लिया गया और उसे बनारस जेल में पहुंचा दिया गया। फिर बिहार प्रान्त का इलाक़ा आ गया। बिहार में क़ाज़ी अताउल्लाह को हमसे अलग कर लिया गया। उन्हें गया जेल में ले जाया गया। मुझे हज़ारी बाग़ के जेलखाने में ले जाया गया। हज़ारी बाग़ जेल रेलवे स्टेशन से चालीस मील दूर है। मुझे मोटर में बिठाया गया तो मेरे साथ पेशावर का सरदार खैल इन्स्पेक्टर और दो अंग्रेज़ अधिकारी भी बैठ गए। एक डिप्टी कमिश्नर था और दूसरा सुपरिंटेण्डेण्ट पुलिस था। हमारे बैठते ही उन्होंने मुझे अंग्रेज़ी का समाचारपत्र पढ़ने को दे दिया। वही समाचारपत्र, जो हमारा सरदार खैल इन्स्पेक्टर अपने दोस्त और उपकारकर्ता को, जिसने उसीके अपने कथनानुसार, उसे मृत्यु के मुंह से बचाया था, नहीं देता था।

जब मैं जेलखाने में दाखिल हुआ, तो जेलखाने के एक अधिकारी

ने, जो हिन्दू था, मेरे पास आकर मुझसे पूछा, "यह पुलिस अधिकारी (सरदार खैल) कौन है, और किस जगह का रहनेवाला है ?"

मैंने उनसे पूछा, "यह आप क्यों पूछना चाहते हैं।"

उन्होंने मुझे बताया, "वह एक बहुत नीच आदमी है। मुझसे कहता था कि इस आदमी का खूब ख़याल रखना। यह बहुत ही ख़तरनाक आदमी है।"

मुझे एक बैरक में अकेला बन्द कर दिया गया। बड़े साहब तथा छोटे साहब को छोड़कर अन्य किसीको मेरे पास आने या मुझसे मिलने की आज्ञा नहीं थी। मैं शाही क़ैदी था। कलेक्टर हर महीने मेरे पास आता था। मैं एकान्त में सदा बीमार पड़ जाता हूं। यहां भी धीरे-धीरे मेरा स्वास्थ्य गिरने लगा। वह कलेक्टर बड़ा अच्छा आदमी था। उसने सरकार को लिखा कि गया में मेरा जो साथी है, उसे मेरे पास भेज दिया जाए। क़ाज़ी साहब गया में थे। वे भी एकान्त कारावास में थे। मुझे तो फिर भी थोड़ी-बहुत नींद आ जाती थी, लेकिन बेचारे क़ाज़ी साहब को तो बिल्कुल ही नींद नहीं आती थी। मेरी तरह वे भी सरकार की आंखों में कांटे की भांति खटकते थे। कलेक्टर की इस सिफ़ारिश का सरकार ने विरोध किया और उनके स्थान पर सरकार ने मेरे पास डाक्टर खान साहब को भेज दिया। डाक्टर साहब आए तो उन्होंने देखा कि मुझे निरन्तर इसी बैरक में बन्द रखा जाता है, जबकि वे नैनी जेल में बाहर निकलकर चल-फिर लेते थे।

हज़ारी बाग जेल का सुपरिंटेण्डेण्ट एक पंजाबी था, वह डाक्टर ख़ान साहब के साथ यूरोप के युद्ध में कहीं एक ही जगह रहा था। किन्तु वह बड़ा क़ायर था। डाक्टर साहब जब कभी बाहर निकलकर टहलने की बात करते, तो वह कहा करता, "भई, मैं मारा जाऊंगा।"

लेकिन डाक्टर साहब इस बात पर अड़े हुए थे। अन्त में उसने हमें जंगले से बाहर निकलकर टहलने की अनुमति दे दी। इसके पश्चात् जब हमें मालूम हुआ कि इस जेलख़ाने में तो श्री राजेन्द्रप्रसाद, आचार्य कृपलानी तथा बिहार के अन्य बहुत-से बन्दी हैं, तो हम कभी-कभी उनसे मिलने लगे।

बिहार के लोग बहुत अच्छे और शरीफ़ इन्सान हैं। जब हमें अनुमति मिल गई, तो हम कभी-कभार जेलख़ाने में घूम-फिर लेते थे, और उन दूसरे क़ैदियों से भी मिल लिया करते थे। इस प्रकार हमारे उनसे अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो गए। हमारे जेलख़ाने का अधिकारी, जिसे छोटा साहब कहा जाता था, बहुत अच्छा व्यक्ति था और देशभक्तों से

बहुत सहानुभूति रखता था। उससे हमने यह समझौता कर लिया कि जो राजनीतिक क़ैदी कल रिहा होगा, उसे आज (अर्थात् रिहाई से एक दिन पहले) शाम को हमारे पास भेज दिया करेगा। अस्तु जो भी राजनीतिक क़ैदी मुक्त होता था, उसे हम चाय-पार्टी दिया करते थे। बिहार के लोग वैसे तो स्वभाव के बहुत अच्छे हैं, परन्तु उनमें छूत-छात बहुत अधिक है। लेकिन एकसाथ रहने के कारण उनकी छूत-छात की प्रवृत्ति में बहुत कमी आ गई थी। इस बारे में उनका बहुत सुधार हो गया था। एक दिन एक व्यक्ति को चाय-पार्टी पर हमने अतिथि बनाया। जब चाय आ गई, तो चाय के साथ पकौड़े और तले हुए बेगुन भी थे। मैं अतिथि के लिए प्याली में चाय डालता था और प्याली उसके हाथ में दे देता था, फिर पकौड़े उठाता था और उसे दे देता था। डाक्टर साहब बेगुन उठाकर देते थे। वह चाय पीता था और पकौड़े खाता था। जब चाय समाप्त हो गई, तो वह हंसने लगा। मैंने उससे पूछा कि यह हंसी उसे किस बात पर आई।

उसने उत्तर दिया, "हममें इतनी छूत-छात थी कि एक दिन एक मुसलमान डाकिया आया था। उसने मुझे मेरा एक पोस्टकार्ड दिया था। डाकिये से पोस्टकार्ड लेते समय मैंने उस कार्ड को अपनी अंगुलियों में एक कोने से पकड़ा। दूसरा कोना डाकिये के हाथ में था। इस अवसर पर मेरा भाई पास ही खड़ा था। उसने मुझपर पानी डालकर कहा, "तू भ्रष्ट हो गया है।"

बिहार के नेताओं से मुझे बहुत प्रेम था। मैं उनका वह प्रेम दिल से नहीं निकाल सकूंगा। बिहार के पुरुष और महिलाएं—दोनों बहुत बहादुर हैं और उन्होंने देश के स्वाधीनता-संग्राम में बहुत बलिदान किए हैं। पुरुषों की बात तो छोड़िए, मैं एक महिला की कहानी सुनाता हूं। वह महिला हमारे साथ जेलखाने में क़ैद थी। एक दिन छोटा साहब आया और उसने मुझे उस महिला की कहानी सुनाई।

छोटे साहब ने कहा, "आज इस जेलखाने में एक महिला का पति, जो वकील है, उससे भेंट करने को आया। उसके साथ पांच बच्चे भी थे। भेंट के दौरान उसने अपनी पत्नी से बड़ी मिन्नत-समाजत की कि ये जो दो छोटे बच्चे हैं, उन्हें वह ले ले और अन्य तीन बच्चे उसके पास रहेंगे। महिला ने पति को उत्तर दिया, 'सब बच्चे तुम्हीं रखोगे, मैं तो इन्हें अपने पास ही रखना चाहती थी, तुम्हींने मेरी बात नहीं मानी थी। अब मैं इन्हें नहीं रखूंगी।'"

छोटे साहब ने कहा, "मैंने उस महिला से पूछा कि इन बच्चों को

तुम क्यों नहीं रखतीं ?

"उसने उत्तर दिया, 'जब कांग्रेस ने जंग का बिगुल बजाया था, तो मैंने अपने पति से कहा था कि देश और जाति की जंग है, लोग जा रहे हैं। तुम भी चले जाओ। लेकिन इसने यह कहकर इन्कार कर दिया था कि इसने एक-दो मुक़द्दमे अदालत में दायर कर रखे हैं। कुछ दिनों के पश्चात् मैंने इससे पूछा कि क्या वे मुक़द्दमे खत्म हो गए हैं ? या अभी बाक़ी हैं ? इसने उत्तर दिया था कि नहीं, थोड़े-से रह गए हैं। कुछ दिन के बाद फिर मैंने पूछा, तो इसने मुझे कुछ गोलमोल-सा उत्तर दिया। तब मैं समझ गई कि यह जेल जाने के लिए तैयार नहीं है। तो मैं स्वयं पिकेटिंग पर जा खड़ी हुई। फिर क्या था, मुझे गिरफ़्तार करके जेल में डाल दिया गया।' "

इस जेलखाने में श्री राजेन्द्रप्रसाद और उनकी बहन भी क़ैद थीं। इस प्रकार बहुत-सी महिलाएं और पुरुष इस जेलखाने में हमारे साथ बन्दी थे। जिस जाति की महिलाएं और पुरुष अपने देश की स्वाधीनता के लिए कमर कस लेते हैं, वही जाति अपने लक्ष्य तक पहुंचने में सफल होती है। यही कारण था कि अंग्रेज़ यहां से चले जाने के लिए विवश हो गए और उन्होंने हमारा देश हमारे हवाले कर दिया।

तीन वर्ष के पश्चात् जब हज़ारी बाग़ जेल से हम रिहा हुए, तो हम एक महिला के यहां अतिथि बने। जब मैं शाही क़ैदी था, मेरे बच्चों को भत्ता (अलाउंस) नहीं दिया जाता था, जबकि डाक्टर खान साहब और क़ाजी साहब के बच्चों को और उनके घर के दूसरे व्यक्तियों को भत्ता दिया जाता था। सअदुल्लाह की माता को भी भत्ता मिलता था, लेकिन मेरे बच्चों को नहीं दिया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि ग़नी पैसों के अभाव के कारण अमरीका से वापस आ गया और अपनी शिक्षा को सम्पन्न न कर सका। मेरी अपनी सम्पत्ति भी अधिक नहीं थी, क्योंकि हम तो सब क़ैद हो गए थे। और सरकार के संकेत पर हमारे कृषिकर्ताओं अथवा कृषि-श्रमिकों ने हमारी सम्पत्ति नष्ट-भ्रष्ट कर दी थी। लगभग तीन वर्ष के पश्चात् हमें रिहा किया गया, लेकिन सीमा प्रान्त और पंजाब में हमारा प्रवेश बन्द कर दिया। हमें कहा गया कि हम लोग भारत-भर में घूम-फिर सकते हैं, लेकिन पंजाब और सीमा प्रान्त में हमारा प्रवेश निषिद्ध है।

बिहार में हमारे बहुत-से राजनीतिक क़ैदी मित्र बन गए थे। हम हज़ारी बाग़ से पटना चले गए। राजेन्द्रप्रसाद और अन्य मित्रों से मिलने के बाद हम वर्धा चले गए। वर्धा में महात्मा गांधी थे। उन्होंने और सेठ

जमनालाल बजाज़ दोनों ने हमें वहां आने और रहने का निमन्त्रण दिया था। १६३६ में बम्बई आल इण्डिया कांग्रेस का अधिवेशन था। हमारे वर्धा पहुंचने की सूचना, जब सारे कांग्रेसी क्षेत्र में पहुंच गई, तो स्वागत-समिति ने फ़ैसला किया कि बाचाख़ान अर्थात् मुझे अध्यक्ष पद के लिए निर्वाचित कर लिया जाए और राजेन्द्रप्रसाद ने मुझे तार भी दे दिया कि मुझे अध्यक्ष पद के लिए निर्वाचित कर लिया गया है और वे त्याग-पत्र देते हैं और मुझे अपने स्थान पर अध्यक्ष नियुक्त करते हैं। लेकिन मैंने यह बात स्वीकार नहीं की। तार के द्वारा उन्हें सूचना दे दी कि मैं एक सिपाही हूं, ख़ुदाई ख़िदमतगार हूं। मैं ख़ुदाई ख़िदमतगारी करूंगा।

कुछ दिनों के पश्चात् हम वर्धा से कलकत्ता चले गए। वहां के कार्पोरेशन ने हमें अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। मेरा यह ख़्याल था कि इस प्रान्त में मुसलमानों की जनसंख्या अधिक है और राजनीतिक क्षेत्र में पिछड़े हुए हैं। अतः मैं उनकी सेवा करूंगा। मैंने कलकत्ता में विभिन्न स्थानों पर भाषण किए और मुसलमानों पर यह बात व्यक्त की कि मैं उनकी सेवा के लिए आया हूं। मैं गांवों में काम करना चाहता हूं, क्योंकि विपत्ति गांवों में हुआ करती है और विपदग्रस्त लोग गांवों में बसते हैं। कलकत्ता में मुसलमानों की एक सभा थी। सुहरावरदी भी इस सभा के सदस्य थे। और उन्हींके ऐसे अन्य मुसलमान भी उस सभा के सदस्य थे। उन लोगों ने मेरी सहायता तो क्या, उलटी सिरतोड़ कोशिश की कि मैं गांवों में न जा सकूं, क्योंकि इससे उनकी लीडरी में अन्तर पड़ता था। जब मैं इन मुसलमानों से निराश हो गया, तो प्रोफ़ेसर प्रफुल्ल घोष ने, जो मेरे मित्र थे और कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य थे, मुझसे कहा कि वे मेरे साथ गांवों में जाएंगे, ये मुसलमान तो मुर्दा हैं। मुझे बंगाल के किसी व्यक्ति की इसलिए आवश्यकता थी कि देहात के लोग बंगाली भाषा को छोड़कर अन्य कोई भाषा नहीं समझ पाते थे और मैं बंगाली नहीं जानता था।

प्रफुल्ल घोष और मैं गांवों के भ्रमण के लिए चल पड़े। हम जिस भी गांव में जाते, वहां मैं अपनी रीति से काम आरम्भ करता। मैं लोगों से मिलता। उनसे बातचीत करता। उन्हें मैं यह समझाता कि भारत सोने का देश था। प्रत्येक घर में दूध और घी की इफ़रात थी। चावल ख़ूब मिलता था। अब यह क्या हो गया है कि हमारे बच्चे भूखे-प्यासे नंगे, दुर्दशाग्रस्त और अपमानित व लांछित हैं। वे ग़रीब मेरी बातें बड़े ध्यान और मनोयोग से सुनते थे। अन्त में हम उन्हें यह कहा करते थे कि जब तक यह देश आज़ाद नहीं होता और इस देश की बागडोर उनके

हाथ में नहीं आती, तबतक वे और उनके बच्चे पेट भरकर कभी नहीं खा सकेंगे।

इस प्रकार जब कुछ दिन लोगों में घूम-फिर चुके, तो हमने एक स्थान पर जलसा करना निश्चित कर लिया। हमारे इस पहले जलसे में पचास-साठ व्यक्ति उपस्थित हुए। कुछ दिनों के पश्चात् हमने दूसरा जलसा किया, तो उसमें दो सौ लोग एकत्र हुए। इसी प्रकार क्रमशः प्रत्येक जलसे में श्रोताओं की संख्या बढ़ती जाती थी। इस अवधि में बम्बई कांग्रेस का समय निकट आ गया, और हम बम्बई चले गए। जाने से पहले मैंने प्रफुल्ल बाबू से कह दिया कि ये लोग मुर्दा नहीं हैं। परन्तु इन्हें ज़िन्दा करनेवाला कोई नहीं है।

बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन में वहां की क्रिश्चियन सोसायटी के कुछ व्यक्ति मेरे पास कांग्रेस पण्डाल में आए और मुझे निमन्त्रण दिया। मैं उनकी सोसायटी में गया। उन्होंने मुझसे खुदाई खिदमतगारी के विषय में पूछा। मैंने उन्हें ख़ुदाई ख़िदमतगारी के सम्बन्ध में पूरी जानकारी दी और हमारे साथ जो कुछ बीता था अथवा अत्याचार हुए थे, मैंने उन्हें सुना दिया। मुझे उस समय तक यह मालूम नहीं था कि सच बोलना भी अंगेज़ों के कानून में अपराध है। जब कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त हो गया तो हम वापस वर्धा चले आए और बंगाल जाने का कार्यक्रम बना लिया तथा यह भी निश्चय कर लिया कि वहां मैं उतने दिन तक काम करता रहूंगा, जबतक मुझे अपने प्रान्त में वापस जाने की अनुमति नहीं मिल जाती।

मेरे इस इरादे का पता जब सरकार को लग गया, तो उसके मन में छन्नाका बीता कि बंगाल के हिन्दू तो पहले ही से जागरित हैं और यदि ये मुसलमान भी जाग पड़े तो फिर वह उनकी चोरी नहीं कर सकेगी और फिर उसकी अपनी खैर नहीं होगी। फिर क्या था, पुलिस आ गई। मझे गिरफ़्तार कर लिया गया। मैंने बम्बई में जो भाषण किया था, उसके बदले में मुझे दो वर्ष कड़े कारावास का दण्ड दिया गया। पहले मुझे बम्बई जेल में बन्द किया गया, फिर वहां से साबरमती जेल भेज दिया गया। इस जगह का एक अंग्रेज़ सुपरिंटेण्डेण्ट बड़ी कठोर प्रकृति का था। मुझे उसने एक वार्ड में अकेले बन्द कर दिया। इस वार्ड में नम्बरदार को भी अन्दर आने की आज्ञा नहीं थी। वह वार्ड का दरवाज़ा बाहर से ताला लगाकर बन्द रखता था और बाहर ही बैठा रहता था। इस स्थान की खुराक और हमारी खुराक में बहुत अन्तर था। मुझे 'बी' क्लास दी गई थी, लेकिन इस प्रान्त की बी क्लास और हमारे यहां

की सी क्लास में कोई अन्तर नहीं था। यहां बी क्लास के लिए चार-पाई नहीं थी। मैं फर्श पर सोया करता था। मेरे साथ कोई बात करने-वाला नहीं होता था। यहां बहुत बन्दर थे। मैं इन्हीं बन्दरों से खेला करता था। अन्त में मैं बहुत सख्त बीमार पड़ गया, मुझे इन्फ्लूएंज़ा हो गया। लेकिन इतनी सख्त बीमारी के बावजूद मुझे अस्पताल नहीं ले जाया गया। यहां तक कि वार्ड में भी मुझे चारपाई नहीं दी गई। मैं सिमेंट के फर्श पर पड़ा रहता था, लेकिन खुदा ने अपनी कृपा से मुझे स्वस्थ कर दिया।

कुछ समय के बाद सोफ़िया मेरी भेंट के लिए आई। इसके पश्चात् गांधीजी भी पधारे और उनके प्रयत्न से कुछ समय के बाद मुझे 'ए' क्लास दे दी गई। मेरा खाना बनानेवाला कोई नहीं था। इस दौरान जेलख़ानों का जरनैल दौरे पर आ गया और जब वह मेरे पास पहुंचा, तो मैंने उसके सामने दो मांगें रखीं। एक यह कि बम्बई में मेरा एक बाव-रची था, यहां मेरा बावरची नहीं था, इसलिए मुझे वह बावरची मंगवा दिया जाए, और दूसरी यह कि इस स्थान का जलवायु मेरे अनुकूल नहीं है, अस्तु मुझे किसी दूसरी जगह भेज दिया जाए। जरनैल बहुत भला व्यक्ति था। सीमा प्रान्त में रह चुका था। उसने मुझे कहा कि वह मुझे पंजाब की किसी जेल में भेज देता है और मेरे लिए पेशावर से पश्तून बावरची मंगवा देता है। मैंने उससे बहुत कहा कि पंजाब मुझे लेने के लिए तैयार नहीं है और मैं वही बम्बईवाला अपना बावरची चाहता हूं, पेशावरी बावरची नहीं चाहिए। उसका विचार तो नेक था। क्योंकि वह समझता था कि यदि मुझे पंजाब भेज दिया जाएगा, तो मैं घर के निकट हो जाऊंगा और जब मेरे लिए पठान बावरची आ जाएगा, तो उसे मुझसे सहानुभूति होगी। और वह मेरी सेवा बड़ी अच्छी तरह से करेगा। उसने प्रयत्न किया, लेकिन पंजाब ने मुझे लेने से इन्कार कर दिया और पेशावर के जेलवालों ने एक ऐसा व्यक्ति भेज दिया जो खाना पकाना तो जानता नहीं था, उल्टे टी० बी० का रोगी था। उसको भेजने से उनका अभिप्राय यह था कि वह मेरे साथ रहेगा तो मुझे भी टी० बी० हो जाएगी।

मुझे अहमदाबाद की साबरमती जेल से डिस्ट्रिक्ट जेल बरेली में भेज दिया गया। बरेली में सेण्ट्रल जेल भी थी और उसमें राजनीतिक क़ैदी भी थे। यदि वहां मुझे भेज दिया होता तो मुझे आराम मिलता। लेकिन वे तो मुझे कष्ट देना चाहते थे। इस प्रकार मेरे कारावास का दौर चलता रहा।

एक दिन ऐसा आया कि डाक्टर खान साहब केन्द्रीय विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हो गए। तब मुझे सीमा प्रान्त जाने की अनुमति मिल गई। डाक्टर खान साहब और उनकी पत्नी मुझे मिलने के लिए बरेली आए थे। उस जगह के जेलखाने के जरनैल साहब अच्छे व्यक्ति थे। कर्नल सलामतुल्लाह खां उनका नाम था। जब वे दौरा करते हुए जेलखाने में आए तो मैंने उनके सामने बावरची से छुटकारा दिलाने की मांग रखी। मैंने उन्हें बताया कि मेरा बावरची वास्तव में बावरची नहीं है, टी० बी० का रोगी है। इसे मेरे लिए इस उद्देश्य से भेजा गया है कि मुझे भी यही रोग लग जाए। मुझे बावरची मत दीजिए, लेकिन मुझे इस बावरची से मुक्ति दिलाइए। इसे भी कष्ट है और मुझे भी कष्ट है। जरनैल साहब ने कृपा की और बावरची को वहां से विदा किया। इस प्रकार मुझे इस बावरची से छुटकारा मिल गया।

यहां मुझसे भेंट करने के लिए रफ़ी अहमद क़िदवाई साहब भी आए थे। जेलखानों के मन्त्री महोदय पधारे थे। उस समय गर्मी आरंभ हो गई थी। उन्होंने लिखा कि मुझे किसी ठण्डे स्थान पर भेज दिया जाए। लेकिन सरकार ने जब तक गर्मी रही मुझे ठण्डी जगह न भेजा और जब बरसात आरंभ हो गई और लोग पहाड़ों से मैदानों की ओर आ रहे थे, तब मुझे अलमोड़ा भेज दिया गया। वहां दो-दो तीन-तीन दिन तक निरन्तर वर्षा जारी रहती थी और मैं बैरक से बाहर नहीं निकल सकता था। अख़िर मेरी क़ैद की अवधि समाप्त हो गई और रिहाई के समय मुझे फिर यह नोटिस मिल गया कि मैं पंजाब और सीमा प्रान्त में नहीं जा सकता। अतः मैं १९३६ में फिर वापस वर्धा आ गया। जब हमारे प्रान्त में प्रान्तीय असेम्बली के चुनाव समाप्त हो गए, तो अगस्त, १९३७ में मैं अपने प्रान्त में चला गया।

१९

१९३७ में सीमा प्रान्त की विधानसभा के चुनाव हो गए। उसमें बहुसंख्यक दल खुदाई खिदमतगारों का था। किन्तु गर्वनर ने मंत्रिमण्डल बनाने का निमन्त्रण सर नवाब साहबज़ादा अब्दुल क़यूम को दिया, जिसे उसके अपने क्षेत्र में खुदाई ख़िदमतगारों के हाथों पराजित होना पड़ा था। उसे ज़िला हज़ारा के ऐसे क्षेत्र से सफलता प्राप्त हुई थी, जहां खुदाई खिद-मतगार आन्दोलन का प्रभुत्व नहीं था। सरकार की सहायता से हिन्दू, सिख और स्वतन्त्र सदस्यों का सहयोग उसे मिल गया और उसने अपना

मंत्रिमण्डल बना लिया। लेकिन वह मंत्रिमण्डल अधिक समय तक चल न सका। पांच-छः मास बाद उसकी हार हो गई। ३ दिसम्बर, १९३७ के दिन जब साहबज़ादा साहब के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव स्वीकृत हो गया, तो डाक्टर ख़ान साहब ने खुदाई ख़िदमतगार सदस्यों के सहयोग से मंत्रिमण्डल बनाया। इस मंत्रिमण्डल में क़ाज़ी अताउल्लाह साहब शिक्षा मंत्री थे। क़ाज़ी साहब ने प्राथमिक स्कूलों में 'पश्तू' में शिक्षा जारी करने के अतिरिक्त इस भाषा को अनिवार्य कर दिया। इस मंत्रिमण्डल ने लोगों की भलाई के लिए और भी थोड़े-बहुत काम किए।

लेकिन इस मंत्रिमण्डल ने एक माने में हमारे आंदोलन को लाभ के स्थान पर हानि पहुंचाई क्योंकि वास्तव में क्षमता और सर्वाधिकार गर्वनर के हाथों में थे और अधीनस्थ अधिकारी न तो मंत्रियों का आदेश मानते थे और न मंत्रियों से सहयोग करते थे। वे गर्वनर के संकेत की ओर देखते थे। दूसरी बात यह थी कि हमने तो केवल आठ आने अधिकार प्राप्त किए थे और जाति हमसे मांगती थीं पूरा रुपया-भर अधिकार। लेकिन हमारे पास पूरे अधिकार कहां थे। इसके अतिरिक्त आंदोलन में सिण्डीकेट की एक नई बला आ टपकी थी और वह यह थी कि हमारे कार्यकर्ता ईमानदारी और सचाई से कण्ट्रोल की चीज़ों का वितरण न कर सके।

१९३९ में युद्ध आरंभ हो गया और भारत के समस्त प्रान्तों के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के साथ हमारे मंत्रिमण्डल ने भी त्यागपत्र दे दिया।

जिस समय जापान भी युद्ध में कूद पड़ा था, उस समय सूरत में (पूना होना चाहिए—अनु०) कांग्रेस कार्यकारिणी समिति का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि 'हम युद्ध में अंग्रेजों की सहायता करने को तैयार हैं। लेकिन इस शर्त पर कि यदि अंग्रेज़ युद्ध के बाद हमें स्वाधीनता देने की घोषणा कर दें।' इस अवसर पर मैंने और महात्मा गांधी ने कांग्रेस कार्यकारिणी समिति से त्यागपत्र दे दिए, क्योंकि हम हिंसा में विश्वास नहीं रखते थे और युद्ध में अंग्रेज़ों की सहायता करने का अर्थ हिंसा को बढ़ावा देना था।

इस अधिवेशन के पश्चात् देश में व्यक्तिगत सत्याग्रह आरंभ हो गया, लेकिन महात्मा गांधी की स्वीकृति के बिना किसीको सत्याग्रह करने की आज्ञा नहीं थी। सीमा प्रान्त के लिए गांधीजी ने अपने यह अधिकार मुझे हस्तान्तरित कर दिए थे। सीमा प्रान्त में सरकार सत्याग्रहियों को गिरफ़्तार नहीं करती थी। चूंकि अंग्रेज़ इस युद्ध को बार-बार 'स्वाधीनता और लोकतन्त्र का युद्ध' नाम देते थे, लेकिन भारत को

स्वतन्त्रता देने का नाम नहीं लेते थे, इसलिए कांग्रेस ने विवश होकर विदेशी अंग्रेज़-शासन के विरुद्ध एक सामूहिक आन्दोलन आरंभ कर दिया। यही कारण था कि कांग्रेस ने ८ अगस्त, १९४२ के दिन बम्बई में अंग्रेज़ों के विरुद्ध 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस प्रस्ताव के अनुसार अंग्रेज़ों से सारे भारत और सीमा प्रान्त में यह मांग की जाती थी कि वे भारत छोड़कर चले जाएं। जहां व्यक्तिगत सत्याग्रह के दौरान सत्याग्रही देश और जाति से कहते थे कि 'अंग्रेज़ों को वर्तमान युद्ध में आर्थिक और जन-शक्ति की सहायता देना पाप है—अर्थात् चन्दा देना और सेना में भरती होना गुनाह है।' वहां सामूहिक आंदोलन में अंग्रेज़ों के विरुद्ध 'भारत छोड़ दो' नारा लगाया जाता था। साथ ही अंग्रेज़ सरकार के क़ानून का उल्लंघन करके हज़ारों लोग गिरफ़्तार होते थे। उन्हीं दिनों हमने सरदारयाब के किनारे ख़ुदाई खिदमतगारों का एक केन्द्र स्थापित किया, जिसका नाम 'मर्क़िज़ि-आ'ला-ख़ुदाई खिदमतगार' (ख़ुदाई खिदमतगारों का प्रधान केन्द्र) था, भारत में अवज्ञा-आंदोलन आरंभ हो गया था, परन्तु सीमा प्रान्त में अभी आरंभ नहीं हुआ था।

जिस समय हमने आज्ञा-भंग-आंदोलन करने का निश्चय किया, तो हमारे जिरगे ने समस्त अधिकार मुझे दे दिए और मैं ही आज्ञा-भंग-आंदोलन चलाने के लिए 'डिक्टेटर' (अधिनायक) नियुक्त कर दिया गया। वास्तव में मैं डिक्टेटर शब्द ही से कांप उठता हूं, क्योंकि निरंकुश अधिनायकता (डिक्टेटरी) मेरी प्रकृति में मौजूद नहीं है। इसे मैं पसन्द नहीं करता। इसीलिए मैं जो कुछ भी करता था या आदेश दिया करता था, उसके विषय में सबसे पहले अपने साथियों से विचार-विमर्श कर लेता था। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि जिस समय अवज्ञा-आदोलन करने या न करने के प्रश्न पर जिरगे में बहस हो रही थी, तो हज़ारा के हाजी फ़क़ीरा खां ने यह सुझाव प्रस्तुत किया कि हमें टेलीफोन के तार काटने और रेल की पटरियां उखाड़ने की अनुमति दी जाए। मैंने उनसे कहा कि यह मैं इस शर्त पर मान सकता हूं कि जो व्यक्ति रेल की पटरी को हानि पहुंचाए या तार काटे उसे चाहिए कि यह काम करके वह स्वयं पुलिस थाने में जाकर और पूरी सचाई तथा साहस को प्रकट करता हुआ यह कह दे कि यह काम उसने किया है। इससे एक तो पश्तूनों के अन्दर नैतिक साहस पैदा हो जाएगा, और चूंकि वह साहसिक कार्य खुले-आम करेंगे, इसलिए उसकी इस आत्मसम्मानयुक्त घोषणा से दूसरे लोगों में भी नैतिक साहस की आदत पैदा हो जाएगी। तीसरी बात

यह होगी कि इस काम के कारण दूसरे लोगों पर अनुचित संदेह नहीं होगा और ख़ुदा की मख़लूक़ (प्रभु के दूसरे मानव) दमन और अत्याचार की शिकार नहीं होगी।

ख़ैर, मेरे आदेश और अनुशासन के अधीन ख़ूब ज़ोर-शोर से आज्ञा-भंग आन्दोलन आरम्भ हो गया। निश्चय के अनुसार हम लोग आदलतों, न्यायालयों पर छापे मारते थे। बन्नू, कोहाट, टांक और पेशावर में आदलतों पर आक्रमण आरम्भ हो गए थे। अंग्रेज़ों की ओर से हमारे इस आन्दोलन का उत्तर बड़ी कठोरता से दिया गया। लेकिन पेशावर के एक मुसलमान डिप्टी कमिश्नर ने अंग्रेज़ों के प्रति परम्परागत भक्ति अथवा वफ़ादारी प्रकट करने की सनक में अंग्रेज़ों से भी अधिक अपनी अंग्रेज़-भक्ति को ऊंचा उछाला और अंग्रेज़ी की यह कहावत चरितार्थ करने का प्रयत्न किया, "बादशाह से भी अधिक बादशाही का हितैषी निकला।" इस 'भले व्यक्ति' का नाम सिकन्दर मिर्ज़ा था। जहां अंग्रेज़ शासक अपने इलाक़ों में सेना को लोगों पर लाठी चलाने का आदेश देते थे, वहां जनाब सिकन्दर मिर्ज़ा साहब स्वयं उठकर खड़े हो जाते थे और हाथ में लाठी लेकर ख़ुदाई खिदमतगारों को मार-मारकर अधमरा कर देते थे। यहां तक कि एक ख़ुदाई ख़िदमतगार उनकी लठबाज़ी से शहीद हो गया। उस ख़ुदाई ख़िदमतगार का नाम सैयद अकबर था। जनाब मिर्ज़ा के कारनामों में से एक 'भद्रतापूर्ण घटना' का भी उल्लेख कर देना चाहिए। आपने ख़ुदाई ख़िदमतगारों के शिविर में उनके सालन में एक दिन विष डाल दिया था और उससे वे समस्त ख़ुदाई ख़िदमतगार, जिन्होंने खाना खा लिया था, ऐसे बीमार हुए कि मौत के द्वार पर पहुंच गए।

उन मिर्ज़ा साहब के अन्य अनेक उपकार और कृपाएं हम पठानों पर रही हैं। लेकिन मैं उनपर परदा डालता हूं और उनको उस ख़ुदा के हवाले करता हूं, जिसके पास हम सबको एक दिन उपस्थित होना है। मिर्ज़ा साहब बाद में पाकिस्तान के प्रधान भी बन गए थे और वे 'इस्लाम, इस्लाम' और 'देशभक्ति' के नारे भी लगाने लग गए थे और मैं भी उनके शासन-काल में 'देशद्रोह' और 'इस्लाम-विरोध' के अभियोग में कारावास के अपार कष्ट और यातनाएं उठाता रहा।

ख़ैर, मैं समय-समय पर सत्याग्रह की स्थिति मालूम करने के लिए अपने प्रान्त में भ्रमण करता रहता था। एक दिन मैं कोहाट की ओर जा रहा था कि दर्रे के सपेना थाना में मुझे गिरफ़्तार कर लिया गया। मुझे मोटर से पेशावर ले जाया गया और वहां मुझे छोड़ दिया गया।

इसी प्रकार जहां भी मैं जाता था, अंग्रेज़ सरकार की पुलिस मुझे गिरफ़्तार कर लेती थी और पेशावर लाकर छोड़ देती थी। लेकिन मुझे यह व्यवहार पसन्द नहीं था। इसलिए मैंने पचास व्यक्तियों का एक जत्था बनाया और हम लोगों ने चार सद्दा से पैदल मरदान के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में हम स्थान-स्थान पर जलसे करते थे। जिस समय हम लोग मीरवस ढेरी में पहुंचे, तो यहां हमारे लिए पुलिस बैठी हुई थी। हमने एक-दूसरे के हाथ में हाथ डालकर ऐसी शृंखला-सी बना रखी थी कि हम एक-दूसरे से अलग नहीं होते थे और यदि पुलिसवाले हमें अलग कर भी देते थे, तो भी हमारी यही चेष्टा होती थी कि एक-दूसरे के साथ मिल जाएं। अन्त में पुलिस ने लाठियां संभाल लीं और हमपर तावड़तोड़ बरसानी आरम्भ कर दीं।

अंग्रेज़ के शासन-काल में हमारे प्रारम्भिक दौर को छोड़कर अंग्रेज़ों ने शत्रुता और अत्याचार के बावजूद मेरा समादर किया था और व्यक्तिगत रूप से उन्होंने कभी मेरे साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया था कि जिससे मेरा अनादर हो या मुझे मारा-पीटा या घायल किया गया हो। उदाहरणार्थ, एक बार मैं एबटाबाद के जेलख़ाने में क़ैद था। हमारे जेलखाने के जरनैल मि० स्मिथ दौरे के लिए एबटाबाद आए थे और मुझे देखने के लिए सीधे जेल में चले आए। मैं जेल में एक छोटी-सी एकान्त कोठरी में अकेला अलग-थलग बन्द था। स्मिथ साहब ने मेरे साथ सलाम-दुआ करने के बाद बाहर जाकर सुपरिंटेण्डेण्ट से नाराज़ी के स्वर में कहा, "बाचाख़ान को तुमने कबूतरों दरबे के ऐसी इस छोटी-सी कोठरी में डाल रखा है (You have put him in the pegion hole!)। तुमने इसे अस्पताल के बड़े कमरे में क्यों नहीं भेजा?"

उसने स्मिथ साहब को बड़े विनम्र भाव से कहा, "सीमा प्रान्त की सरकार का आदेश ऐसा ही है! मैं क्या कर सकता हूं?"

स्मिथ साहब ने उसी समय उसी स्थान से सीमा प्रान्त के गवर्नर को टेलीफोन किया और उनसे कहा, "जार्ज कनिंघम! क्या कोई अपने एक बहादुर शत्रु से ऐसा बर्ताव करता है, जैसा आपने बाचाख़ान के साथ कर रखा है।"

कनिंघम अपनी करतूतों पर लज्जित हुआ और उसने अपना आदेश वापस ले लिया। लेकिन स्मिथ ने इससे पहले ही मुझे किसी अच्छे स्थान पर भेजने और मेरे लिए अच्छे साथी ढूंढ़ने का आदेश दे दिया था। अस्तु, मेरा लड़का वली और तीन अन्य साथी मेरे पास भेज

दिए गए थे। जबकि मैंने स्मिथ साहब के सामने ऐसी इच्छा प्रकट नहीं की थी। जिस समय वे मुझे साथी देने लगे थे, उस समय उन्होंने मुझे पूछा अवश्य था कि मुझे कौन-से साथी चाहिए। मैंने उनसे कहा था कि जो उन्हें पसन्द हों। लेकिन स्मिथ साहब ने उत्तर में मुझे लिखा था कि ये साथी उन्हें तो अपने लिए नहीं चाहिए, मेरे लिए चाहिए। इसलिए उचित है कि मैं स्वयं अपनी पसन्द के साथी मांग लूं। वे मुझपर अपनी पसन्द के साथी नहीं ठूंसना चाहते थे।

स्मिथ साहब के इस उदारतापूर्ण बर्ताव का उल्लेख करते समय यहां मुझे पाकिस्तान की सरकार के बर्ताव की बात भी याद आती है। मैं पाकिस्तान सरकार के शासन में सदा एकान्त कारावास में रखा गया हूं और जितना भी मैं चीखा और चिल्लाया हूं कि मुझे एक साथी तो दे दो, उतना ही रूखा व्यवहार मुझसे किया गया। और यदि कोई साथी दिया भी तो वह या तो पागल था या रोगी, जो मेरे लिए कष्ट और सिरदर्दी का कारण बना। लेकिन अंग्रेजों के शासन में कुछ देसी कर्मचारी अवश्य इस विचार के थे, जो यह सोचते थे कि यदि वे मुझे व्यक्तिगत रूप से हानि पहुचाएंगे या मेरा अनादर करेंगे और अंग्रेज़ को उनकी वफ़ादारी का पता लग जाएगा, तो वे इस अंग्रेज भक्ति के फल-स्वरूप उन्नति प्राप्त कर लेंगे। मीरवस ढेरी की इस घटना में भी हमें एक ऐसे हीन पुलिस अधिकारी से वास्ता पड़ा था। उन्होंने मुझे इस क़दर मारा-पीटा था, कि मेरी दो पसलियां टूट गईं। वह व्यक्ति पुलिस का इन्स्पेक्टर खुशदिल खां था; जिसके नाम का अर्थ अच्छे दिल वाला ख़ान है! इस अच्छे दिलवाले ख़ान ने अपने लिए अंग्रेज़ों की वफ़ा-दारी की सूची में स्थान तो बना लिया था लेकिन सभ्य जगत् के सामने वह किसी अच्छे आदर्श का मनुष्य अपने-आपको सिद्ध नहीं कर सका। ख़ुदाई ख़िदमतगारों से उसके बर्ताव का अनुमान पाठक मेरे साथ उसके व्यवहार से भली प्रकार लगा सकते हैं। उन्होंने हम सबको पकड़ लिया और मरदान जेल में ले गए। दूसरे दिन रिसालपुर पहुंचा दिया और उस स्थान से हमें हरिपुर जेल में ले गए।

२०

युद्ध के ज़माने में जब जापानी सेनाएं बर्मा पहुंच गईं, तो हमें चिन्ता हुई कि जापानी बहुत तेज़ी से आगे बढ़ रहे हैं और यदि उनकी यही गति जारी रही, तो वे बहुत शीघ्र यहां पहुंच जाएंगे। हम अपने क़बीलों के

लिए चिंतित हो उठे। हम चाहते थे कि हम आनेवाली विपत्ति का मुक़ाबला एकसाथ मिलकर करें। इसके लिए आवश्यक था कि हमारा एक ही मत और एक ही मार्ग हो। हमने फ़ैसला किया कि क़बाइली इलाक़े में हम अपने शिष्टमण्डल भेजें।

उस समय सर जार्ज कनिंघम सीमा प्रान्त के गवर्नर थे। मैंने उन्हें एक पत्र लिखा कि हमें आनुमित दें, ताकि हम अपने आदमी क़बाइल में भेज दें। चूंकि अंग्रेज़ हमें सुधार और शिक्षा-सम्बन्धी कामों के लिए भी क़बाइलियों में नहीं जाने देते थे। इसलिए गवर्नर ने मुझे उत्तर में लिखा कि,वे हमें इस बात की अनुमति नहीं दे सकते, इसपर हमने जिरगा बुला लिया और गवर्नर ने भी अपने राजनीतिक एजेंटों को विचार-विमर्श के लिए बुला लिया। हमने निर्णय किया कि चूंकि यह हमारी ज़िन्दगी और मौत का प्रश्न है। चाहे सरकार हमें अनुमति दे या न दे, हम अपने शिष्टमण्डल अवश्य क़बाइली इलाक़े में भेजेंगे। दूसरी ओर सीमा प्रान्त की सरकार ने राजनीतिक एजेंटों से विचार-विमर्श के पश्चात् निश्चय किया कि वे ख़ुदाई ख़िदमतगारों को यहां तो कुछ नहीं कहेंगे, लेकिन जब हम क़बाइलियों में पहुंच जाएंगे, तो हमारी अच्छी तरह से ख़बर लेंगे। हमने आफ़रीदियों, वजीरियों, मसऊदों और बाज़ोड़ में अपने शिष्टमण्डल भेज दिए। आफ़रीदियों में जानेवाले हमारे शिष्टमण्डलों को किसी प्रकार की कठिनाइयों का सामना न हुआ और अपने-अपने निर्दिष्ट स्थानों पर पहुंच गए। लेकिन बाज़ोड़ जानेवाले हमारे शिष्ट-मण्डल को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। ख़ुदाई ख़िदमतगारों से संगठित इस शिष्ट मण्डल के रास्ते में मालाकण्ड के राजनीतिक एजेंट ने राना ज़ई क़बीले के ख़ानों को बिठा रखा था। जब हमारा शिष्टमण्डल सख़ाकोट में पहुंचा, तो उन ख़ानों ने उसे रोक लिया और उसे वापस चले जाने का उपदेश करते हुए कहा कि वे शिष्टमण्डल को अपने इलाक़े में घुसने नहीं देंगे।

इस शिष्टमण्डल का नेता कामदार खां था। उसने उन्हें बहुत समझाया कि हम जब एक बार पग आगे रख देते हैं, तो उस पग को पीछे नहीं हटाते। इसपर उन ख़ान साहिबान से बहस आरम्भ हो गई और यह वाद-विवाद सुनकर बहुत-से लोग एकत्र हो गए। ख़ानों का इरादा था कि वे ख़ुदाई ख़िदमतगारों को बलपूर्वक अपने इलाक़े से निकाल बाहर कर दें। लेकिन जब उन्होंने देखा कि आज जनता की सहानुभूति ख़ुदाई ख़िदमतगारों के साथ है और यदि कोई ऐसी-वैसी हरकत करते हैं तो लोग उनका विरोध करने को तैयार हैं, तो उन्होंने ख़ुदाई ख़िदमत-

गारों को छोड़ दिया।

इसके पश्चात् वे ख़ान लोग मेरे पास केन्द्र में आए। मेरे साथ भाई-चारे, प्रेम-प्यार और जाति-भक्ति की बातें करने लगे और उन्होंने मेरी बहुत मिन्नत-समाजत की कि यह ख़ुदाई ख़िदमतगार शिष्टमण्डल मालाकण्ड के रास्ते बाज़ोड़ को न जाए, दूसरे रास्ते से चला जाए। अस्तु, मैंने कामदार खां को लिख दिया कि वे मालाकण्ड का मार्ग छोड़ दें और उतमान-ख़ैलों के रास्ते से बाज़ोड़ चले जाएं। शिष्टमण्डल ने वह मार्ग छोड़ दिया और अगरे के रास्ते से उतमान-ख़ैलों की ओर चल पड़े। अब रास्ते में काला खैल सीमाओं (मियां लोग या मीयां खैल) ने उन्हें रोक लिया। हमारे ख़ुदाई खिदमतगार जब उनके गांव के निकट से गुज़र रहे थे, तो मियां लोग बाहर निकल आए और बिना कारण के उनपर टूट पड़े। उन्हें उठा-उठाकर पटका और अत्यन्त निर्दयता से मारा-पीटा। उन्होंने ख़ुदाई खिदमतगारों पर इसलिए अत्याचार किए कि किसी प्रकार राजनीतिक एजेंट को यह मालूम हो जाए कि उन्होंने ख़ुदाई खिदमतगारों से एक ऐसा अनुचित वर्ताव किया है। 'काका खैल' मियां लोगों की बहुसंख्या दुर्भाग्यवश समय की सरकार की वफ़ादार रही है। यहां तक कि चित्राल तक यही लोग अंग्रेज़ी सेनाओं के आगे-आगे गए थे और लोगों की धन-सम्पत्ति लूटने में भी अग्रगामी रहे थे।

हमारा यह शिष्टमण्डल जब बाज़ोड़ पहुंच गया, तो वहां बादशाह गुल ने उनके लिए बड़ी कठिनाइयां पैदा कर दीं। उसने लोगों में यह प्रचार किया था कि उनके इलाक़े में ऐसे लोग आ रहे हैं, जो लाल कपड़े पहने हुए हैं। ये लोग हिन्दू हैं। इनको क़त्ल कर देने में बड़ा सवाब मिलता है। बादशाह गुल ने हमारे विरुद्ध यह सारा प्रचार अफ़ग़ानिस्तान के प्रधान मन्त्री हाशम खां के संकेत पर किया था, क्योंकि बादशाह गुल उन्हीं हाशम खां का आदमी था और हाशम खां को अंग्रेज़ों ने ऐसा काम करने पर विवश किया था। उस समय हाशम अफ़ग़ानिस्तान का प्रधान मंत्री था।

एक अवसर पर बाज़ोड़ में गांव के नौजवान इस बात के लिए तैयार हो गए थे कि हमारे ख़ुदाई खिदमतगार की चांदमारी कर दें अर्थात् उन्हें गोली मारकर मौत के घाट उतार दें, लेकिन उनके बड़े व्यक्तियों ने उन्हें कहा, "तुम ज़रा धैर्य से काम लो। ये सुर्ख़पोश कहीं जा तो सकते नहीं। हम इनसे पूछ तो लें।"

जब ख़ुदाई खिदमतगार गांव के हुज्रे में बैठ गए, तो उन बुज़ुर्गों ने उनसे पूछा, कि वे कौन हैं और कहां जाना चाहते हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए अब्दुल मलिक उस्ताद, जो हम पठानों का महान राष्ट्रीय कवि था, खड़ा हो गया।

अब्दुल मलिक के शब्दों का उन लोगों पर बहुत प्रभाव हुआ और उन्होंने अपने नवयुवकों को फटकारा। बादशाह गुल की विरोधात्मक कोशिशों के बावजूद यह शिष्टमण्डल बहुत सफल हुआ और उसने बाज़ोड़ में प्रशंसनीय काम किया।

हाशम खां का विरोधपूर्ण और शत्रुतायुक्त व्यवहार यहीं तक सीमित नहीं था। जब हम अंग्रेज़ों की अदालतों पर छापे मार रहे थे, तो हाशम खां ने इसी बादशाह गुल को हाजी मुहम्मद अमीन के साथ हमारे विरुद्ध काम करने के लिए पेशावर भेजा था। यहां यह बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हाजी मुहम्मद अमीन जलालाबाद के निकट अड्डा नाम के गांव में रह रहा था और वह किसी समय हाजी साहब तरंग ज़ई का खलीफा था। हाशम खां ने उसे हमारे विरुद्ध अंग्रेज़ों के हितार्थ भेजा था, ताकि वह पख्तूनों का ध्यान अंग्रेज़ों की ओर से हटा दे। हाजी मुहम्मद अमीन जब पेशावर पहुंचा, तो उसने अंग्रेज़ों की अदालतों पर खुदाई खिदमतगारों की ओर से हो रहे धावों के मुक़ाबले में वेश्याओं के चकलों पर छापे मारना आरम्भ कर दिया। उसका अभिप्राय यह था कि लोगों का ध्यान अंग्रेज़ों की ओर से हटाकर इधर आकर्षित कर ले। लेकिन वह लोगों का ध्यान स्वाधीनता के संग्राम से किसी दूसरी ओर हटा न सका। क्योंकि हमने देश में काम किया था और हमारे लोगों में इतनी सूझ-बूझ आ चुकी थी कि उन्हें इस्लाम के नाम पर पथभ्रष्ट करना और धोखा देना असंभव था। बादशाह गुल के बाप हाजी साहब तरंग ज़ई स्वयं बहुत ही अच्छे मनुष्य थे और हमारे पक्के साथी थे, लेकिन बादशाह गुल हमारी यह सारी मुखालफ़त पैसों और सत्ता के लालच से कर रहा था।

२१

हरिपुर हज़ारा के सेण्ट्रल जेल में हमारे हज़ारों साथी क़ैद थे। उनमें से जब अधिकांश रिहा हो गए और थोड़े-से शेष रह गए, तो फिर मुझे वापस हरिपुर जेल भेज दिया गया। हममें से प्रायः सभी क़ैदी नज़रबन्द थे। हमने यह निर्णय किया कि यों निकम्मे नहीं बैठेंगे, कोई काम करेंगे। हमने सरकार से कह दिया कि हमें निवार बुनने का काम दे दिया जाए। उन दिनों पच्चीस फुट निवार बुनने की मज़दूरी आठ आने

मिला करती थी। हमारे बहुत-से साथी यह काम करके अच्छे पैसे कमा लेते थे। लेकिन ये पैसे कोई भी साथी अपनी आवश्यकताओं पर खर्च नहीं करता था। ये सब पैसे हम लोग अपने केन्द्र को भेज देते थे। यहां हमारे बहुत-से खुदाई खिदमतगार निरक्षर थे। हमने उन्हें लिखना-पढ़ना सिखाया।

इस अवसर पर मुझे इस बात की आवश्यकता अनुभव होती है कि मैं एजेंसियों के सम्बन्ध में थोड़ा विस्तृत विवरण प्रस्तुत करूं। पश्तूनों के देश का विभाजन, जो पहले अंग्रेज़ों ने और अब पाकिस्तान ने जिस तरीक़े से किया है, उसकी ओर एक दूसरे स्थान पर मैंने संकेत किया है। यहां मैं इस घृणित व्यवस्थात्मक विभाजन के सम्बन्ध में केवल एजेंसियों को लेता हूं।

सीमा प्रान्त का वह इलाक़ा, जो गर्वनर के प्रभावाधीन वैध रूप से असेम्बली के द्वारा व्यवस्थित किया जाता है, उसे बन्दोबस्ती जिला कहा जाता था। इस इलाक़े और आज़ाद क़बाइल के मध्य एक बफ़र ज़ोन (मध्यवर्ती क्षेत्र) एजेंसियों का है। यह इलाक़ा सीधे राजनीतिक अभिकर्ता के शासनाधीन होता है। इसमें किसी प्रकार का न तो कोई क़ानून होता है और न अदालत। यहां तक कि राजनीतिक अभिकर्ता के किसी आदेश के विरुद्ध किसीको अपील करने की भी अनुमति नहीं है। एजेंसियों के लोग बेचारे विद्याहीन, मूर्ख, आक्रान्त और इस सीमा तक पद-दलित होते हैं कि सिर्फ एक व्यक्ति के आदेश से जीते और मरते हैं।

एजेंसी के लोगों को बन्दूकें रखने की अनुमति होती है और उन्हें यह भी आज्ञा होती है कि एक-दूसरे को क़त्ल कर दें, एक-दूसरे का माल छीन लें और एक-दूसरे के शत्रु बने रहें, ताकि सदा राजनीतिक अभिकर्ता की खुशामद करके उसके आश्रय में जीवन व्यतीत करते रहें। इस बफ़र ज़ोन की स्थापना का अभिप्राय यह भी है कि यदि क़बाइल प्रान्त में बन्दोबस्ती ज़िलों पर कहीं आक्रमण करें या डाका डालें तो पहले एजेंसियों में से गुज़रने पर विवश हों और ये लोग अपने सीने ढाल बनाकर उनके मुक़ाबले पर खड़े हो जाएं। ये लोग इतने दासताग्रस्त और आक्रान्त हैं कि राजनीतिक अभिकर्ता का तनिक-सा संकेत इनके लिए पर्याप्त होता है। ये लोग क़बीलों की भांति स्वाधीन नहीं होते और दूसरी ओर पराधीन प्रान्तों की भांति क़ानून और अदालत की छाया से भी वंचित होते हैं। इनके इलाक़े में पहले अंग्रेज़ी सेनाएं, बार्डर पुलिस आदि रहती थी और अब पाकिस्तान की सेनाएं आदि सदा डेरा डाले रहती हैं।

मैंने जेलखाने में मुर्ग़ियां पाल रखी थीं और उनके अंडों से जितने पैसे मेरे हाथ लगते थे, वे मैं केन्द्र को दे दिया करता था। मुर्ग़ियों के बच्चों को मैं अपने हाथ से ख़ुराक खिलाया करता था। जिस समय उनके खाने का अवसर होता, वे अपने-आप मेरे चारों ओर इकट्ठे हो जाते। मैं अपने हाथों में उनके लिए आटा लिए होता था। इसलिए कोई चूज़ा मेरी बग़ल में बैठ जाता, कोई मेरे हाथों पर बैठ जाता और कोई मेरे सिर और कंधों पर आ बैठता। एक दिन कर्नल स्मिथ, जो जेलखानों के जरनैल थे, हरिपुर दौरे के लिए आए। उन्होंने १९३० में हरिपुर जेल में राजनीतिक क़ैदियों पर बड़े अत्याचार किए थे। लेकिन अब वे बहुत बदल चुके थे। स्मिथ साहब ने ज्योंही मुझे मुर्ग़ियों और चूज़ों में व्यस्त देखा, तो उन्होंने अपने साथियों को विदा किया और स्वयं चुपचाप मेरे पीछे आ खड़े हुए और यह तमाशा देखने लगे। थोड़ी देर के बाद उन्होंने 'गुड मारनिंग' कहा और पूछा कि यह क्या कर रहे हो?

मैंने उन्हें उत्तर दिया, "ज़रा आप इस बात को सोचिए कि इसमें मनुष्य के लिए कितनी बड़ी शिक्षा निहित है। देख लीजिए, ये जानवर भी जानते हैं कि मैं इनका शत्रु हूं और इन्हें हलाल करने के लिए पाल रहा हूं। लेकिन मैं इनसे प्यार करता हूं, इसलिए देखिए ये किस तरह मेरी बग़ल और हाथों पर बैठे हुए हैं। क्या यह मनुष्य के लिए एक बहुत बड़ी शिक्षा नहीं है? जब हम प्यार से पशु को अपना मित्र बना सकते हैं, तो मनुष्य को, जो श्रेष्ठतम प्राणी है, क्यों अपना मित्र नहीं बनाया जा सकता?

स्मिथ साहब विचित्र व्यक्ति थे। वे कहा करते थे कि यदि पाकिस्तान बन गया, तो वे उसमें एक दिन भी नहीं रहेंगे। अस्तु, जिस समय पाकिस्तान बनने की घोषणा हो रही थी, वे सचमुच उसी दिन प्रातः रेलगाड़ी में सवार हो गए और सीमा प्रान्त से इंगलैंड प्रस्थान कर गए।

१९४५ में हमारे मन्त्रियों ने सोचा कि हमारे प्रान्त के लिए मन्त्रिमंडल हितकारक है और यदि उन्होंने मंत्रिमंडल बना लिया, तो और कामों के अतिरिक्त उन साथी राजनीतिक क़ैदियों को भी, जो तीन-तीन वर्ष से जेलों में पड़े सड़ रहे हैं, मुक्ति मिल जाएगी। उसने अपना एक शिष्टमंडल गांधीजी के पास भेजा था, जिसने गांधीजी को बताया कि भारत के हालात से सीमा प्रान्त के हालात भिन्न हैं। गांधीजी ने उन्हें राजनीतिक क़ैदियों की रिहाई के सम्बन्ध में आज्ञा तो दे दी थी, लेकिन उन्होंने शिष्टमंडल से यह भी कहा था कि वे बाचाख़ान

(मुझ) से पूछ लें। अस्तु, सदस्यों का एक शिष्टमंडल मेरे पास जेलखाने में आया और सारी परिस्थति के विषय में मुझे जानकारी दी। उसने मुझसे यह भी कहा कि अंगेज़ तो मुझे छोड़ेंगे नहीं, लेकिन हमने मंत्रि-मंडल स्थापित कर लिया, तो इन समस्त ख़ुदाई खिदमतगारों को हम रिहा कर देंगे। लेकिन वे मुझे सहमत न कर सके। मैंने उन्हें कह दिया, "आप लोग हम राजनीतिक क़ैदियों की कोई चिन्ता न करें। हम क़ैद में तंग या दु:खी नहीं हैं और एक ऐसा मंत्रिमंडल, जिसको कोई अधिकार न हो, स्थापित कर लेने में मुझे तो हानि दिखाई देती है। मेरा मत मंत्रिमंडल स्थापित करने के पक्ष में नहीं था, लेकिन मैं नहीं जानता कि आया अन्य कार्यकर्ताओं ने यह राय दी थी, क्योंकि मार्च १९४५ में ज्योंही मंत्रिमंडल स्थापित कर लिया गया और मंत्रिमंडल स्थापित करते ही समस्त राजनीतिक क़ैदी रिहा कर दिए गए और हम ज्योंही जेलख़ानों से रिहा होकर आए, तो हमने अपना काम आरंभ कर दिया। लेकिन सरकार और उसके सब कार्यकर्ता हमारे विरुद्ध बड़े ज़ोर-शोर से काम करने में व्यस्त थे। हमें औरंगज़ेब के मंत्रिमंडल ने बहुत लाभ पहुंचाया था। लोगों ने यह अनुभव किया था कि मुस्लिम लीग के मंत्रिमंडल ने लोगों के लिए क्या किया है और कांग्रेस मंत्रि-मंडल या ख़ुदाई खिदमतगारों के मंत्रिमंडल ने जनसाधारण के लिए क्या किया है। औरंगज़ेब तो लोगों के लिए कुछ कर नहीं सकता था। वह अपने मंत्रिमंडल के समय में वही कुछ करता रहा, जो कुछ अंग्रेज़ कहते थे और जिसमें उनका अपना लाभ होता था। लेकिन डाक्टर ख़ान साहब के मंत्रिमंडल ने, बावजूद इसके कि उसके हाथ में कोई अधिक अधिकार नहीं थे, लोगों के लिए बहुत कुछ किया था और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उनका मंत्रिमंडल अंग्रेज़ों की कठपुतली नहीं था।

मैं चुनाव लड़ने के पक्ष में नहीं था। मैं कहता था कि हम चुनाव चाहे जीत भी लें और हमारा मंत्रिमंडल बन भी जाए, लेकिन जब हम लोगों के लिए कुछ कर नहीं सकते, तो ऐसा मंत्रिमंडल स्थापित करके क्या करेंगे? हम तो मंत्रिमंडल शासन करने के लिए स्थापित नहीं करते, हम यदि मंत्रिमंडल स्थापित करते हैं, तो जनता की सेवा के लिए।

कलकत्ता में कांग्रेस कार्यकारिणी और संसदीय मंडल की बैठक थी। मैं भी उसमें उपस्थित हुआ। मैंने सीमा प्रान्त की परिस्थितियों और घटनाओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने के पश्चात् गांधीजी से कहा कि मैं इस चुनाव में कोई भाग नहीं लेना चाहता। गांधीजी ने मेरी

इस बात से सहमति प्रकट की। संसदीय मंडल ने बहुत प्रयत्न किया कि मुझे चुनाव में भाग लेने के लिए सहमत कर लें। लेकिन वह मुझे इस विषय में सहमत नहीं कर सका। कार्यकारिणी की बैठक समाप्त होने के बाद मैं अपने गांव चला गया और अपना कार्य करता रहा। चुनाव लड़ने में मेरी सहमति नहीं थी। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं था कि मैंने काम करना छोड़ दिया था और घर में बैठ गया था। मैं अपनी संस्था का काम करता था और इलाक़े में ताबड़तोड़ दौरे कर रहा था तथा सरकारी कर्मचारियों का मैं भली प्रकार से अध्ययन भी कर रहा था। सरकार हमारे विरोध में लगी हुई थी, लेकिन मुझे इस बात का पता चला कि सरकार ने पेशावर के इस्लामिया कालेज तथा प्रान्त-भर के इसी प्रकार के स्कूल तथा कालेज बन्द कर दिए हैं और विद्यार्थियों को मुस्लिम लीग के प्रचार के लिए मैदान में ला खड़ा किया है। मैंने देखा कि अंग्रेज़ों की बीवियां भी इस काम में जुट गई हैं और वहां के लोगों से कह रही हैं, "हम आपके पास आई हैं, हमें दुपट्टा प्रदान कीजिए और हमारा दुपट्टा 'वोट' है।" चुनाव के प्रचार के लिए बेगम शाहनवाज़ की लड़की भी दूसरी कई लड़कियों को साथ लेकर पंजाब से सीमा प्रान्त में पहुंच गई थी।

पंजाब के अतिरिक्त मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के छात्र, कलकत्ता के इस्लामिया कालेज के विद्यार्थी और भारत के अन्य स्थानों के कार्यकर्ता और लीग नेता भारी संख्या में सीमा प्रान्त में पहुंच गए थे। इसके साथ ही सरकार और मुस्लिम लीग ने पंजाब और सीमा प्रान्त के नदी-नशीन, पीर और परहेज़गार सबको कोठरियों से निकालकर चुनाव-प्रचार के मैदान में झोंक दिया था। वे हमारे मुक़ाबले में खड़े कर दिए गए थे। मैंने जब अंग्रेज़ों और उनकी बीवियों की ओर से मुस्लिम लीग के लिए चुनाव-कार्य में इतनी दौड़-धूप देखी, तो मेरा विचार बदल गया। चुनाव में केवल एक महीना रह गया था कि मैंने चुनाव के लिए काम आरम्भ कर दिया। यह चुनाव (अविभाजित भारत के अंतिम आम चुनाव १९४५-४६ ई०) भारत और पाकिस्तान के प्रश्न को लेकर हो रहे थे—हिन्दू और मुस्लिम के प्रश्न पर, मन्दिर और मसजिद तथा इस्लाम व कुफ्र के नाम पर हो रहे थे। मुस्लिम लीगी लोगों से कहते थे—मस्जिद को वोट देते हो या मन्दिर को?

भारत के दूसरे मुसलमानों की भांति पठान रूढ़ीवादी या कट्टर-पंथी नहीं थे। उनमें राजनीतिक ज्ञान अथवा राष्ट्रीय सूझ-बूझ विद्यमान थी। उन्हें इस्लाम के नाम पर कोई धोखा नहीं दे सकता था,

क्योंकि वे सच्चे इस्लाम का पूरा ज्ञान रखते थे। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि सीमा प्रान्त में एक राष्ट्रीय आन्दोलन था और इस आन्दोलन ने देश तथा जाति के लिए बहुत बलिदान और शानदार सेवा-कार्य किए थे। शेष भारत के मुसलमानों में न तो कोई राष्ट्रीय आन्दोलन था और नहीं किसीने ऐसे राष्ट्रीय आन्दोलन में काम किया था।

मतदान के समय सरकार ने मुस्लिम लीग के लिए बहुत प्रयत्न किए और खुदाई खिदमतगारों का घोर विरोध किया, लेकिन खुदा के फ़ज़्ल से मुस्लिम लीग की पराजय हुई और हम लोग बहुत भारी बहुमत में सफल हुए।

सरकार और सरकार के पुर्ज़ों ने हमारे विरुद्ध बड़ा सख्त काम किया था। इस क़दर काम और प्रचार स्वयं मुस्लिम लीग ने नहीं किया था। सरकार का यह काम हमें अत्यन्त घृणित दिखाई दिया। हमने विचार-विमर्श के पश्चात् निश्चय किया कि हम मंत्रिमंडल नहीं बनाएंगे और हमने मंत्रिमंडल बनाने से इंकार कर दिया और कह दिया कि हम तब तक मंत्रिमंडल बनाने के लिए तैयार नहीं, जब तक सरकार हमें यह अनुमति न दे दे कि जिन सरकारी कर्मचारियों ने चुनाव में हमारे विरुद्ध काम किया है, सरकारी नौकरी के नियमों और अनुशासन का उल्लंघन किया है, उनपर हम मुक़द्दमे चलाएं और अपराधियों को उचति दंड दें। हमारे इस निश्चय का समाचार ज्योंही डाक्टर साहब को मिला, उन्होंने इसकी सूचना सरदार पटेल को पहुंचा दी, क्योंकि उनका यह अभिमत था कि मंत्रिमंडल बना लेना चाहिए।

सरदार पटेल ने इस समस्या के समाधान के लिए मौलाना आज़ाद को सीमा प्रान्त में भेजा। हमारी मीटिंग पेशावर में हुई। हमने मौलाना आज़ाद से यह बात साफ़-साफ़ शब्दों में कह दी कि जिन लोगों ने बेईमानी की है, उनके विषय में सरकार जब तक हमारी शर्त न मान ले, उस समय तक हम मंत्रिमंडल नहीं बनाएंगे। मौलाना साहब वापस दिल्ली चले गए और वहां वायसराय से एक पत्र लेकर फिर सीमा प्रान्त में आ गए। इस पत्र में वायसराय ने कुछ गोलमोल शब्दों में हमारी शर्त स्वीकार कर ली थी। अब हमने अपने साथियों से विचार-विमर्श करके इस शर्त पर मंत्रिमंडल स्थापित कर लिया कि अधिकार एक केन्द्रीय समिति के हाथ में रहेंगे।

जुलाई, १९४६ में भारत के लिए विधान बनाने के उद्देश्य से मैं और मौलाना आज़ाद, खुदाई खिदमतगारों तथा सीमा प्रान्त की

विधानसभा की ओर से केन्द्रीय विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए थे। हमारे प्रान्त के तीन सदस्य थे—दो तो हम थे और तीसरा सदस्य ज़िला हज़ारा का निवासी था। चुनाव में केवल यही ज़िला हज़ारा था, जिसमें मुस्लिम लीग को वोट मिले थे और मुस्लिम लीग के उम्मीदवार सफल हुए थे। चुनाव में इतनी स्पष्ट बहुसंख्या प्राप्त करके, जिसमें स्पष्ट समस्याओं पर हमने मुक़ाबला किया था और ऐसी स्थिति में जबकि मुस्लिम लीग को सरकार का भी सहयोग और आश्रय उपलब्ध था और भारत के समस्त मुस्लिम नेता, सारी शक्ति और चालाकी हमारे विरुद्ध इस्तेमाल की गई थी, हमारी सफलता का अर्थ इसके सिवा और क्या निकलता है कि देश का बहुमत हमारे पीछे खड़ा था। लेकिन इसके बावजूद जब हमारे प्रतिनिधित्व के सिलसिले में सीमा प्रान्त में फिर से जनमत संग्रह करने का आदेश हमपर ठूस दिया गया, तो हमें स्वभावतः इस खुल्लमखुल्ला अन्याय तथा ज़ुल्म के विरुद्ध क्रोध आया और हमने जनमत संग्रह में भाग न लेने और इसका बहिष्कार करने का निर्णय किया, ताकि संसार को हमारे क्रोध और प्रबल विरोध का तथा हमारे साथ किए गए अन्याय का पता चल जाए।

वायसराय का यह आदेश न केवल तर्क और युक्ति के विरुद्ध था, प्रत्युत एक आपवादात्मक और पक्षपातपूर्ण व्यवहार का सूचक था, जो पश्तूनों से अंग्रेज़ों ने जाते समय किया, जिसे हम कदापि सहन नहीं कर सकते थे। जहां सारे भारत में प्रत्येक प्रान्त के उन प्रतिनिधियों से जो असेम्बली में मौजूद थे, पूछा गया कि आया वे भारत में रहना चाहते हैं या पाकिस्तान में जाना चाहते हैं, वहां सीमा प्रान्त की असेम्बली को यह अधिकार नहीं दिया गया था। सीमा प्रान्त की असेम्बली और इस असेम्बली के प्रतिनिधित्व और प्रतिनिधि अस्तित्व को अंग्रेज़ों ने पीछे डाल दिया। यह पश्तूनों की सम्पूर्ण जाति का अनादर था, जिसे हम किसी अवस्था में भी सहन नहीं कर सकते थे।

मुझे खेद और दुःख इस बात का है कि कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने भी हमारे लिए कोई आत्मसम्मान की भावना का प्रदर्शन न किया और हमारी तुच्छ-सी सहायता के लिए भी, जिसकी हमें उससे आशा थी, हमारे आड़े नहीं आई। उसने हमारे हाथ-पांव बांधकर हमें शत्रुओं के हवाले कर दिया, लेकिन कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की कठोरता, उपेक्षा और उदासीनता या निष्क्रियता आसाम के प्रान्त के प्रति ऐसी नहीं थी हालांकि वहां के प्रधान मंत्री गोपीनाथ बारदोलाई ने दलबन्दी मानने से इन्कार कर दिया था (क्रिप्स लारेंस प्लान, १९४६)

और शोर मचा दिया था। बारदोलाई की चीख-पुकार व शोर के कारण कांग्रेस इस बात पर अड़ गई थी और उसने दलबन्दी की वह योजना नहीं मानी थी, हालांकि मैं उसका विरोधी नहीं था। जब मुझसे गांधीजी ने पूछा, तो मैंने उन्हें कह दिया था कि विभाजन के स्थान पर अन्य हरएक योजना अच्छी है। इस स्थिति में और ऐसे बर्ताव के पश्चात् एक पठान के रूप में हमसे पूछना सर्वथा अनुचित और युक्तिहीन था कि आया हम भारत के साथ रहना चाहते हैं या पाकिस्तान में जाना चाहते हैं। चूंकि कांग्रेस ने, जो भारत की प्रतिनिधि संस्था थी, हमें न केवल अपने से दूर ही फेंक दिया था, अपितु शत्रुओं के हवाले कर दिया था। इनसे मिलना तो हमारी पठानी मर्यादा, आत्मसम्मान और नैतिकता के लिए एक प्रकार की मृत्यु थी। रह गया पाकिस्तान का प्रश्न, तो इस समस्या पर हमने मुस्लिम लीग के मुक़ाबले में अपने प्रान्त में चुनाव लड़ा था। फिर हमें नये सिरे से सिरदर्दी मोल लेने की क्या आवश्यकता थी? हमने इसी कारण से मांग की कि हमारे सामने यदि कोई जनमत संग्रह कराने का सुझाव रखता है तो बिस्मिल्लाह, वह मैदान में आए और 'पश्तूनिस्तान' और 'पाकिस्तान' के विषय पर जनमत संग्रह कर लिया जाए।

हमारी इस मांग पर भी किसीने कान न धरा। हमपर जनमत संग्रह ठूंस दिया गया। चूंकि हम जनमत संग्रह में भाग नहीं ले रहे थे, इसलिए मुस्लिम लीग के लिए मैदान साफ़ था। उनसे जो चालाकी, फ़रेब और ज़ोर-ज़बरदस्ती हो सकती थी वह उन्होंने की; लेकिन फिर भी एक सौ में से ५०·१ वोट मर-मरकर ले सके, जो एक जाति के भाग्य का निर्णय करने के लिए किसी अवस्था में भी पर्याप्त नहीं थे। अंग्रेज़ों ने केवल यह नहीं किया कि एक न्यायप्रिय सरकार की भांति अपने-आपको इस जनमत संग्रह में तटस्थ न रखा, अपितु उन्होंने स्वयं प्रत्यक्ष रूप से वोटों में अपनी पुलिस और सेना के द्वारा भाग लिया और अपनी सेना तथा पुलिस के कर्मचारियों को सदलबल पोलिंग स्टेशनों पर भेजा कि वे उन लोगों के नाम से जाली वोट डालें, जिन्होंने मतदान नहीं किया था।

इस सम्बन्ध में मेरे एक जेल के साथी कर्नल बशीर ने हरिपुर हज़ारा की सैण्ट्रल जेल में १९५८ में मुझे एक घटना सुनाई थी, जबकि वह सेना में था और उसकी कम्पनी बन्नू के निकट लितम्बर में नियुक्त थी। उसने बताया कि वह तीन बार अपनी कम्पनी और उसके जवानों को पोलिंग स्टेशन पर ले गया था, ताकि वह पाकिस्तान के पक्ष में उनसे

जाली वोट डलवाए। कर्नल वशीर को बाद में इन्टैलिजेन्स (गुप्तचर) विभाग में एक बड़ा अधिकारी नियुक्त किया गया था। फिर वह पेन्शन पर चला गया था। उसको एक अपराध में दो वर्ष के लिए क़ैद की सज़ा हुई थी और वह मेरे साथ एक ही जेल में रहता था।

सीमा प्रान्त के इस जनमत संग्रह के सिलसिले में लाखों की संख्या में सुर्खपोशों अर्थात् खुदाई खिदमतगारों के वोट सरकारी कर्मचारियों और उनके उच्छिष्ट भोक्ता अर्थात् मुस्लिम लीगियों ने जाली तौर पर डाले थे, क्योंकि सुर्खपोशों ने जनमत संग्रह का बहिष्कार कर रखा था। अस्तु, खान अमीर मुहम्मद खां का झूठा वोट भी ऐसे वोटों में शामिल था और मेरी जो आशंका थी वह सत्य सिद्ध हुई।

पाकिस्तान की अठारह वर्षीय ज़िन्दगी में मुझे पन्द्रह वर्ष जेलखानों में रखा गया है। फिर इसी क़ैद में, जो खुदा किसीको न दिखाए—आमीन—इस अवधि में हज़ारों की संख्या में खुदाई खिदमतगारों को मौत के घाट उतार दिया गया—क़ैद व बन्द में रखा गया और उनके साथ ऐसे अनुचित व्यवहार हुए हैं और उनपर ऐसे ज़ुल्म तोड़े गए हैं, जिन्हें मानवता सहन नहीं कर सकती।

भारत की उस विधानसभा का मुस्लिम लीग ने बहिष्कार किया था। मैंने मुसलमान सदस्यों से इस समस्या पर पर्याप्त बहस की थी और उन्हें कहा था कि आइए, विधानसभा में चले जाएंगे और उसमें यह प्रस्ताव रखेंगे कि भारत में समाजवादी लोकतन्त्र स्थापित किया जाए। यदि हिन्दुओं ने हमारा यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो हम संघ (फेडरेशन) में शामिल रहेंगे और उन्होंने हमारा यह प्रस्ताव स्वीकार न किया, तो हम अपने-अपने प्रान्तों में संघ से विलग होने का प्रस्ताव स्वीकृत कर देंगे। यह अधिकार हमें प्राप्त है कि संघ से विलग हो जाएं और हमारा प्रान्त एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न राज्य बन जाए। लेकिन मुसलमानों पर एक ऐसी चाल चली गई थी कि वे किसी प्रकार की बात पर विचार-मनन करने के लिए तैयार नहीं थे और मुझे तो एक घड़ाघड़ाया उत्तर देते थे कि 'तुम हिन्दू हो!'

इस दौरान भारत मंत्री लार्ड पैथिक लारेंस के नेतृत्व में लन्दन से एक 'कैबिनेट मिशन' आया था और कांग्रेस के उस प्रतिनिधिमण्डल का, जो उनसे बातचीत करने के लिए बनाया गया था, मैं भी एक सदस्य था। चार व्यक्ति हम कांग्रेस के थे—अबुलकलाम आज़ाद, जवाहरलाल, सरदार पटेल और मैं—और चार आदमी मुस्लिम लीग के थे—जिन्ना, लियाक़त अली, नवाब इस्माईल और अब्दुर्रब निश्तर। बातचीत

शिमला में आरंभ हुई। दूसरे दिन बातचीत के बारे में हमने यह कहा कि सबसे पहले आप लोग ब्रिटिश मंत्रिमण्डल के सदस्यों से यह फ़ैसला करें कि आया वे भारत को आज़ाद करने और अपनी सेनाएं भारत से निकालने के लिए तैयार हैं या नहीं? ऐसा न हो कि आप लोगों से दूसरी बातों में वास्तविक उद्देश्य गोलमाल हो जाए।

दूसरे दिन जब हम वार्तालाप करने के लिए गए और अधिवेशन आरंभ हुआ तो जवाहरलाल नेहरू ने ये दोनों बातें पेश कर दीं। वायसराय लार्ड वेवल ने पण्डितजी से कहा, "हम तो भारत छोड़ते हैं, लेकिन यह तो बताइए किसके हवाले करें? आप लोग आपस में निर्णय कर लें।"

पं० जवाहरलाल नेहरू ने लार्ड वेवल को उत्तर दिया, "मुस्लिम लीग के हवाले कर दीजिए, लेकिन आप अवश्य चले जाइए।"

इस बात का प्रभाव मि० जिन्ना पर भी हुआ और उन्होंने कह दिया कि अच्छी बात है, हम घर में फ़ैसला कर लेंगे। अधिवेशन स्थगित हो गया। जिन्ना साहब और जवाहरलाल नेहरू उठ खड़े हुए और दूसरे कमरे में चले गए। एक-दो घण्टे के पश्चात् बाहर आए और निश्चय यह हुआ कि तीन सदस्यों की एक समिति बनाई जाए जिसके लिए एक सदस्य कांग्रेस निर्वाचित करे, एक मुस्लिम लीग; और इन दोनों का सरपंच दोनों की सहमति से नियुक्त किया जाए। जो फ़ैसले हम आपस में सर्वसम्मति से कर लेंगे, वे तो ठीक होंगे और जिन बातों पर हमारा मतभेद हो जाएगा, उनका फ़ैसला यह तीन सदस्यों की समिति करेगी।

इस समिति के सदस्यों के निर्वाचन के लिए दो दिन निश्चित किए गए। तीसरे दिन जब हम आपस में मिलकर बैठे और लार्ड पैथिक लारेंस ने जो अत्यन्त शरीफ़ अंग्रेज था, जब जिन्ना साहब से पूछा, तो जिन्ना साहब इस सारे निश्चय ही से मुनकिर हो गए। उस समय मैंने निश्तर साहब को संकेत किया। वे मेरे पास आ गए। मैंने उनसे कहा कि जिन्ना साहब से कहिए कि वे खेल न बिगाड़ें; क्योंकि गांधीजी ने मेरे सामने अपने साथियों से कहा है कि मुसलमान जो कुछ भी मांगें, वह उन्हें दे दें, लेकिन फ़ैसला सर्वसम्मति से कर लें।

निश्तर साहब चले गए और जिन्ना साहब के पीछे खड़े हो गए, लेकिन जिन्ना साहब ने उनकी ओर कोई ध्यान ही न दिया। निश्तर साहब कुछ समय तक खड़े रहने के पश्चात् फिर अपने स्थान पर बैठ गए और वह सारा मुआमला खिचड़ी हो गया। सत्य बात तो यह थी कि अंग्रेज़ हिन्दू-मुस्लिम एकता और संगठन नहीं चाहते थे और भारत

का विभाजन करने पर तुले हुए थे।

जब कांग्रेस और मुस्लम लीग के मध्य कोई समझौता न हो सका, तो कैबिनेट मिशन ने अपना निर्णय दे दिया और अपने फ़ैसले की घोषणा करके मिशन वापस चला गया। तब वायसराय ने भारत में अन्तरिम सरकार स्थापित कर ली और इंगलैंड की संसद ने यह घोषणा कर दी कि छः महीने के पश्चात् हम भारत छोड़ देंगे। कुछ मतभेद के कारण कांग्रेस ने अन्तरिम सरकार स्थापित करने से इन्कार कर दिया था। मुस्लिम लीग ने निश्चय कर लिया था कि यदि कांग्रेस ने सरकार स्थापित न की तो मुस्लिम लीग कर लेगी। लेकिन वायसराय ने मुस्लिम लीग का यह सुझाव स्वीकार न किया। अन्त में कांग्रेस ने अन्तरिम सरकार बना ली।

जब यह सरकार स्थापित हो गई, तो मैंने जवाहरलाल से कहा कि सीमा प्रान्त के क़बाइलियों पर करोड़ों रुपया ख़र्च होता है। वास्तव में वह रुपया स्वयं अंग्रेज़, क़बीलों के सरदार, मलिक और नौकर-चाकर खा जाते हैं। सीमा प्रान्त और उसके निवासी इस सहायता से सर्वथा वंचित रह जाते हैं। इस प्रकार इस भारी-भरकम व्यय के बावजूद उन लोगों को कोई लाभ नहीं पहुंचता। अब जबकि अधिकार हमारे हाथ में आ गया है, अब यह इलाक़ा स्वयं अपनी आंखों से देख लें। उन लोगों से मिल लें। वे लोग बड़े बेबस और आक्रान्त हैं। उनका इलाक़ा अधिकांश पहाड़ ही पहाड़ है और यदि थोड़ा-सा उपकार भी इनपर हो जाए और उनके निर्वाह के लिए कोई साधन पैदा हो जाए एवं उनके बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था हो जाए तो इस बात का प्रभाव उन लोगों पर बहुत अच्छा होगा। यह गड़बड़ जो कभी-कभार वहां हो जाती है, उसका भी अन्त हो जाएगा।

जवाहरलाल को मैंने इस बात पर सहमत कर लिया और उन्होंने मुझको वचन दे दिया कि वे सीमा प्रान्त में आएंगे और अवश्य उन लोगों और उस इलाक़े को देखेंगे तथा जितना कुछ भी उनसे हो सकेगा, वे उन लोगों के लिए करेंगे। लेकिन जिस समय जवाहरलाल ने सीमा प्रान्त जाने का इरादा कर लिया तो वायसराय ने विरोध किया और उन्हें क़बाइली इलाक़े में जाने से मना किया। पण्डित नेहरू ने वायसराय से कहा कि उन्होंने इस इलाक़े में जाने का वचन दे रखा है, इसलिए वे अवश्य जाना चाहते हैं।

वायसराय समझ गए कि नेहरू टलनेवाले व्यक्ति नहीं हैं। उन्होंने नेहरू के इरादे का विरोध करना छोड़ दिया, लेकिन उनके पीछे सीमा

प्रान्त के गवर्नर को लगा दिया। उस समय सीमा प्रान्त का गवर्नर सर ओल्फ़ कैरो था। वह मुस्लिम लीग का समर्थक था। वह पण्डित नेहरू से मिलने के लिए दिल्ली गया और उनके पास तीन दिन और तीन रात ठहरा, लेकिन उसने नेहरूजी की इस बात से सहमति प्रकट न की।

दिल्ली से वापस आकर सर ओल्फ़ कैरो ने समस्त राजनीतिक अभिकर्ताओं को हमारे विरुद्ध बुरी तरह भड़का दिया। जब नेहरू साहब सीमा प्रान्त में पधारे, तो हमने क़बाइली इलाक़े का भ्रमण आरंभ कर दिया। हमें मालूम हो गया कि हमारे लिए कितनी कठिनाइयां पैदा की गई हैं और वे सब कठिनाइयां, जो हमारे मार्ग में उपस्थित थीं, सब गवर्नर की पैदा की हुई थीं। हमने पहले-पहल अपना दौरा वज़ीरिस्तान से आरंभ किया। वज़ीरिस्तान के समस्त राजनीतिक अभिकर्ता अंग्रेज़ थे। उनमें इतनी भद्रता अवश्य थी कि उन्होंने हमारा मुक़ाबला भद्रतापूर्ण रीति से किया। उन्होंने यह किया कि जिस समय मीरानशाह में जिरगा बैठ गया और हमने जिरगा को सम्बोधित किया, तो जिरगा उठ खड़ा हुआ। जिरगा ने यह बात कही कि वे हिन्दुओं की सरकार नहीं चाहते और जब हम मीरानशाह से रज़्मक पहुंचे, तो वहां भी केवल यही कुछ हुआ। फिर हम वाना गए, तो वहां भी यही कुछ हुआ। इसके बाद जब हम लोग वहां से वापस दोबारा मीरानशाह आए, तो उन समस्त राजनीतिक अभिकर्ताओं से, जिनके साथ रेज़ीडेण्ट भी मौजूद था, जवाहरलाल ने पूछा कि यह जो करोड़ों रुपया इस इलाक़े पर खर्च हो रहा है, इस रुपये से आप लोगों ने इन लोगों के लिए क्या-क्या किया है?

राजनीतिक अभिकर्ताओं (पोलिटिकल एजेण्टों) के पास इस बात का कोई उत्तर नहीं था। मैंने हस्तक्षेप करते हुए कह दिया कि 'इन्होंने पठानों के लिए बहुत कुछ किया है।' अंग्रेज़ मेरी इस बात पर कुछ प्रसन्न हुए, लेकिन ज्योंही अपनी इस बात के बाद मैंने यह कहा कि इन्होंने पश्तूनों को इस क़दर निरुत्साह और नैतिक रूप से दुर्बल तथा इतना धनलोलुप बना दिया है कि पठान को पैसा दिखा दो, तो चाहे उनका देश, इस्लाम और जाति सब कुछ 'दरया बुर्द हो जाएं' (नदी में डूब जाएं), उन्हें इन चीज़ों की चिन्ता नहीं। वे कहते हैं, उनकी बला से ये सब कुछ बह जाए या डूब जाए, लेकिन उनके पैसे बन जाएं।

मेरी यह बात सुनकर वे अंग्रेज़ जो मेरी पहली बात से प्रसन्न हो गए थे, बहुत रुष्ट हो गए। अस्तु, जिस समय हम खाना खाने बैठे, तो वाना के एक नवयुवक राजनीतिक अभिकर्ता ने मुझसे पूछा, "क्या सच-

मुच हमने इस देश के लिए कुछ नहीं किया ?"

मैंने उत्तर दिया, "बखुदा कुछ भी नहीं किया और यदि कुछ किया है, तो मुझे दिखा दो।"

मेरे इस उत्तर से उसपर क्या बीती होगी, उसपर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं थी और हमें अवकाश भी नहीं था। हम वहां से टांक चले गए और टांक से जण्डोला गए। उस स्थान का राजनीतिक अभिकर्ता एक हिन्दू था, जिसका नाम दीवान शिवसरनलाल था। यहां क़बाइलियों ने हमारा भव्य स्वागत किया। हमारे पास दुम्बे ले आए और हमारे तथा उनके मध्य जितनी बातें हुईं, उन्होंने सब बातों का समर्थन किया और सहमति भी प्रकट की। जब हम जण्डोला की ओर जा रहे थे, तो स्थान-स्थान पर क़बाइली हमारे स्वागत के लिए खड़े हुए थे। इस स्थान से चलकर हम लोग पेशावर वापस आ गए।

दूसरे दिन हम खैबर चले गए। इस स्थान का राजनीतिक अभिकर्ता मुसलमान था। नाम था उसका साहबज़ादा खुरशीद। जब पहले-पहल हमारा क़ाफिला जमरूद पहुंचा, तो सड़क से थोड़े फ़ासले पर आफ़रीदी बैठे हुए थे। उन्होंने हाथों में जूतियां ली हुई थीं और उन जूतियों को हमारी ओर करके हिला रहे थे। इसके बाद हम लोग 'तोरखाम' तक चले गए (यह अब पाक-अफ़ग़ान सीमा है)। तोरखाम में जब चाय पीने के पश्चात् हम लोग मण्डी कोतल पहुंचे, तो लोग सड़क के किनारे बैठे हुए थे और हमपर पत्थर बरसा रहे थे। राजनीतिक अभिकर्ता की मोटर हमसे आगे थी। उसने तुरन्त अपनी मोटर रोक ली और मोटर से उतर पड़ा। सिपाही उसके साथ थे। उन लोगों पर बन्दूकें दागी गईं और वे वहां से भाग खड़े हुए। पथराव से हमारी मोटर के के शीशे टूट गए। लेकिन हममें से किसीको चोट न आई और न हममें से किसीको पत्थर लगा। केवल हमारे साथ एक अंग्रेज़ था, वह उतर गया था क्योंकि फोटो लेना चाहता था। उसे एक पत्थर अवश्य लगा था।

हमारा दूसरे दिन का दौरा मालाकण्ड एजेन्सी के लिए था। हमें सूचना मिली थी कि मालाकण्ड का राजनीतिक अभिकर्ता पेशावर गया था और उसने गवर्नर से भेंट की थी। यह व्यक्ति अंग्रेज़ों का एक बहुत बड़ा दुष्ट एजेंट था। उसपर कमीनापन खत्म था। उसका नाम शेख महबूब अली था। उसी शेख महबूब अली के हाथों हमारी जाति ने बड़े कष्ट उठाए और मानसिक अथवा आत्मिक यातनाएं उठाई हैं। यह वह व्यक्ति था, जो काबुल में अंग्रेज़ दूत डेविड हैम्फ़री की चाकरी में इस-

लिए नाम पैदा कर चुका था कि अफ़ग़ानिस्तान में अमानुल्लाह की सरकार का तख़्त उलटने और बच्चा सक़्क़ा को सत्तारूढ़ करने में कार्यशील रहा था। हमारे साथ जो अप्रिय घटनाएं हुईं, वे उसी व्यक्ति के कारण से हुईं। इन घटनाओं में एक घटना मालाकण्ड की भी है।

मनुष्य अभिमान और गर्व में भगवान को भूल जाता है और इस उन्माद में जाने क्या कुछ कर बैठता है। लेकिन ख़ुदा की बेआवाज़ लाठी और रौद्रभाव को कभी नहीं भूलना चाहिए। संसार जानता है कि आज महबूब अली के घर गधे रेंकते हैं। अन्तिम जीवन में वह इतना अपमानित और दुःखी तथा शोकाकुल हुआ कि उसकी दशा देखकर किसी पत्थर-दिल आदमी का दिल भी टुकड़े-टुकड़े हो सकता था। उसके घर में दो लड़कियां और एक औरत थी। उसकी एक लड़की को उसके भतीजे ने उसके घर के भीतर उसके सामने पिस्तौल की गोली से उड़ा दिया। दूसरी लड़की अपनी मौत मर गई और उसकी बीवी उसका सारा धन-सम्पत्ति लेकर भाग गई। आज देश में उसका नाम व निशान तक बाक़ी नहीं रहा। उसकी न कोई सन्तान है और न कोई घर-बार है और न प्रतिष्ठा है, और वह स्वयं भी ख़ुदा को हिसाब देने के लिए संसार से उठ गया है।

मालाकण्ड एजेंसी का राजनीतिक अभिकर्ता वही शेख़ महबूब अली था। मैंने जवाहरलाल से पूछा कि मालाकण्ड जाएंगे? उन्होंने उत्तर दिया कि हम अपना कार्यक्रम तो नहीं छोड़ेंगे। वज़ीरिस्तान में हमारे साथ सेना भी थी। लेकिन जब ख़ैबर जा रहे थे, तो साथ सेना नहीं थी, पुलिस थी। मैंने डाक्टर ख़ान साहब से कहा कि हम मालाकण्ड जाएंगे, इसलिए सेना का कुछ प्रबन्ध कीजिए और यदि आप सेना का प्रबन्ध नहीं कर सकते, तो हम अपने ख़ुदाई ख़िदमतगारों का प्रबन्ध कर लेते हैं और देखिए कि पुलिस का वर्तमान प्रबन्ध कदापि स्वीकार न कीजिए।"

डाक्टर साहब ने कहा, "बहुत अच्छा। मैं अवश्य सेना का प्रबन्ध करूंगा।"

लेकिन जब हम रिसालपुर पहुंचे, तो क्या देखते हैं कि वही पुलिस खड़ी है। उसे देखते ही मैं बहुत भिन्नाया। एक बार तो मैंने इरादा किया, इन (जवाहरलाल, डाक्टर ख़ान साहब और उनके दल) के साथ न जाऊं। फिर मैंने सोचा कि जवाहरलाल तो मेरी ख़ातिर आए हैं, अतः उन्हें तो मैं अकेला नहीं छोड़ूंगा। अस्तु मैं विवशतः उनके साथ चल पड़ा। हम मालाकण्ड में निश्चित समय से पहले पहुंच गए। वहां कोई

भी नहीं था । जब हम दुर्ग में बैठे चाय पी रहे थे, तो इस अवधि में हमने कुछ नारे सुने कि यह शेख (महबूब अली) का लशकर है और उस समय के अनुसार आया है, जो उसे बताया गया था, लेकिन हम तो उस लशकर के आगमन से पहले ही पहुंच चुके थे ।

इस एजेन्सी (मालाकण्ड) में भी हमारे खुदाई खिदमतगार थे। हमारा एक प्रतिष्ठित कार्यकर्ता राहत खां रात को हमारे पास आया। उसने सूचना दी कि शेख महबूब अली ने बहुत-से लोग बुलाए हैं, इसलिए हम बहुत सतर्कता और विचार से काम लें। हमने रात तो मालाकण्ड में व्यतीत की । शेख महबूब अली हमारे डाक्टर साहब की बहुत मिन्नत-खुशामद और चापलूसी करता रहा । यही डाक्टर साहब की दुर्बलता थी कि वे खुशामद और चापलूसी के सामने नहीं ठहर सकते थे । जब सवेरा हुआ और हमारे कूच करने का समय होने लगा तो मेरे पास एक खुदाई खिदमतगार आया और उसने सूचना दी कि हम लोगों के रास्ते में बहुत-से लोग खड़े किए गए हैं, अतः रवाना होने से पहले हमें अपना प्रबन्ध कर लेना चाहिए, मैंने डाक्टर साहब को अलग ले जाकर उन्हें इस बात से सावधान किया ।

शेख महबूब अली दूर खड़ा था और हमें देख रहा था । फिर वह धीरे-धीरे डाक्टर साहब के पास आया और उनसे पूछने लगा कि क्या बात है ? डाक्टर साहब ने परिस्थिति के बारे में बता दिया । इसपर उसने डाक्टर साहब से कहा, "क्या आप मेरे बाप नहीं ? मैं पख्तून नहीं हूं क्या ? क्या मैं ऐसा हरामी हूं कि आपसे ग़लत अथवा अनुचित बर्ताव करूंगा ?"

डाक्टर साहब ने हमसे कहा कि चलो, चलें । डाक्टर साहब ने शेख महबूब अली के भर्रे में आकर गार्ड पुलिस का प्रबन्ध भी न किया और चल पड़े । शेख आगे-आगे जा रहा था और हम उसके पीछे रवाना हुए । दुर्ग के दरवाज़े में अंग्रेज़ जवाहरलाल के लिए खड़े हुए थे। हमने मोटर रोक ली । उन्होंने जवाहरलाल नेहरू से विदा अभिवादन किया । इतने में शेख महबूब अली वहां से रफ़ूचक्कर हो गया । जब हम दुर्ग से बाहर निकले और अंग्रेजों से थोड़ा इस ओर हुए तो देखा, बहुत-से लोग खड़े थे । उन्होंने हमपर पत्थरों की वर्षा आरम्भ कर दी । उन्होंने सड़क पर एक लारी खड़ी कर रखी थी और सड़क बन्द कर दी थी । हमपर पत्थर बरस रहे थे । एक पत्थर मेरी पीठ में लगा । मैं कुछ बेहोश हो गया । हमारे साथ एक जमादार मोटर में आगे बैठा हुआ था वह पत्थरों से बचने के लिए सीट पर झुक गया था । उसके पास पिस्तौल था जिस-

पर डाक्टर साहब की नज़र जा पड़ी। डाक्टर साहब ने तुरन्त पिस्तौल उसके केस से बाहर खींच लिया और मोटर से अपना हाथ बाहर निकाला, और जो लोग हमें पत्थर मार रहे थे, उन्हें आवाज़ दी कि वे हट जाएं और बाज़ रहें, अन्यथा गोली चलाई जाएगी। लोगों ने पिस्तौल देखा, तो हटकर दूर चले गए। आगे लारी खड़ी थी। डाक्टर साहब ने फिर वही पिस्तौल लारी के ड्राइवर को दिखाया और कहा, "रास्ता छोड़ दो, नहीं तो अभी जहन्नुम भेजे देता हूं।"

ड्राइवर भी लारी लेकर रास्ते से हट गया। इस प्रकार हम विपत्ति से बच गए। हमें दुर्ग के दरवाज़े के अन्दर पत्थर मारे गए और अंग्रेज हमें पिटते देख रहे थे और कुछ नहीं करते थे, जबकि हमारे साथ केन्द्रीय सरकार के प्रधानमंत्री जवाहरलाल थे, जिनके हाथ में क़बाइलियों की बागडोर भी थी। उनके अतिरिक्त सीमा प्रान्त के प्रधान-मंत्री डाक्टर खान साहब भी हमारे साथ थे। जब हम लोग मालाकण्ड के पहाड़ से नीचे उतरे, तो ठहर गए, क्योंकि हमारी मोटर के शीशे टूट चुके थे और हम घायल हो गए थे। हम लोग मोटर से उतर पड़े। इतने में हम क्या देखते हैं कि हमारी गारद हमारे सामने आ गई है। मरदान का डिप्टी कमिश्नर, जिसका नाम कर्टिस था, वह हमारी गारद का इंचार्ज था और उसे सरकार ने हमारी रक्षा के लिए नियुक्त किया था। वह हमारे पास आया और डाक्टर साहब के सामने कुछ बहाने और क्षमा-याचना करने लगा। जबकि वह और शेख महबूब अली आपस के सलाह-मशवरे से यह सब कुछ कर रहे थे।

हम इस स्थान से प्रस्थान कर रहे थे तो मैंने डाक्टर खान साहब से कहा, "आप अपनी गारद को आदेश दें कि उनकी एक लारी हमसे आगे रहे और दूसरी हमारे पीछे; तथा जब सड़क पर आदमियों को देखें, तो आगेवाली लारी ठहर जाए। सिपाही नीचे उतर आएं और उन लोगों को खदेड़ दें। और यदि वे तितर-बितर न हों, तो उनपर लाठी चार्ज करें। यदि फिर भी वे न बिखरें, तो उनपर यह दूसरी लारीवाले गोली चला दें। खैर, हम मालाकण्ड से नीचे उतरे और दरगई पहुंच गए। हमने देखा रास्ते में यहां भी लोग खड़े थे और उन्होंने हमें पत्थर मारे। एक पत्थर, जो एक व्यक्ति ने जवाहरलाल की ओर फेंका था, मैंने अपने हाथ पर झेल लिया और जवाहरलाल बच गए, परन्तु मेरा हाथ टूट गया। एक व्यक्ति ने मैले की एक हंडिया उठा रखी थी। उसने वह हंडिया मोटर पर दे मारी। मैं और जवाहर लाल दोनों बच गए, लेकिन डाक्टर साहब मैले से लथपथ हो गए।

हम बड़ी मुसीबत से पेशावर पहुंचे। वह सारी मुसीबत डाक्टर साहब के कारण देखने को मिली। यदि उन्होंने हमें अपना प्रबन्ध करने दिया होता, तो हम अपना प्रबंध सुचारु रूप से कर सकते थे। दूसरे ही दिन हमारे केन्द्र में जलसा था। हमने वहां ऐसा प्रबन्ध किया था कि सरकार के षड्यन्त्र के बावजूद किसी फ़सादी टोले को इतना साहस न हुआ कि हमारे या हमारे जलसे के पास भी फटकता।

दूसरे दिन हमने डाक्टर खान साहब को कहला भेजा कि हमने अपना प्रबन्ध कर लिया है। हमें आपकी और आपकी सरकार के प्रबन्ध की आवश्यकता नहीं। जब हमने अपना सारा प्रबन्ध सम्पन्न कर लिया और मैं जवाहरलाल के साथ बैठा हुआ था, तो मुझे सूचना मिली कि आज बहुत-से अंग्रेज़ डाक्टर साहब के बंगले में एकत्र हुए हैं और वे सेना का प्रबन्ध कर रहे हैं। इतने में स्वयं डाक्टर साहब हमारे पास आ गए। मैंने उन्हें कहा कि उन अंग्रेज़ों को विदा कीजिए। हमें उनकी और उनकी सेना की आवश्यकता नहीं। आज हमने अपना प्रबन्ध स्वयं किया है।

डाक्टर साहब ने कहा, "जाने दीजिए, कोई हर्ज़ नहीं। उन्हें प्रबन्ध करने दीजिए।"

मैंने डाक्टर साहब से कह दिया कि मैं उन्हें कदापि-कदापि आने नहीं दूंगा और मैं स्वयं बाहर निकला और अंग्रेज़ों से कह दिया कि जब हमें उनकी ओर से रक्षा और व्यवस्था की आवश्यकता थी, तो उन लोगों ने हमारी वह आवश्यकता पूरी न की। आज हमें उनकी और उनके प्रबन्ध की आवश्यकता नहीं है। हमने अपना प्रबन्ध स्वयं कर लिया है। अस्तु, वे कृपा करें और सिधार जाएं एवं हमारा पीछा छोड़ दें।

अंग्रेज़ों ने मुल्ला गोरी से मिलकर हमारे विरुद्ध षड्यन्त्र कर रखा था। मुल्ला गोरी पीर मांकी साहब के शिष्य हैं। अंग्रेज़ों ने उन्हें कहा था कि जो 'सुथरे' से होकर चार सद्दा की पक्की सड़क से निकली है, उस जगह (पेशावर से १४ मील के फ़ासले पर) जब हम पहुंचे, तो वे हमपर आक्रमण कर दें। लेकिन हमने पूरा प्रबन्ध कर रखा था। मुस्लिम लीग का इरादा तो फ़साद करने का था, लेकिन उन्हें साहस न हुआ। हमने पेशावर से अपने केन्द्र सरदरयाब तक सड़क के दोनों किनारों पर खुदाई खिदमतगारों को लाल वर्दियों से सज्जित करके खड़ा कर रखा था और गांवों के लोग, जिन्हें मालाकण्ड की घटना की सूचना मिल चुकी थी, भी अपने शस्त्र लेकर आए हुए थे। वे लोग सुर्खपोशों के पीछे खड़े हुए थे, क्योंकि खुदाई खिदमतगार तो हिंसा-

कार्य नहीं करते थे और शस्त्र अपने पास नहीं रखते थे, लेकिन साधारण पठानों पर तो यह प्रतिबन्ध नहीं था। उन्हें हमसे सहानुभूति थी और वे हमारे हमदर्द थे। वे लोग सुर्खपोश नहीं थे। वे कहते थे कि यदि कोई हिंसा करेगा, वे हिंसा का उत्तर हिंसा से देंगे।

मुस्लिम लीग के कुछ लोग फ़साद करने के इरादे से हमारे केन्द्र में आए भी थे, लेकिन उन लोगों ने इन शस्त्र-सज्जित ग्रामीणों को देखा, तो भाग गए। केन्द्र में लाखों लोग आए थे। ख़ुदाई ख़िदमतगारों ने जलसे का प्रबन्ध बहुत ही अच्छा किया था। जलसा बहुत ही सफल रहा। इस जलसे में ख़ुदाई खिदमतगारों की ओर से जवाहरलाल नेहरू को एक अभिनन्दन-पत्र दिया गया। जवाहरलाल नेहरू ने उसके उत्तर में भाषण किया और उसके पश्चात् मैंने भाषण किया। फिर जलसा विसर्जित हुआ। हम पेशावर वापस आ गए और दूसरे दिन जवाहरलाल नेहरू दिल्ली लौट गए।

२२

१९४५ में जब मैं जेलखाने से बाहर आया, तो उस समय बहुत बीमार था। मैं जेलखाने में सदा बीमार पड़ जाता हूं। उन दिनों महात्मा गांधी बम्बई में थे। उन्होंने मुझे लिखा कि मैं बम्बई आ जाऊं। मैं जब कभी बम्बई या सेवाग्राम जाता था, रास्ते में एक रात दिल्ली में देवदास गांधी के घर ठहरा करता था। देवदास की पत्नी मेरी अच्छी आवभगत किया करती थी और देवदास का घर मुझे अपने घर के ऐसा लगता था। मैं यह अनुभव नहीं करता था कि यह किसी ग़ैर या पराये का घर है। मैं बम्बई चला गया। गांधीजी बिड़ला के यहां ठहरे हुए थे। मैं भी उन्हींके साथ एक ही स्थान पर रहने लगा। एक दिन बातों-बातों में अहिंसा की चर्चा छिड़ गई। मैंने उनसे कहा, "गांधीजी! आपने तो लम्बे समय से भारत को अहिंसा की शिक्षा दी है, लेकिन मुझे थोड़ा समय हुआ है कि मैंने यह सबक पठानों को देना आरम्भ किया है। इस अहिंसा को पठानों ने भारतवासियों की अपेक्षा जल्द और अधिक सीख लिया है। आप देखिए कि १९४२ की इस जंग में भारत में कितनी हिंसा हुई, लेकिन सीमा प्रान्त में अंग्रेज़ों की ओर से इस क़दर उत्तेजना दिलाने और अत्याचार किए जाने के बावजूद एक भी पख्तून ने हिंसा नहीं की, जबकि हिंसा की सामग्री (शस्त्र) भी हम लोगों के पास अधिक होती है।"

इसके उत्तर में गांधीजी ने मुझसे कहा, "अहिंसा क़ायर व्यक्ति का काम नहीं है, यह बहादुर व्यक्ति का काम है। और पश्तून हिन्दुस्तानियों से अधिक बहादुर हैं। यही कारण है कि पठानों ने हिंसा नहीं की है।"

हरिजन कालोनी या सेवाग्राम में जब हम रहते थे और जब प्रार्थना का समय होता था, तो सबसे पहले मैं क़ुरान शरीफ़ का पाठ किया करता था। मेरे बाद एक जापानी बौद्ध अपने धर्म की स्तुति-स्तव गायन करता था। इसके पश्चात् हिन्दुओं की प्रार्थना आरम्भ होती थी। गांधीजी के मन में सब धर्मों के लिए समान श्रद्धा और सम्मान था और वे इन समस्त धर्मों को सत्य पर आधारित समझते थे और ठीक यही मेरी मान्यता और विश्वास था और है। क़ुरान और गीता का अध्ययन तो मैंने बड़ी अच्छी तरह से किया है। जब मैं सिखों के साथ डेरा ग़ाज़ी खां की जेल में था, तो उनसे मैंने ग्रन्थ साहब का बहुत-सा भाग सुना था। बुद्धमत के अध्ययन का मुझे बहुत शौक़ था, क्योंकि हम लोग स्वयं भी इस्लाम से पहले बौद्ध थे। लेकिन बौद्ध-धर्म की कोई पुस्तक मेरे हाथ नहीं लग सकी। अंजील को मैंने विद्यार्थी-जीवन ही में मिशन हाई स्कूल में पढ़ लिया था। 'तौरात' मैंने थोड़ी-बहुत जेलख़ाने में पढ़ी थी। जरथुश्त के पारसी धर्म की पुस्तकों के अध्ययन की बहुत लगन थी, क्योंकि वह हमारी पठान जाति का धर्म-दूत था, जो अफ़ग़ानिस्त में बलख़ का रहनेवाला था। किन्तु उस समय तक यह साहित्य मुझे प्राप्त नहीं हो सका था। ख़ुरशीद बहन और कुछ अन्य पारसी मित्रों को मैंने इसके लिए कहा था, किन्तु किसीने कोई पुस्तक मेरे पास नहीं भेजी। मेरा धर्म सच्चाई, प्रेम-प्रीति और भगवान के समस्त जीवों की सेवा है। धर्म सदा संसार में प्रेम-प्रीति और भाईचारे का सन्देश लेकर आता है। जिन लोगों के दिलों में मानव-जाति के लिए हित-चिन्तन और प्रेम-प्रीति नहीं होते और जिन लोगों के दिल में घृणा होती है, ऐसे व्यक्ति धर्म से बहुत दूर होते हैं। वे धर्म की सत्यता से सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं।

१९४६ में भारत में जो दंगे आरम्भ हुए थे उनका आरम्भ मुस्लिम लीग ने अपने कलकत्ता के डायरेक्ट एक्शन से किया था। कलकत्ता के दंगों के आरम्भ में तो हिन्दुओं के कुछ आदमी मारे गए थे। लेकिन जब हिन्दुओं और सिखों ने मुस्लिम लीग की भांति हिंसात्मक कार्यवाहियां कीं, तो इस स्थान पर मुसलमानों की भारी धन-हानि और जन-हानि हुई। मुस्लिम लीग ने इस सिलसिले को जारी रखने के लिए नोआखाली में कलकत्ता का प्रतिशोध लेने के

बहाने हिन्दुओं का जीना दूभर कर दिया और ऐसे अत्याचार तथा निर्लज्जतापूर्ण कार्य किए कि मानवता ने लज्जा के मारे अपना मुंह छिपा लिया। फिरंगी नीति—'फूट डालो और शासन करो'—के अनुसार हिन्दुओं को भी अपने जाल में ले आया और हिन्दुओं ने नोआखाली का बदला लेने के बहाने बिहार में चंगेज़ और हलाकू की याद ताज़ा कर दी। मुस्लिम लीगियों के मन की मुरादें लहलहा उठीं। वे ख़ुदा से यही दिन मांगते थे।

इस प्रकार के घृणित और अपवित्र इरादों के साथ मुस्लिम लीगी या तो सत्तारूढ़ होना चाहते थे या देश से टुकड़े करने पर तुले हुए थे। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दंगों की आग लगा दी, और अपने हाथ रंगने आरम्भ कर दिए। अंग्रेज़ लीगियों के इन कारनामों पर बड़े ख़ुश थे, क्योंकि भारत की इन ख़ामस्तियों से अंग्रेज़ नौकरशाही इंगलिस्तान के मज़दूर दल की सरकार के प्रति यह बात स्पष्ट और प्रमाणित करना चाहती थी कि भारत के लोग हिंस्र जन्तुओं की भांति एक-दूसरे के रक्त के प्यासे हैं और एक-दूसरे का मांस-त्वचा उधेड़ने के लिए कटिबद्ध हैं एवं मनुष्यों की भांति रहने के विवेक का तो उनमें सर्वथा अभाव है। अतः उनके सिरों पर अंग्रेज़ की सरकार का प्रभुत्व आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं होगा, तो वे एक-दूसरे को तबाह और बरबाद कर देंगे।

मुस्लिम लीग अंग्रेज़ों की अपनी उपज थी। इसलिए उसने भी उस स्थिति का अनुचित लाभ उठाना पसन्द किया। उधर देश की शान्ति व व्यवस्था मिटाने के लिए अंग्रेज़ मुस्लिम लीगियों के पृष्ठ-पोषक एवं आश्रयदाता थे।

मैं स्वयं बिहार में गया था। पटना के ज़िले में मुसलमानों की बड़ी भारी हानि हुई थी। इस प्रान्त में स्थान-स्थान पर घरों को लूटा और बरबाद किया गया था तथा आग लगा दी गई थी। बहुत-से लोग मारे भी गए थे। मैंने जब उस इलाक़े का भ्रमण आरम्भ किया और गांवों को जाकर देखा, तो वे निर्जन और ध्वस्त पड़े थे और लोग वहां से भाग गए थे। जो लोग वहां रह गए थे वे सब शिविरों में पड़े थे। लेकिन उनकी इतनी तबाही व विनाश पर मुस्लिम लीग का हृदय अभी शीतल नहीं हुआ था। लीगी उसी प्रकार साम्प्रदायिक षड्यन्त्रों में जुटे हुए थे और उन्हीं पीड़ित आक्रान्त लोगों के मूल्य पर राजनीतिक लाभ संग्रह कर रहे थे। वे उन्हें यह प्रेरणा दे रहे थे कि बंगाल में हिज्रत 'कर जाओ'। इधर मैं इस चिन्ता में डूबा हुआ था कि उन बेघर और बरबाद लोगों

को फिर से उनके अपने पैतृक गांवों और घरों में आबाद कर दूं। लेकिन उन लोगों को मुस्लिम लीगियों ने ऐसी तान पर चढ़ा रखा था कि मेरी बातें उन्हें अच्छी नहीं लगती थीं। इसलिए मैं मुस्लिम लीगियों के पास गया। वे लोग किन्हीं मुहम्मद यूनस बैरिस्टर के भव्य भवन में डेरा डाले हुए थे, और जब कभी मैं उनके यहां गया, उन्हें खाने-पीने में व्यस्त पाया।

मैंने उनसे कहा, "मैं आप लोगों के पास आया हूं और आपकी सेवा में यह निवेदन करता हूं कि बहुत हो चुका, अब उन ग़रीबों को बख्श दो। यह जो तबाही उनकी हो चुकी है, क्या कम तबाही है? यदि आप लोग उन्हें बंगाल में हिज्रत कर जाने का परामर्श देते हैं और यथार्थ रूप में उन्हें वहां बसाना चाहते हैं, तो मुझे इस बात पर कोई आपत्ति नहीं है। यदि उन्हें अपने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए साधन बनाना चाहते हैं, तो यह उचित नहीं है। वे लोग काफ़ी तबाह हो चुके हैं। उन्हें अधिक बरबाद न करें।"

लेकिन मुस्लिम लीगियों के हृदय में दया-भाव कहां था! उन्होंने बिहारी पीड़ितों व उखड़े हुए लोगों को बंगाल की ओर भिजवा दिया। वर्षा की ऋतु सिर पर थी और मेरा यह विचार था कि वर्षा आरम्भ होने से पहले ही उनके मकान तैयार हो जाएं और वे लोग अपने गांवों में बस जाएं। लेकिन मुस्लिम लीगी मेरे इस सुझाव से सहमत न हुए, क्योंकि वे महानुभाव लोगों की आबादी को चाहनेवाले कहां थे, वे तो बरबादी चाहते थे। जो मुसलमान बंगाल गए, उनकी हालत उनसे अधिक ख़राब हो गई। कुछ तो बेचारे रास्ते ही में दम तोड़ गए और कुछ बंगाल जाकर मर गए तथा जो बाक़ी बचे रहे, वे वापस पटना आ गए। अब उनके दिमाग़ कुछ ठिकाने आ गए थे और यह बात भी उनकी समझ में आ गई थी कि मुस्लिम लीगी उनके लिए कुछ करते-कराते तो हैं नहीं और न कुछ कर ही सकते हैं। लीगी तो उन्हें उलटा अपने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं और उन्हें किसी प्रकार की सहायता नहीं जुटाते और न ही जुटा सकते हैं।

बहुत-से ऐसे मुसलमान, जिन्होंने ज़मीन में अपनी मूल्यवान वस्तुएं छिपा रखी थीं, चाहते थे कि कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए, जो उनके साथ जाकर उनका माल भूमि से निकालने में उनकी सहायता और नेतृत्व करे। लेकिन मुस्लिम लीगी तो डर के मारे पटना से बाहर नहीं निकल सकते थे। केवल मैं ही एकमात्र व्यक्ति था, जो उन्हें उनके गांवों में ले जाता था और वे अपने-अपने दफ़ीने (दफन किया हुआ धन) भूमि

से निकाल लेते थे। सरांश यह कि मैंने यह काम सुचारु रूप से सम्पन्न किया और किसीने भी कोई बाधा न डाली और न ही किसी प्रकार से छेड़-छाड़ की। मेरी उपस्थिति में किसीको उन्हें छेड़ने का साहस न हुआ। अन्त में बड़े कष्टों और विपत्तियों के उठाने के पश्चात् वे लोग मेरे पास आए और कहने लगे कि बरसात आनेवाली है। यदि मैं सरकार पर अपने प्रभाव का प्रयोग करके उन्हें घर बनवा दूं, तो वे अपने-अपने घरों और गांवों में चले जाएंगे। मैंने सरकार से कह दिया और सरकार ने तुरन्त उनके बसाने के लिए आदेश जारी कर दिए और गांवों में घर बनने आरम्भ हो गए।

वर्षा सिर पर आ गई थी। काम हो रहा था और बड़े सुचारु रूप से सम्पन्न हो रहा था। लेकिन मेरा विचार था कि यदि महात्मा गांधी बिहार में आ जाएं, तो यह काम और भी तीव्र गति से होने लगेगा और वर्षा आरम्भ होते न होते पूर्ण हो जाएगा। अतः मैंने गांधीजी को लिखा। वे उन दिनों नोआखाली में थे क्योंकि वहां भी बड़ी बरबादी हुई थी। महात्माजी मेरा पत्र मिलते ही बिहार चले आए और उन्होंने बिहार का भ्रमण आरम्भ कर दिया। उन्होंने मुसलमानों को धैर्य दिया और उन्हें प्रोत्साहित किया। उनको सब प्रकार से निश्चिन्त कर दिया। उनके आने से काम भी बड़े ज़ोर-शोर से आरम्भ हो गया। मृदुला बहन भी गांधीजी के साथ थीं। वे उस समय महात्मा गांधी की सचिव थीं। उन्हें भी मुसलमानों के प्रति बहुत सहानुभूति थी और उन्होंने बड़ी सेवा की, जिसके कारण मैं अब तक उनका कृतज्ञ हूं। उन्हीं दिनों मृदुला से मेरा बाप-बेटी का सच्चा सम्बन्ध स्थापित हुआ। इस सम्बन्ध को हम दोनों अभी तक निभा रहे हैं।

बिहार के पश्चात् पंजाब और सीमा प्रान्त की बारी आ गई, जहां बिहार का बदला लेने के उद्देश्य से मुस्लिम लीगियों ने न केवल हिन्दुओं और सिखों का जीना हराम कर दिया था, बल्कि हमारे सीमा प्रान्त में खुदाई खिदमतगारों की वैध सरकार को समाप्त करने के उद्देश्य से अवैध सरगर्मियां और गुण्डागर्दी आरम्भ कर दी। मैं उस अवसर पर बिहार के विपत्तिग्रस्त और आक्रान्त मुसलमानों की सहायता और सेवा के लिए बिहार में था।

सीमा प्रान्त की असेम्बली का बजट अधिवेशन आरम्भ हो चुका था। पंजाब में मुल्तान, अमृतसर, अम्बाला, रावलपिण्डी और गुजरात व गुजरांवाला आदि स्थानों पर दंगे हुए। उनकी लपटें पेशावर में भी आ पहुंचीं। आक्रमणों और अपशब्दों के द्वारा मुस्लिम लीगियों ने डाक्टर

ख़ान साहब से त्यागपत्र देने की मांग करनी और नारे लगाने आरम्भ कर दिए। उन्होंने पेशावर के बाज़ारों और गलियों में निर्दोष लोगों को क़त्ल करना शुरू कर दिया। ज़िला हज़ारा की एक हिन्दू लड़की को हासिल करने के लिए लीगियों ने आज्ञा-भंग आन्दोलन भी आरम्भ कर दिया। डाक्टर ख़ान साहब के मंत्रिमंडल का पर्याप्त बहुमत प्राप्त होने के कारण उसे हटा देना उनके बस का रोग नहीं था। उन्होंने बदमाशी और गुण्डागर्दी के ढंग और रास्ते ग्रहण कर लिए। केन्द्र में अन्तरिम सरकार में जवाहरलाल और अन्य कांग्रेसी मंत्रियों का मुस्लिम लीग के असहयोग के कारण नाक में दम आ चुका था। अन्त में कांग्रेस आशा के विरुद्ध देश के विभाजन की मांग स्वीकार करने के लिए भी तैयार हो गई और जिस समय ३ जून १९४७ को लार्ड माउण्ट बेटन की ओर से विभाजन की घोषणा हुई और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने वैधानिक रूप से पाकिस्तान को स्वीकार कर लिया, तो डाक्टर ख़ान साहब ने समस्त मुस्लिम लीगियों को जेलों से मुक्त कर दिया और वैसे भी अंग्रेज़ों ने मुस्लिम लीगियों के लिए जेलख़ाने क्लबघर बना रखे थे। सीमा-प्रान्त की जेलों के क़ैदी प्राय: रातें अपने घरों में गुज़ारते थे और खुले-आम बाज़ारों में घूमा-फिरा करते थे।

कांग्रेस की सरकार नाममात्र को थी। डाक्टर ख़ान साहब के साथ सरकारी अधिकारी और अंग्रेज़ तनिक भी सहयोग नहीं करते थे। लेकिन हिन्दुओं को इस मंत्रिमण्डल का बड़ा लाभ यह प्राप्त था कि अंग्रेज़ गवर्नर उनकी सम्पूर्ण तबाही इसलिए नहीं कर सकता था कि डाक्टर ख़ान साहब उसके रास्ते में बाधक थे। साथ ही यह भी सत्य है कि गवर्नर भी डाक्टर ख़ान साहब के रास्ते में बाधक था और वह डाक्टर साहब को हिन्दुओं की पूरी-पूरी रक्षा नहीं करने देता था। इस प्रकार गवर्नर और डाक्टर साहब के मध्य विरोध भाव और डाक्टर साहब का पठानत्व अल्पसंख्यकों की रक्षा का कारण था।

कुछ अंग्रेज़-भक्त टोडी हिन्दू अंग्रेज़ों और मुस्लिम लीगियों के संकेतों पर नाचते हुए ऐसी परिस्थितियों में मांग कर रहे थे कि ख़ुदाई ख़िदमतगारों के मंत्रिमण्डल को हटा दिया जाए और प्रान्त में गवर्नर राज स्थापित कर दिया जाए—उस गवर्नर कैरो का राज जो हिन्दुओं का कट्टर शत्रु और मुस्लिम लीगियों का गहरा मित्र था। और ये लाल बुझक्कड़ अपनी मांग के समर्थन में यह तर्क प्रस्तुत करते थे कि कांग्रेस मंत्रिमण्डल अर्थात् ख़ुदाई ख़िदमतगारों की सरकार इनकी रक्षा करने की क्षमता नहीं रखती। लेकिन ये लोग यह नहीं समझते थे कि ये अपने

पांवों पर अपने हाथ से कुल्हाड़ी चला रहे थे—'बरीं अक्लो-दानिश बबायद गरीस्त' (ऐसी बुद्धि और विवेक पर रोना चाहिए !)

पेशावर में शहर के बाज़ार बन्द थे। हिन्दू और सिख अपने घरों में क़ैद थे। बाहर निकलना कठिन था। यूं कहिए कि घरों में भी हिन्दुओं और सिखों का सम्मान और सम्पत्ति सुरक्षित नहीं थे। इस अवसर पर दस हज़ार ख़ुदाई ख़िदमतगार अपनी वर्दियों से सज्जित होकर हिन्दुओं की रक्षा के लिए पेशावर पहुंच गए और उनके आते ही हिन्दू-सिख अपने घरों से बाहर निकल आए तथा दुकानें खोलकर अपना काम-धन्धा करने लगे। उनकी सम्पत्ति और प्राणों की रक्षा होने लगी थी। ठीक इसी प्रकार जहां-जहां ख़ुदाई ख़िदमतगार थे, वहां हिन्दुओं की सम्पत्ति सम्मान और प्राण सुरक्षित थे, क्योंकि ख़ुदाई ख़िदमतगार दिन-रात उनकी रक्षा करते थे और उनके लिए पहरा देते थे।

फिर चुनाव के समय मुस्लिम लीग ने सीमा प्रान्त में प्रचार करने के लिए एक पंजाबी को भेजा था, जिसका नाम मेजर ख़ुरशीद था। वह अपने दुराचरण के कारण सेना की नौकरी से हटाया गया था। उसे इस उद्देश्य से भेजा गया था कि वह पठानों में गृहयुद्ध पैदा कर दे। वह पेशावर के मुस्लिम लीगियों में इस प्रकार के भाषण किया करता था, जो हिंसात्मक भावों और प्रेरणाओं से भरे होते थे। वह कहा करता था, "ये जो कुछ व्यक्ति कांग्रेसी नेता हैं और जाति में अपना प्रभाव रखते हैं, इन्हें क़त्ल कर देना चाहिए। ऐसे लोग तैयार करने चाहिए कि दस-दस, बीस-बीस हज़ार रुपया दे दिया जाए और वे इन लोगों को मौत के घाट उतार दें, याद रखो उनकी मौत के बिना हमारा रास्ता साफ़ नहीं हो सकता।"

इन भाषणों का अभिप्राय यह था कि लोग आपस में उलझ जाएं और ख़ुदाई ख़िदमतगारों का यदि एक नेता भी मार डाला जाएगा, तो चूंकि जाति की सहानुभूति ख़ुदाई ख़िदमतगारों के साथ है, इसलिए बदला लेने के लिए आवश्यक है कि जाति मुस्लिम लीग के नेताओं को क़त्ल करेगी और इसी प्रकार ये लोग अपने घर में आपसी फ़साद और लड़ाई-झगड़ों में जुट जाएंगे और तबाह व बरबाद हो जाएंगे। मेजर ख़ुरशीद केवल हमें ही बरबाद करना नहीं चाहता था, बल्कि सारी पख़्तून जाति को तबाह करना चाहता था।

जब हमारे लोगों को ख़ुरशीद के इन इरादों का पता चला, तो उन्होंने ख़ुदाई ख़िदमतगारों की रक्षा के लिए एक नई संस्था बना ली, जिसका नाम 'ज़लमि-पख़्तून' था और उसमें वे नौजवान शामिल थे,

जिनकी आस्था अहिंसा में नहीं थी। उन्होंने इस उद्देश्य से यह संस्था बनाई थी कि खुदाई खिदमतगार तो हिंसा नहीं करते और उनका सिद्धांत अहिंसा पर आधारित है और उनके विरुद्ध हिंसात्मक षड्यन्त्र चल रहा है। उन्होंने (ज़लमि-पश्तून) घोषणा कर दी कि वे खुदाई खिदमतगारों की रक्षा करेंगे। इस संस्था के मुक़ाबले में मुस्लिम लीग ने 'ग़ाज़ी पख्तून' नामक संस्था स्थापित कर ली। लेकिन सारी जाति 'ज़लमि पश्तून' की पृष्टपोषक और समर्थक थी। केवल कुछेक ख़ान और मलिक आदि, जो अंग्रेज़ों का जूठन खानेवाले मुस्लिम लीग के साथ थे, वे समझ गए थे कि यदि वे मेजर ख़ुरशीद की बात पर अमल करते हैं, तो उनमें से एक भी ज़िन्दा नहीं बचेगा। इसलिए उन्हें मेजर ख़ुरशीद के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने का साहस न हो सका। मेजर ख़ुरशीद को पंजाबियों ने पठानों की बरबादी के लिए भेजा था, लेकिन वह अपने अपवित्र उद्देश्य में सफल न हो सका।

२३

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति का अधिवेशन था। मैं भी उसमें भाग लेने के लिए दिल्ली गया। उस अधिवेशन में भारत के विभाजन के प्रश्न पर विचार हो रहा था। मैं और गांधीजी भारत के विभाजन के विरोधी थे। दूसरे सदस्यों के विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि मैंने उस समय तक उनसे कुछ सुना नहीं था। किन्तु सरदार पटेल और राज-गोपालाचार्य विभाजन के पक्ष में थे और इस सम्बन्ध में उन्होंने बहुत ज़ोर लगाया था। दूसरी समस्या 'सीमा प्रान्त में जनमत संग्रह' विचारा-धीन थी। मैं और महात्मा गांधी दोनों जनमत संग्रह के भी विरोधी थे। मैं कहता था—"जनमत संग्रह की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि भारत और पाकिस्तान के प्रश्न पर ही हमारे प्रान्त में निर्वाचन हुआ है और वह चुनाव हमने मुस्लिम लीग से बड़े भारी बहुमत से जीता है और इस निर्वाचन को अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ है।"

सरदार पटेल और राजगोपालाचार्य मेरे इस विचार के विरोधी थे और जनमत संग्रह के पक्ष में थे। अस्तु, इसके लिए उन्होंने कार्य-कारिणी समिति में बहुत ज़ोर लगाया था और तर्क प्रस्तुत किए थे। अन्त में कार्यकारिणी समिति ने उनकी बात स्वीकार कर ली और देश का विभाजन तथा सीमा प्रान्त में जनमत संग्रह दोनों बातें स्वीकार कर लीं। इस अवसर पर मैंने कार्यकारिणी समिति और गांधीजी से कहा

कि हम पठान लोग आप लोगों के साथी हैं और हमने भारत की स्वाधीनता के लिए बहुत बलिदान किए हैं। लेकिन आप लोगों ने हमें छोड़ दिया है और भेड़ियों के हवाले कर दिया है। हमने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के प्रश्न पर चुनाव लड़ा था और हमने वह बड़े भारी बहुमत से जीता था। सारे संसार पर पख़्तूनों का अभिमत प्रकाशित हो गया था। इसलिए हम जनमत संग्रह नहीं चाहते और दूसरा कारण यह है कि हमें तो भारत ने छोड़ दिया है, फिर हम हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के प्रश्न पर क्यों जनमत संग्रह करें।

कांग्रेस की इस दुर्बलता से हमारे लोग हिन्दुस्तान से बहुत ही निराश हो गए। इसलिए हमने कहा कि यदि मुस्लिम लीग हमारे साथ जनमत संग्रह करना चाहती है, तो 'पख़्तूनिस्तान और पाकिस्तान' के प्रश्न पर करे। खेद मुझे इस बात पर था कि हमने तो कांग्रेस को न छोड़ा, लेकिन कांग्रेसियों ने हमें छोड़ दिया। यदि हम कांग्रेस को छोड़ देते, तो अंग्रेज हमें सब कुछ देता था। मेरा इस विषय में पक्का विश्वास है कि यदि कांग्रेस ने इस बात पर बल दिया होता और दृढ़ता से डटी रहती, जिस प्रकार वह गुरुदासपुर के प्रश्न पर अड़ गई थी और जिस तरह कि जिन्ना ने वह बात मान ली थी, तो हमारी यह मांग भी मान ली जाती। हमारा बड़ा दुर्भाग्य यह था कि गांधीजी इस संसार से चले गए। यदि वे होते, तो अवश्य हमारी सहायता करते। जवाहरलाल से भी हमें बड़ी आशाएं थीं और वे बहुत कुछ कर सकते थे; लेकिन हम नहीं समझते कि उन्होंने क्यों हमारे लिए कुछ नहीं किया?

जिस समय कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने भारत के विभाजन और सीमा प्रान्त में जनमत संग्रह का फ़ैसला कर लिया, तो यह मेरे लिए मृत्यु का फ़ैसला था। मैं हैरान व परेशान बैठा हुआ था। मौलाना आज़ाद मेरे पार्श्व में विराजमान थे। मौलाना आज़ाद ने मुझसे कहा, "तुम्हें चाहिए कि अब मुस्लिम लीग में सम्मिलित हो जाओ।" मुझे दुःख होता है और मैं हैरान भी होता हूं कि मौलाना साहब किस ख़याल से मुझे यह परामर्श दे रहे थे। क्योंकि मुस्लिम लीग से मेरा और मौलाना का विरोध सैद्धान्तिक और विचारात्मक था और उस समय तक मुस्लिम लीग की नीति में कोई ऐसा परिवर्तन भी नहीं हुआ था कि मेरे या मौलाना के लिए उसमें सम्मिलित हो जाने का औचित्य पैदा हो गया होता। मुस्लीम लीग तोड़-फोड़ और विनाश के लिए काम कर रही थी और मैंने अपना सारा जीवन निर्माण के लिए अर्पित कर रखा है। मौलाना साहब का यह परामर्श यदि कहीं ठीक भी होता,

तो उचित होता, यदि वे कुछ वर्ष पहले ऐसा परामर्श देने में कंजूसी से काम न लेते। ख़ैर, मुझपर उस परामर्श का कोई अच्छा प्रभाव न हुआ, क्योंकि मैं आस्थाओं अथवा सिद्धान्तों के प्रश्नों में समय की मांगों के साथ बदलना नहीं जानता और न ही मेरा देश और जाति इस प्रकार गिरगिट की भांति रंग बदलना अच्छा समझती है। जिस समय अहरार संस्था (मज़लिस-ए-अहरारि-ए-इस्लाम) पाकिस्तान बनने के पश्चात् मुस्लिम लीग में सम्मिलित हो गई, लियाक़त अली ने उन्हें बुरी तरह तिरस्कृत करके मुस्लिम लीग से बाहर निकाल दिया था।

एक बात मौलाना साहब ने अपनी पुस्तक में लिखी है, "कलकत्ता में मुझसे मिलने के लिए कुछ पठान आए थे। जब मैंने चाय के साथ पठानों को बिस्कुट पेश किए, तो पठानों ने कहा कि 'यह चीज़ तो हमने कभी नहीं खाई है। डाक्टर ख़ान साहब और बाचाख़ान खाते थे, लेकिन वे हमें नहीं देते थे।' "

मौलाना साहब बहुत बार सीमा प्रान्त में आए थे और उन्होंने मेरा स्वभाव और पठानों का अतिथि-सेवा भाव भी देखा था और उन्होंने यह भी देखा होगा कि हमारे मध्य कितना साम्यभाव है। पठानों में इतनी ग़रीबी भी नहीं कि उन्होंने बिस्कुट देखा न हो और या खाया न हो। हम तो अतिथियों की बात छोड़िए, अपने नौकरों के साथ रोटी व चाय एक जगह खाते-पीते हैं और जो कुछ स्वयं खाते हैं, उन्हें भी देते हैं। हमारे प्रदेश में यह बात बहुत अनुचित समझी जाती है कि चाय पीते जाओ, बिस्कुट खाते जाओ और यदि कोई साथ बैठा हो तो उसे न दो। इसलिए मैं नहीं जानता कि मौलाना साहब के पास किस प्रकार के लोग गए थे।

मौलाना साहब ने यह भी लिखा है: "डाक्टर साहब और बाचाख़ान कांग्रेस फण्ड अपने प्रान्त में ख़र्च करने के स्थान पर केन्द्र को वापस कर दिया करते थे।" और मौलाना साहब के कथनानुसार यह मितव्ययिता हमारे प्रभाव और सम्पर्क के कम हो जाने का कारण बताई जाती है।

ख़ुदाई ख़िदमतगार आंदोलन दूसरे आंदोलनों की भांति केवल राजनीतिक आंदोलन नहीं है—यह राजनीतिक भी है, सामाजिक भी है—आर्थिक भी है, सुधारात्मक भी है, नैतिक भी है और आध्यात्मिक भी है। ख़ुदाई ख़िदमतगार अपनी जाति और देश की सेवा ख़ुदा के वास्ते (परमार्थ के रूप में) करता है। यहां तक कि वह अपनी वर्दी भी अपने पैसों से बनाता है। हमने कभी कांग्रेस से पैसे नहीं लिए हैं। यदि कांग्रेस ने पैसे दिए होंगे, तो संसदीय मण्डल को दिए होंगे और हम

लोग राष्ट्रीय कोष (क़ौमी फण्ड) का अनुचित प्रयोग करना खुदा के निकट अपराध समझते हैं। यदि हमारे आंदोलन का प्रभाव और सम्पर्क कम हो गया होता, तो पाकिस्तान के इतने अत्याचार, अन्याय, उत्पीड़न, क्रूरता, अपमानजनक व्यवहार, यहां तक कि आए दिन भाषण, गोली-वर्षण का शिकार होने के बावजूद्द हज़ारों लोग किस प्रकार जेलखानों में जाते ? और जेलों में दुःख व कष्ट क्यों भोगते तथा लज्जास्पद जीवन शान्त व धैर्य भाव से क्यों व्यतीत करते ? काश ! मौलाना साहब इस प्रकार का एक भी उदाहरण किसी अन्य संस्था के सम्बन्ध में हमें बताते।

खैर, मैं प्रसन्न हूं कि मौलाना साहब इससे एक सत्य तो संसार के सामने स्वीकार करते हैं कि हमने कांग्रेस से पैसे कभी नहीं लिए—और हमारा सम्बन्ध उसके साथ एक उभयनिष्ठ—साझे—उद्देश्य के लिए काम करना था और कुछ नहीं।

मौलाना साहब का यह विचार कि हम कांग्रेस के ये पैसे कांग्रेस को वापस कर दिया करते थे मेरी ओर से एक स्पष्टीकरण की मांग पैदा करता है और वह यह है कि खुदाई खितमतगार आंदोलन कभी उन पैसों की आवश्यकता से जो ग्रस्त नहीं हुआ—ये पैसे यदि कांग्रेस ने दिए भी होंगे, तो पार्लामिण्टरी बोर्ड को दिए गए होंगे। रहा यह प्रश्न कि पैसों का न खर्च करना, मौलाना के कथनानुसार हमारे प्रभाव व सम्पर्क में कमी का करण बना। इस सम्बन्ध में मैं निवेदन करता हूं कि मौलाना साहब ने विभाजन से पहले हमारी शक्ति का अनुमान किया था कि खुदाई खिदमतगार आंदोलन जब अवैध घोषित नहीं होता था, तो वह सदा चुनाव में विजय प्राप्त करता था और सरकार अपने हाथों में लेता रहा था। विभाजन के पश्चात् और पाकिस्तान बनने के बाद पाकिस्तान में कोई चुनाव नहीं हुआ, जिससे मौलाना साहब हमारे ज़ोर या कमज़ोरी का अनुमान करते और किसी परिणाम पर पहुचते।

मैं बहुत कृतज्ञ हूंगा, यदि पाकिस्तान में फिर स्वतन्त्र जनमत संग्रह हो जाए। ताकि संसार देख ले कि मेरी जाति और देश (प्रदेश) किस रास्ते पर और किसके पीछे चल रहा है।

मेरा सारा संघर्ष भी इसीके लिए जारी है। हां, यदि मौलाना साहब या अन्य किसी और को चुनाव के अतिरिक्त किसी अन्य तर्क व युक्ति की आवश्यकता हो, तो मैं निवेदन करूंगा कि यह हज़ारों लोगों का गलना-सड़ना, सैकड़ों का मारा जाना, देश छोड़कर चले जाना और उनकी सम्पत्तियों की ज़ब्ती आदि किस चीज़ की दलील पेश करते हैं ?

यह मुझे जेलख़ाने में रखा जाना किसलिए है? यदि मेरा या मेरे राजनीतिक दल का प्रभाव व पहुंच—असर व रुसूख़ नहीं है, तो पाकिस्तान की सरकार हमसे डरती क्यों है? और मुझे क्यों जेलख़ानों में बन्द करती है?

२४

विभाजन हो चुका, तो मैंने कहा, "अब जबकि पाकिस्तान बन चुका है और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने विभाजन स्वीकार कर लिया है, तो मैं और मेरा दल बिना किसी प्रकार का हिस्सा मांगे देश और जाति की सेवा करना चाहते हैं। मेरी जाति पाकिस्तान की नागरिक और वफ़ादार है और हम इस देश के निर्माण तथा उन्नति के प्रयत्नों में पूरा भाग लेंगे। लेकिन पाकिस्तान की सरकार पर मेरे इन विचारों का कुछ भी प्रभाव न हुआ और उलटा मुझपर यह अभियोग लगाया गया कि मैं निर्माण की आड़ में ध्वंस चाहता हूं। फलस्वरूप मुझे गिरफ़्तार कर लिया गया। मुझपर क़बाइलियों से मिलकर षड्यंत्र करने का झूठा अभियोग लगया गया। इसी अभियोग में मेरे बेटे वली ख़ां को भी पकड़ लिया गया और कुछ समय के पश्चात् डाक्टर ख़ान साहब तथा अब्दुल ग़नी भी गिरफ़्तार कर लिए गए। बिना किसी तर्क और दलील के मुझे तीन वर्ष क़ैद का दण्ड दे दिया गया।

मेरी क़ैद की अवधि तीन वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् मुझे कोहाट के डिप्टी कमिश्नर के सामने पेश किया गया। डिप्टी कमिश्नर ने मुझसे नेकचलनी की ज़मानत मांग ली। मैंने इस ज़मानत के मांगे जाने का कारण पूछा, तो उत्तर मिला कि मैं पाकिस्तान के विरुद्ध हूं। जब मैंने इस बात का प्रमाण मांगा, तो कहने लगे कि बहस की कोई आवश्यकता नहीं। तब मैंने ज़मानत देने से इन्कार कर दिया, जिसपर उन्होंने अपना फ़ैसला सुना दिया और मुझे तीन वर्ष श्रमयुक्त कारावास का दण्ड दिया गया। मुझे मिण्टगुमरी जेल में भिजवा दिया गया, जहां मैंने अपनी सज़ा के दिन काटे। मुझे सज़ा में से वह छूट भी न दी गई, जो जेल के नियमानुसार होती है और जब मैं पूरी सज़ा भुगत चुका तो १९१८ रेगुलेशन के अधीन मुझे नज़रबन्द कर दिया गया। इस प्रकार जनवरी, १९५४ से पहले मुझे रिहाई प्राप्त न हुई। जब मुझे रिहाई मिली तो भी नाम-मात्र को थी। मेरी गिरफ़्तारी का सिलसिला निरन्तर जारी रहा और इस प्रकार १५ वर्ष तक मुझे पाकिस्तानी जेलों

में रहना पड़ा।

ज्योंही पाकिस्तान सरकार स्थापित हुई, बिना किसी अपराध के हमपर ऐसे-ऐसे अत्याचार ठानने आरंभ कर दिए गए, जो काफ़िर फिरंगियों के शासन-काल में भी हमपर नहीं ढाए गए थे। फिरंगियों ने हमारे घरों को नहीं लूटा था, लेकिन पाकिस्तान की इस्लामी सरकार ने हमारे घर लूट लिए। फिरंगियों के ज़माने में हमारे समाचारपत्र और जलसे बन्द नहीं किए गए थे। लेकिन पाकिस्तान की इस्लामी सरकार ने बन्द कर दिए। फिरंगी सरकार पख़्तूनों की महिलाओं का अपमान नहीं करती थी। पाकिस्तान की सरकार ने यह भी किया। इन बातों की चर्चा छोड़िए, इस सरकार ने अत्याचार की कोई सीमा न छोड़ी। जिस समय चार सद्दा में पठान नर-नारियां जुमा की नमाज़ अदा करने और अपने बन्दी भाइयों के लिए दुआएं मांगने जा रहे थे और अपने सिरों पर क़ुरान रखकर मसजिद में प्रविष्ट हो रहे थे, तो उस समय पाकिस्तान की इस्लामी सरकार के मशीनगन चलानेवाले सिपाहियों ने निहत्थे पठान स्त्री-पुरुषों की छातियों पर तथा ख़ुदा के क़ुरान पर गोलियां चलाकर उन्हें छलनी कर दिया।

ठीक इसी प्रकार जेल में जो वर्ताव अंग्रेज़ सरकार हमारे प्रति अपनाती थी, उसके मुक़ाबले में इस इस्लामी सरकार ने हमारे साथ दस गुना अधिक बुरा व्यवहार जारी रखा। पाकिस्तानी सरकार ने मुझे सदा जेल की ऐसी कोठरी या ऐसी बैरक में रखा, जिसमें बत्ती रात के समय गुल कर दी जाती थी। हैदराबाद (सिंध) जेल में तो मुझे एकान्त में रखा गया और किसीसे मिलने की भी इजाज़त नहीं थी। इस जेल का जलवायु मेरे अनुकूल न था, अपितु हानिकारक था। वहां मैं बीमार हो गया। मुझे गुर्दे की ख़राबी का रोग पैदा हो गया, जिससे मेरे पांव ख़राब हो गए, लेकिन जेलर ने, जो एक पंजाबी मुसलमान था, मेरी ओर कोई ध्यान न दिया और नाम-मात्र ग़लत-सलत दवाएं देता रहा। अन्त में मुझे लाहौर जेल में स्थानान्तरित कर दिया गया। वहां भी बीमारी बढ़ती गई। यहां से मिंटगुमरी जेल में भिजवा दिया गया और कोठरी में बन्द कर दिया गया। यहां भी बीमारी ने मेरा साथ न छोड़ा और मेरा स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता ही गया।

मैंने अंग्रेज़ों की जेल में १५ वर्ष काटे और पाकिस्तान की इस्लामी सरकार के शासन में भी १५ वर्ष क़ैद में व्यतीत किए। पाकिस्तान की सरकार की ओर से मुझे क़ैद का दण्ड जुर्माने के साथ होता था। मेरी सम्पत्ति का एक भाग केवल पन्द्रह हज़ार रुपये जुर्माने के बदले में पाकिस्तानी

सरकार ने अपने अधिकार में ले लिया। जबकि उसका यथार्थ मूल्य पचास हज़ार रुपया से भी अधिक था। अंग्रेज़ सरकार यदि अत्याचार करती थी, तो इसलिए कि वह हमारी शत्रु थी, हमारा उसके साथ झगड़ा था। लेकिन पाकिस्तान की इस्लामी सरकार को मैं समझ नहीं सका कि किस अपराध के कारण उसने मुझे और हज़ारों अन्य खुदाई खिदमत-गारों को बन्दीगृह में डाला।

मेरे निकट पाकिस्तान से मित्रता संभव ही नहीं, क्योंकि पाकिस्तान का आधार घृणा पर रखा गया है। पाकिस्तान की घुट्टी में घृणा, ईर्ष्या द्वेष, शत्रुता, वैमनस्य आदि दुर्भाव सने हैं। पाकिस्तान की उत्पत्ति अंग्रेज़ों की कृपा से हुई है। पाक़िस्तान अंग्रेज़ों ने इसलिए बनाया कि जीवन-भर के लिए हिन्दू व मुसलमानों में दंगे होते रहें।

पाकिस्तान तो शान्ति और मैत्री की बात सोच ही नहीं सकता। वह श्रेय-साधना, सुलाह-सफ़ाई का घोर विरोधी है। पाकिस्तान हड़बूंग मचाकर या हंगामा-पसन्दी और जिहाद के फ़र्जी नारों से पाकिस्तानी जनता को काबू में रखता है।

बादशाह ख़ान काबुल में

पाकिस्तानी जेल से ३० जुलाई, १९६४ को रिहा होकर बादशाह खान ने चिकित्सा-उपचार के उद्देश्य से सितम्बर, १९६४ में लन्दन के लिए प्रस्थान किया। फिर लन्दन से इसी उद्देश्य के लिए १२ दिसम्बर को काबुल (अफ़ग़ानिस्तान) पहुंचे। जेल के जीवन ने उनके स्वास्थ्य पर इतना बुरा प्रभाव डाला कि वे विभिन्न रोगों के शिकार होकर क़ैद से मुक्त हुए। काबुल पहुंचने पर उनका भव्य स्वागत हुआ और स्वास्थ्य-सुधार के विषय में उनकी पूरी देखभाल आरम्भ हो गई। स्वस्थ होने पर बादशाह खान एक मुजाहिद की भांति पख़्तूनिस्तान आन्दोलन के लिए कटिबद्ध हो गए। थोड़े ही दिनों में उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान और क़बाइली इलाक़ों का भ्रमण कर डाला और आज अफ़ग़ानिस्तान और पख़्तून दोनों कन्धे से कन्धे जोड़कर पख़्तूनिस्तान की प्राप्ति के लिए शान्तिमय संघर्ष कर रहे हैं। अफ़ग़ानिस्तान के निवासी बादशाह खान के नेतृत्व में पूरे मनोयोग एवं उत्साह से अपना संगठन कर रहे हैं।

जब मैं जलालाबाद में बादशाह खान से मिला तो मुझे यह देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि बादशाह खान आज भी उसी लगन से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं, जिस तरह अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध संघर्ष करते रहे थे। वे कल भी एक महान नेता थे और आज भी महान नेता हैं। वे कल भी अहिंसा के पुजारी थे और आज भी अहिंसा के अनुरागी हैं।

बादशाह खान ने अपने काबुल के राजनीतिक जीवन में तीन महत्त्व-पूर्ण भाषण किए हैं। जिससे पख़्तूनिस्तान की समस्या का विषद विवेचन होता है और पाकिस्तान की इस्लामी सरकार के फ़रेब का पर्दाफ़ास होता है। ये तीनों भाषण पख़्तूनिस्तान दिवस के उपलक्ष्य में किए गए थे।

—नगीना

पहला भाषण

बहनो और भाइयो ! मैं आज सबसे पहले पावन परमेश्वर का कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूं कि उसने इस पश्तून जाति में, जिसे लोगों ने समाप्त कर दिया था, प्रेम-प्रीति, भाईचारे और बन्धुता का एक प्रबल भाव उत्पन्न कर दिया है, और बाद में महामहिम अफ़ग़ानिस्तान-सम्राट, प्रधान मन्त्री और उनकी सरकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं, क्योंकि उन्होंने नीचे और ऊंचे इलाक़ों के रहनेवाले पश्तूनों को संगठित किया है।

अहमदशाह (अब्दाली) ने हमारे देश की सीमा जेहलम नदी तक निश्चित की थी। लेकिन पाकिस्तान ने एक अंग्रेज को बुलाया था और उसने भी एक पुस्तक लिखी थी—'पठान'। उस अंग्रेज़ ने जिसका नाम मि० ओल्फ़ कैरो है, हमारे देश की सीमा 'मारगली' तक कल्पित की है। अस्तु, यदि मारगली को सीमा मान लिया जाए, तो आमू नदी तक पठानों के बाबा का देश है और इसमें जो बसते हैं, वे सब पश्तून हैं। आप लोग संसार को देखें, संसार की जातियों को देखें। अमरीका को ले लीजिए। अमरीका के समस्त लोग, जो वहां रहते हैं, एक जाति से नहीं हैं। उनमें कुछ लोग जर्मनी के मूल निवासी हैं; कुछ फ्रांसीसी जाति के हैं, कई स्पेन के मूल निवासी हैं, कुछ हब्शी हैं और कई अंग्रेज़ हैं। लेकिन अब इनका देश अमरीका है। इसलिए अमरीका में रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति अपने-आपको अमरीकन कहता है। इसी दृष्टि में मैं आप पठान भाइयों से यह बात कहता हूं कि मारगली से आमू तक यह इलाक़ा पश्तूनों का देश है। इस देश में जो भी व्यक्ति रहता है, वह पश्तून है। और मैं आपसे यह बात भी कहता हूं और मेरी यह बात कान लगाकर सुन लें कि जो जोग हममें फ़ारसी-भाषी, हज़ारा व पश्तून तथा ताजक की यह भेदभावपूर्ण कहानी घड़ते हैं आप समझ लें कि वे लोग आपके मित्र नहीं हैं, बल्कि शत्रु हैं। वे लोग स्वार्थी हैं। आपका लाभ उनके दृष्टिगोचर नहीं है। उनके सामने अपना हित व स्वार्थ है।

इसके पश्चात् मैं आप लोगों से यह निवेदन करता हूं कि मैं बहुत समय के बाद आपके इस देश में आया हूं। आपका यह ख़्याल होगा और आप यह कहते होंगे कि शायद मैंने आपको भुला दिया था। आप लोग मुझे सदा याद रहते थे। मैंने आप लोगों को भुलाया नहीं था, क्योंकि आप मेरी क़ौम से हैं, मेरे भाई हैं, मेरे प्रिय बन्धु हैं; लेकिन बात यूं थी कि पहले हमारे देश पर अंग्रेज़ों का शासन था। अंग्रेज़ ने हमें टुकड़े-

टुकड़े कर रखा था। हमें न केवल टुकड़ों-टुकड़ों में बांटा हुआ था, प्रत्युत हमारे मध्य दीवार भी खड़ी कर दी थी। हमें आपके पास जाने नहीं देता था। यह तो बात ही क्या है, वह हमें हमारे अपने क़बाइली भाइयों के निकट तक फटकने नहीं देता था।

वह अंग्रेज़ चला गया और पाकिस्तान स्थापित हो गया। तथा वहां मुसलमानों की हुकूमत हो गई—इस्लाम की हुकूमत—वह भी उसी मार्ग पर चल पड़ी जो मार्ग अंग्रेज़ों का था। आप लोग ज़रा विचार कीजिए और पाकिस्तान की उस हुकूमत को देखिए। आज जो लोग पाकिस्तान की सरकार में सत्ताधारी हैं और जिनके हाथों में सियाह व सफ़ेद है, वे कौन लोग हैं?—वे सब वही लोग हैं, जिनके पूर्वज अंग्रेज़ों के सेवक थे। आप निःसंदेह देख लीजिए—उनमें एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है कि जिसने उस जाति और देश की कोई सेवा की हो। वे अंग्रेज़ों के 'थालीचट' (उच्छिष्ट-भोक्ता) थे। अंग्रेज़ जब जाने लगे, तो चूंकि हिन्दुस्तान में दस करोड़ मुसलमान मौजूद थे, उन दस करोड़ में से एक पश्तून था, जिसने अंग्रेज़ का मुक़ाबला करने के लिए कमर कस रखी थी और अंग्रेज़ों को देश से निकाल देने पर तुल गया था। अंग्रेज़ का दिल हमारे विरुद्ध क्रोध और रोष से भरा हुआ था। फिरंगी जब जाने लगा तो हमारे देश में आग लगाना चाहता था। अतः उसने हमारे देश में विभ्राट उत्पन्न कर दिया। यह विभ्राट उसने किन लोगों के हाथों पैदा किया—उन्हीं लोगों के हाथों, जिन्हें हमने फिरंगी की दासता से मुक्त कराया था। और मैं तो सदा यह बात कहा करता हूं कि पठान बाहुबल से श्रम-परिश्रम करके लाभ संग्रह करने में बड़ा सिद्धहस्त है। लेकिन जब लाभ ग्रहण कर लेता है तो अपना लाभ या फ़ायदा संभाल नहीं सकता। यही मज़ाक़ या कूट व्यंग्य हमारे साथ भी हुआ। हमने लाभ प्राप्त किया। अंग्रेज़ों को हमने निकाला, देश को हमने स्वाधीन कराया, लेकिन हममें से कोई भी अपना लाभ संभाल नहीं सका। फिरंगी जब जाने लगा, तो उसने पश्तूनों में फ़साद फैला दिया। वह जब गया तो अपने मित्र को अपने स्थान पर बिठा गया।

आपके देश में आए हुए मुझे नौ मास हो गए हैं। इन नौ महीनों में आपके इस देश में पख़्तूनिस्तान का जो आन्दोलन जारी है, मैंने इसे समझने के लिए बहुत सोच-विचार किया है। लेकिन मैं क्षमा चाहता हूं कि मैं किसी परिणाम पर नहीं पहुंच सका हूं। मैं देखता हूं कि हमसे बहुत बाद में कई लोग उठे—अफ़्रीका के हब्शी उठे, जंगलों में रहने-वाले पिछड़े हुए लोग उठ खड़े हुए और अल्-जज़ाइर के लोग उठे। हमसे

बाद में वे सब खड़े हुए। लेकिन अपने उद्देश्य में हमसे पहले सफल हो गए। हमें अठारह वर्ष हो गए हैं, लेकिन अभी तक हम लोग सफल नहीं हुए। यह क्यों? आवश्यकता है कि हम पश्तून चाहे इस देश के हैं या उस देश के, इस बात पर विचार करें, क्योंकि हम सब भाई हैं। इस बात पर सोच-विचार करना हमारा आवश्यक कर्तव्य है कि क्या कारण था कि अल्-जज़ाइर हमसे बाद में उठा और हमसे पहले सफल हो गया। आप देखें कि इस छोटे-से अल्-जज़ाइर का मुक़ाबला भी किस जाति से था? उसका मुक़ाबला फ्रांस से था और फ्रांस कोई साधारण देश नहीं है, फिर अल्-जज़ाइर में लाखों की संख्या में फ्रांसीसी रहते थे। उस देश की समस्त अर्थनीति, उपजाऊ ज़मीनें फ्रांसीसियों के हाथों में थीं। लेकिन अल्-जज़ाइर के लोग उठ खड़े हुए और सफल हो गए।

हमारा मुक़ाबला पाकिस्तान से है। हम लोग असफल रह गए। क्यों असफल रह गए? यही बात बड़े सोच-विचार की है। आप देख लीजिए, भाइयो! आप संसार की और जातियों की ओर देखिए—संगठनों को देखिए—दलों या संस्थाओं को देखिए। जब वे उठ खड़े होते हैं, तो उनके सामने एक उद्देश्य होता है और वह उद्देश्य सदा उनके निकट पहला स्थान रखता है। उस उद्देश्य पर उनकी जो आस्था होती है वही उनका ईमान होता है। और, दूसरी चीज़ यह होती है कि उस उद्देश्य के लिए वे प्रत्येक प्रकार का बलिदान करने को तैयार रहते हैं। सब तरह के कष्ट-विपत्तियां झेलने के लिए कटिबद्ध रहते हैं। मैं जहां तक भी देखता हूं और अध्ययन करता हूं यही चीज़ अल्-जज़ाइर में भी विद्यमान थी, इसलिए वे सफल हो गए। मैं आपसे भी यही कहता हूं, लम्बी-चौड़ी बहस में न पड़ें। आपसे केवल इतना निवेदन करता हूं कि आप लोग भी यही गुण अपने अन्दर पैदा कर लें—आप भी सफल हो जाएंगे।

इसके पश्चात् आपसे यह कहता हूं कि भाइयो! यदि आप लोग ज़रा आंखें खोलकर देखें, इस दुनिया की ओर देखें—दुनिया की जातियों की ओर देखें। ये जातियां संसार के आसमानों में उड़ती हैं, लेकिन हम हैं कि धरती पर भी नहीं चल सकते। यह क्यों?—क्या पश्तून एक क़ौम नहीं है? पश्तूनों का अपना देश नहीं है? आप लोग एक शालीनता-युक्त जाति हैं और आपको ख़ुदा ने ऐसा शानदार मुल्क दिया है कि अन्य किसीको भी ऐसा नियामतों से भरा हुआ देश नहीं दिया। फिर क्या कारण है कि हम संसार से पीछे रह गए? हम एक अच्छी खासी क़ौम हैं। हमारा अपना देश है। फिर क्या कारण है कि हम पिछड़ गए

हैं ? क्या हम इसलिए पीछे रह गए हैं कि दूसरी जातियों में राष्ट्रीयता पैदा हो गई और हममें राष्ट्रीयता पैदा नहीं हुई ?

आप ध्यान से देखिए, वे जातियां; जो उन्नति के आकाश पर पहुंच गई हैं, उनके व्यक्ति भी तो हमारी तरह के मनुष्य हैं। वे जातियां भी हमारी तरह ही हैं। फिर अन्तर क्या हुआ ? ज़ाहिर है कि उन जातियों में जातीयता का भाव बहुत बलवान है और हममें नहीं है। अस्तु, मैं तो यह निवेदन करता हूं कि उनमें जातीयता कैसे पैदा हुई ? और हमारे भीतर क्यों नहीं पैदा हुई ? उनमें जातीयता इसलिए पैदा हुई कि उनमें ऐसे लोग पैदा हो गए, जिन्होंने अपनी सम्पत्ति, अपना शरीर, अपना प्रेम, अपना अनुराग, सुख व आनन्द, अपनी मोटर और अपना बंगला—सर्वस्व अपनी जाति पर बलिदान कर दिया।

हम प्रथम, यही नहीं जानते कि जाति क्या है ? जाति किस वस्तु का नाम है ? और दूसरी बात यह कि हम लोग कहते हैं कि जाति जाए भाड़ में और देश जाए चूल्हे में, लेकिन मुझे कुछ व्यक्तिगत लाभ प्राप्त हो जाए। यही कारण है कि हममें ऐसे लोग पैदा नहीं होते, जिनमें प्यार व बलिदान का ज्वलन्त भाव हो। लेकिन दूसरी समुन्नत जातियों में ऐसे लोग पैदा हुए जिन्होंने बहुत बलिदान किए।

आप लोग किसानों को देखिए। हम पठान सब कृषिकार हैं और विश्वस्रष्टा परमेश्वर का यह एक महान विद्यालय हमारे सामने विद्यमान है। यह हमें प्रतिदिन शिक्षा देता है। हम किसान हैं। हल चलाते हैं। क्यारियां तैयार करते हैं। खेती-बाड़ी करते हैं।—किसलिए ? इसलिए कि जोती गई ज़मीन में बीज बोया जा सके। क्योंकि यदि भूमि तैयार न कर ली जाए, उसमें अच्छी प्रकार से हल न जोता जाए, तो ऐसी भूमि में बीज बोने से फल नहीं मिलता। अच्छा फल, उत्तम फ़सल प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि अच्छी तरह से जुती हुई भूमि में बीज बोएं। जहां यह देखना उचित है कि भूमि अच्छी तरह से जुती हुई हो, वहां यह देखना भी अत्यन्त आवश्यक है कि बोया जानेवाला बीज भी अच्छा हो। बोया जानेवाला एक-एक दाना जीवित और साबुत होना चाहिए। उत्तम, साबुत और जीवित बीज ने यदि अपने-आपको मिट्टी के साथ मिट्टी नहीं बना दिया, तो अंकुरित नहीं होता। यही बात जातियों और उनके मानवों पर लागू होती है। जिस जाति के जन-गण अपनी जाति और देश के लिए अपने-आपको मिट्टी में नहीं मिला देते —बड़े-बड़े बलिदान नहीं कर सकते, वह जाति कभी उन्नति के शिखर पर नहीं पहुंच सकती। जिस जाति के लोग देश और जाति के लिए मर-

मिटे, वही जाति संसार में जीवित रही और उन्नति के उच्च शिखरों पर पहुंची।

हम लोग इसलिए पीछे रह गए कि हममें ऐसे लोग पैदा नहीं हो सके। इस देश में और जातियां भी मौजूद हैं। ऐ पश्तून भाइयो ! क्या आप कभी रूसी को अपने साथ मिला सकते हैं ? क्या आपने कभी किसी अंग्रेज़ को अपना साथी बनाया है ? आपने किसी अमरीकन को अपने साथ मिलाया है ? किसी जर्मन को अपना सहयोगी बनाया है ? आपकी यह हालत है कि जिसने आपको सबक़ पढ़ाया, आप उसीके साथ चल पड़े। १४०० वर्ष हो गए हैं, हमें हमारे महान रसूल ने यह बात कही थी और हमें उपदेश किया था कि देखो मेरी उम्मत ! (मुझे माननेवाले लोगो !) ऐ मुसलमानो ! यदि तुम्हें पैसा अपनी जाति, अपने देश, अपने भाई और बेटे से भी प्यारा हो गया, तो तुम इस संसार में भी अपमानित व तिरस्कृत हो जाओगे और परलोक में भी लांछित और दु:खी हो जाओगे। मैं आप लोगों से कह रहा हूं, सुन लीजिए मेरे पश्तून भाइयो ! इस संसार में तिरस्कृत हो या नहीं हो ? जो जाति इस संसार में अपमानित और प्रतिष्ठाहीन होती है, वह आख़िरत (परलोक) में भी बदनाम और अनादृत होती है। यह बात मैं नहीं कहता, यह क़ुरान ने कहा है। मैं इन पठानों को नहीं समझ पाया। अरे भाई, यह जो आदमी तुम्हें हिसाब (पैसे) दे रहा है, क्या ये पैसे वह अपने बाप के घर से लाया है। यह तो तुम्हारा अपना माल है। माल तुम्हारा है, लेकिन गोश्त वह स्वयं खाता है और हड्डी तुम्हारी ओर फेंक देता है। हड्डी पर लड़ाई जारी है। बस यही चीज है और मैं सदा यह बात कहता हूं कि पश्तूनो ! आप हर चीज़ के आगे डटकर खड़े हो सकते हैं, तोप के सामने खड़े हो सकते हैं, मशीनगनों के सामने सीना तान सकते हैं। आप जेलखाने से नहीं डरते, बमों की परवा नहीं करते, प्रत्येक चीज़ का मुक़ाबला कर सकते हैं, किन्तु पैसे के आगे नहीं ठहर सकते !

देख लीजिए, जो जाति पैसे का मुक़ाबला नहीं कर सकी और पैसे के लालच में आ गई, तो वह गिर गई। न तो वह और न उसका देश किसी प्रकार की उन्नति कर सका। इसलिए मैं आपसे यह बात कहता हूं, आप लोग कुछ समझने की कोशिश तो करें कि जो आदमी आपको पैसे देता है, भोले भाइयो, ये तो आपके अपने ही पैसे हैं। यदि आपने अपने इस देश को अपना बना लिया, तो फिर पैसे आप ही के हैं। आप भी समृद्धि-शाली हो जाएंगे और आपके बाल-बच्चे भी

सुखी और सम्पन्न हो जाएंगे। मैं चाहता हूं कि इस बात पर, सब पश्तून भाई, चाहे वे इस जगह के रहनेवाले हैं या उस जगह के पश्तून हैं, इस समस्या पर पूरे मनोयोग से विचार और चिन्तन करें।

अन्त में आपसे एक बात कहता हूं। हमारे देश में विशेष रूप से लोग यह प्रचार करते हैं कि पाकिस्तान तो मुसलमान है और अय्यूब खां के बारे में कहते हैं कि वह तो पश्तून है! और यह भी कहते हैं कि आज तो पठानों की अपनी बादशाही है। अन्य बातों के अतिरिक्त यह बात भी कहते हैं कि पाकिस्तान एक इस्लामी राज्य है और अभी-अभी बना है। हम लोग क्यों उसके पीछे हाथ झाड़कर पड़े हुए हैं? उन्हें क्यों कष्ट देते हैं? लेकिन मैं इस समस्या पर अधिक बहस नहीं करता, क्योंकि मैं जानता हूं कि ये किस प्रकार के लोग हैं? ये वे ही लोग हैं जिन्हें या तो परमिट मिले हैं या कुछ पैसे दिए गए हैं।

लेकिन ऐ मेरी प्यारी जाति! मैं तो तुम्हें केवल यह कहता हूं कि पाकिस्तान मुसलमान है, हम तो इस बात से इन्कार नहीं करते हैं। हम कहते हैं कि मुसलमान है, हमारा भाई है। लेकिन प्रश्न यह है कि हमारे देश को स्वाधीन किसने कराया? अंग्रेज़ को हमने निकाला। पाकिस्तान हमने बनाया। कभी-कभी मुस्लिम लीगवाले मेरे साथ बातें करते हैं, तो कहते हैं कि उन्होंने पाकिस्तान बनाया है। मैं उनसे पूछता हूं कि क्या उन्होंने अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध लड़ा है? वे लोग तो अंग्रेज़ के साथी थे!

अंग्रेज़ को हमने निकाला। यदि अंग्रेज़ इस देश से न निकला होता तो क्या पाकिस्तान बन सकता था? पाकिस्तान तो हमारे खून से बना है, —हमने पाकिस्तान बनाया है—लेकिन हमारे साथ वही मज़ाक़ हुआ, "आग लेने आई थी, घर की मालकिन बन बैठी।" अब हम तो अपने इन पंजाबी मुसलमान भाइयों से और कुछ नहीं मांगते हैं। हम तो केवल यह कहते हैं कि हमें हमारा हक़ दे दो। अब पाकिस्तान हमें हमारा हक़ नहीं दे रहा, तो मैं आप लोगों से पूछता हूं कि आया इस्लाम में ऐसा नियम या विधान है? यदि एक भाई कहे कि मुझे मेरा हक़ दे दो, तो क्या इस्लाम यह कहता है कि मत दो?

हम तो पाकिस्तान से और कुछ नहीं मांगते, केवल पश्तूनों का हक़ मांगते हैं। क्या यह इस्लाम है या इस्लाम नहीं है? मैं यह मानता हूं कि अय्यूब खां पश्तून है और मुझपर तो बड़ा कृपालु है। मुझे चचा कहकर पुकारता है। लेकिन खेद इस बात का है कि वह ऐसे लोगों के हाथों में फंसा हुआ है, जो पश्तूनों का हक़ दबाना चाहते हैं और पठानों की तबाही

व वरवादी का उधार दबाए बैठे हैं। हां, मैं लोगों से सदा यह वात कहता हूं कि प्यारे भाई ! मेरी ओर से यह बात अय्यूब खां से कहिए कि वे वेगानों को अपना नहीं बना सकेंगे, लेकिन अपनों को वेगाना वना लेंगे। और फिलहाल उन्होंने अपनों को वेगाना बना ही लिया है। दूसरी बात जो कही जाती है कि पठानों की अपनी बादशाही है। आप सोचिए और देखिए कि यदि 'रन कछ' में लोग मरते हैं, तो कौन मरते हैं? —पश्तून ! और यदि कश्मीर में मारे जाते हैं, तो कौन मारे जाते हैं ?— पश्तून !

यहां देख लीजिए— बाज़ोड़ में पठानों के मुक़ाबले पर पठानों को लाया गया था। वज़ीरिस्तान को देख लीजिए, वलोचिस्तान को देखिए और इन सबको छोड़ दीजिए, जिस स्थान पर पाकिस्तान और भारत की सीमा है, उसे वाघा कहते हैं—वहां भी पश्तूनों ही को डाल रखा है। जो स्थान तबाही का है, जहां और जिस स्थान पर वरबादी होती है, वहां पठान तैनात किए मौजूद हैं।

और जब अधिकार देने का समय आता है, तो पठान को कोई उसका अधिकार नहीं देता। आप चलिए और देखिए—हमारी सेनाओं को देखिए। हमारे जो ईमानदार बड़े-बड़े जरनैल थे, उन सबको निकाल बाहर कर दिया है। सिविल के विभागों को देखिए। हमारे उस प्रदेश में हमारे जो सिविल अधिकारी थे, हमारे कमिश्नर थे, पठान थे वे भी नौकर थे। मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि उन्हीं सबको पहले ही से इस प्रदेश से क्यों दूर कर दिया गया है ? आज जो भी राजनीतिक अभिकर्ता हैं, वे पंजाबी ही हैं। यदि कमिश्नर है, तो वह भी पंजाबी है। यदि डिप्टी कमिश्नर है, तो वह भी पंजाबी है। पश्तून अधिकारियों को पश्तूनों के देश से निकाल दिया गया है। और दूसरी बात मैं यह कहता हूं कि पश्तूनों पर पाकिस्तान की वर्तमान सरकार को कोई विश्वास नहीं है। यह तो पठान ही निर्लज्ज है कि जिस हुकूमत का उसपर विश्वास नहीं, वह फिर भी उसकी नौकरी करता है।

आप एक बार जाकर हमारे मदरसों को देखिए, हमारे विश्वविद्यालय को देखिए, हमारे महाविद्यालयों को देखिए कि वहां क्या अवस्था है ? हमारे बच्चों की क्या दशा है ? हमारी आर्थिक स्थिति कैसी है ? इन समस्त परिस्थितियों को दृष्टिगोचर करके मुझे आश्चर्य होता है और मैं समझने में असमर्थ हूं कि लोग किस तरह कहते हैं कि पठानों की अपनी बादशाही है। आप सोच-विचार कीजिए कि ऐसी बादशाही, जिसमें पठानों पर विश्वास नहीं है, पश्तूनों को कोई उनके अधिकार

नहीं देता, वह पठानों की कैसी अपनी बादशाही है ? इतने पर भी कहा जाता है कि अय्यूब खां पठान है और यह भी कहा जाता है कि पाकिस्तान मुसलमान है, इस्लाम है ! ऐ अलमस्त पठानो ! यदि आपने अपनी यह हालत न बदली, तो बरबाद हो जाएंगे। मेरी बात मानिए या न मानिए, यह आपकी इच्छा है। मैं तो आपका ख़िदमतगार हूं—भेंट, पूजा या उपहार लेनेवालों में से नहीं हूं। आप मेरी अपनी जाति हैं। यदि मैं आपकी सेवा करता हूं तो परमेश्वर के नाम पर करता हूं। यदि आप लोगों ने मेरी बात मान ली, तो मुझे क्या देंगे, आप ही स्वयं आबाद और ख़ुशहाल हो जाएंगे और यदि आपने मेरी बात न मानी, तो हानि किसकी होगी ? आप स्वयं अपने-आपको हानि पहुंचाएंगे। मैंने तो आपसे पहले भी कहा है और अब फिर कहता हूं कि मैं आपका नेतृत्व नहीं चाहता। न अब नेता बनता हूं और न ही फिर कभी आपका नेता बनूंगा। न आपका बाबा बनना चाहता हूं, न आपका पथप्रदर्शक बनना चाहता हूं। मैं तो आपका सेवक हूं। आपकी सेवा करूंगा। और केवल आप ही का सेवक नहीं हूं, मैं तो मानव जाति का—खुदा के जन-मानव का सेवक हूं। अस्तु, आपसे यह बात कहता हूं कि आप लोग मेरी इन सब बातों पर अच्छी प्रकार से विचार व मनन करें। इस इस्लाम को भी समझ लें और उस अय्यूब को भी पहचान लें। फिर देखें कि पश्तूनों की यह कैसी बादशाही है ? यह देखना आपका काम है। मैंने आपसे निवेदन कर दिया है कि वह देश (पाकिस्तान) हमारे ख़ून से बना है। हमींने इसे बनाया है। हमींने अंग्रेज़ों को निकाल बाहर किया है।

अब आप लोग समझ सकते हैं कि क्या हम लोग उस देश से विश्वास-घात (बेवफ़ाई) करेंगे ? हमीं जाति को धोखा देंगे ? हमने ये समस्त कष्ट व यातनाएं किसलिए सहन की थीं ? ये सब पश्तूनों और पश्तूनों के देश के लिए सहन किए थे। ये हम नहीं है, दूसरे ही लोग हैं, जो पाकिस्तान को स्वयं बरबाद करना चाहते हैं। आखिर आप भी बुद्धि-मान हैं। स्वयं सोच-विचार कर सकते हैं कि एक घराने में जब एक ही मां-बाप के चार-पांच भाई होते हैं, जब उनमें से बड़ा भाई दूसरे भाइयों का अधिकार दबानेवाला बन जाता है, तो वह घर तबाह हो जाता है। सच्ची बात तो यही है कि पाकिस्तान को तबाह और बरबाद तो उसके कर्ता-धरता ही करना चाहते हैं, लेकिन उसका दोष रखते हैं हमपर।

एक और बात आपसे कहता हूं कि पक्तिया (अफ़ग़ानिस्तान का एक प्रान्त) के लोग बड़े अच्छे पश्तून हैं और मैं जब पक्तिया के इलाक़े

में गया था, तो वहां के लोग हरएक जलसे में मुझसे यह बात कहा करते थे कि हम तैयार हैं। मैंने उन्हें भी कहा था और आपसे भी कहता हूं कि मैं आपको जंग में नहीं धकेलता, न ही लड़ाई के लिए आपसे कहता हूं। मैं आपके यहां इसलिए आया हूं कि पठानो! आपका घर उजड़ चुका है। आप अपना यह घर बना लें और इस बात पर विचार करें कि आप वही जाति हैं? आप अपने बाप-दादा का वह इतिहास देख लें कि आपने सदा-सर्वदा क्या किया है? आपने सदा अपने झण्डे ऊंचे रखे हैं और दूसरे देशों में जाकर गाड़े हैं। शेरशाह कौन था? हमारा पठान भाई था। मीरवस कौन था? आप ही का भाई-बन्धु था। पश्तून था। वह उठ खड़ा हुआ। पश्तून का झण्डा उसने इस्फ़हान में गाड़ दिया। अहमदशाह कौन था? पश्तून था। वे विजएं और लाभ तो जाने दीजिए, पश्तूनो! आप अपना देश संभाल लें। आपका देश वह पंजाब कैसे हड़प कर सकता है? लेकिन आपके अन्दर दलबन्दी और फूट है, द्वेष और दुश्मनी है, आपस में शत्रुता है। आप लोग अपने देश की सुधि नहीं लेते। आपस में लड़ते हैं। यदि आपने अपना घर बना लिया, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि पठानों के देश को कोई भी नहीं पा सकता। अन्त में आप लोगों के सामने एक पक्तियानी उपस्थित करता हूं। आप इनके मुंह से सुनिए कि ये क्या कहते हैं। अब मैं अपना भाषण समाप्त करता हूं।

जलसा हो रहा था। इस जलसे में हमारा एक पठान भाई, पक्तियानी पश्तून, उठ खड़ा हुआ। उपस्थित पठानों को सम्बोधित करके कहने लगा, "ऐ पश्तूनो! देश उस जाति की मां होता है, जो उसमें रहती है। आपका देश आपकी मां है—मां। अब आपके देश में एक आदमी (पाकिस्तान) आया है और उसने आपके देश अर्थात् मां के आंचल पर पग रख दिया है। अब यह आपकी इच्छा है कि उस पग (पांव) को उखाड़ते और हटाते हैं या अपनी मां (देश) उसके हवाले करते हैं।

(३१ अगस्त, १९६५)

दूसरा भाषण

बहनो और भाइयो! भाषण करने से पूर्व मैं महामहिम अफ़ग़ानिस्तान-सम्राट्, प्रधानमंत्री और अफ़ग़ानिस्तान सरकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं कि उन्होंने अभागे, असंगठित और बेघर पश्तूनों

को इकट्ठा किया है और मुझे यह अवसर दिया कि मैं कुछ बातें अपनी बहनों और भाइयों से कहूं। भाइयो और बहनो ! इस संसार की उपमा एक रहट और रहट के लोटों से दी जा सकती है। आपने रहट देखा होगा। जब रहट चलता है या घूमता है, तो लोटों की माला के चक्र में जो लोटे नीचे कुएं में जाते हैं, वे पानी से भरते जाते हैं और जो ऊपर आते हैं, वे पानी से खाली होते जाते हैं। उधर एक लोटा भरा जाता है और इधर ऊपर आकर ख़ाली होता जाता है। यही हालत संसार में जातियों की भी होती है। जिस प्रकार रहट के लोटों में से एक लोटा भर रहा होगा, तो दूसरा ख़ाली हो रहा होगा। यदि हम लोग अपने बाप-दादा का इतिहास देखें, तो इस संसार में, जो उन्नति और उत्कर्ष आपके पूर्वजों ने प्राप्त किया है, ऐसी उन्नति संसार की अन्य जातियों को उपलब्ध नहीं हुई।

जिस ज़माने में हमारा देश चमक रहा था, उस ज़माने में यूरोप की जातियां ठीक वैसी ही दशा में थीं, जैसी आजकल हमारी है। वे दीन-हीन अवस्था और युद्ध व विग्रह से ग्रस्त थीं। यदि आप लोग अपने पुरखों के उस युग की कल्पना करें, जिस युग में संसार के अन्य देशों में अभी अंधकार छाया हुआ था और यहां आलोक फैला हुआ था, तो आप अनुभव करेंगे कि आज हमारी क्या दशा है। आज संसार की समस्त जातियों में यदि कोई अविद्याग्रस्त, अशिक्षित जाति है, तो वह केवल हमारी ही जाति है। आप सोचने पर विवश होंगे कि हमारे यहां यह तबाही और बरबादी कैसे हुई ?

प्रथम, सिकन्दर आया और उसने हमारे देश में तबाही मचा दी। उस समय यहां विद्यालय, पुस्तकालय, साहित्य-प्रतिष्ठान और विश्व-विद्यालय थे। वे सब सिकन्दर ने तबाह व बरबाद कर दिए। इसके पश्चात् चंगेज़ आया। उसने वह कमी पूरी कर दी, जो सिकन्दर ने बाक़ी छोड़ दी थी। फिर अरब आए और अरबों के पश्चात् मुग़ल और मुग़लों के बाद फिरंगी अर्थात् अंग्रेज़ आए। अंग्रेज जाति बड़ी चतुर और चालाक है, राजनीतिज्ञ है, मेधावी और मक्कार है। यह जो आज पख्तूनों का घर निर्जन और उजड़ा हुआ है, यह उसी फिरंगी की कर-तूत का करिश्मा है। उसके सब्ज़ क़दम (अशुभ पग) पड़ते ही हमारे देश के टुकड़े-टुकड़े हो गए। फिर साथ-साथ फिरंगी ने हमारी जाति के भी टुकड़े कर दिए। अब वह सब्ज़ क़दम अंग्रेज़ अपना बोरिया-बिस्तर यहां से गोल कर गया है और हमारे लिए फिर उठकर उन्नति और समृद्धि के मार्ग पर चलने का अवसर उत्पन्न हो गया है। इसीलिए अब

मैं यह कहता हूं कि हमारे भाग्य के लोटे फिर भरे जानेवाले हैं।

आज का संसार तो जातीयता अथवा राष्ट्रीयता या राष्ट्र-भक्ति का संसार है। इसीलिए जातियों के भाग के लोटे भाईचारा और स्नेह व सहानुभूति से भरे जाते हैं। मैं देख रहा हूं कि आज इस आक्रान्त और आलस्य-प्रमादग्रस्त पख़्तून जाति में राष्ट्रीयता की भावना जाग उठी है, इसलिए मैं कहता हूं कि आज होगा या कल होगा, लेकिन होगा अवश्य कि हमारे लोटे फिर भरने लगेंगे। हमारे भाग्य का लोटा फिर समृद्धि और उन्नति से भर जाएगा। यदि आप संसार की जातियों का तुलनात्मक विवेचन करें, तो ये जातियां हमसे शक्तिशाली नहीं हैं। जब मैं जलालाबाद में था, तो आपके विश्वविद्यालय का एक युवक विद्यार्थी मेरे पास आया। उसने कहा, "एक जर्मन ने मुझे कहा कि उसने यूरोप के लड़के भी देखे हैं, अमरीका और अफ़ग़ानिस्तान के लड़कों को भी देख लिया है। भगवान ने जो बुद्धि तुम लोगों को दी है वह दूसरों को प्राप्त नहीं है, तो फिर संसार की अन्य जातियों से तुम क्यों पीछे हो ?"

उस लड़के ने मुझे बताया कि उसके पास इस जर्मन लड़के के इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था और वह इसीलिए मेरे पास आया है कि मैं उसे इस प्रश्न का उत्तर दूं। मैंने उसे उत्तर दिया कि यह युग राष्ट्रीयता का है। जिस जाति में राष्ट्र-भक्ति, जाति-हित, प्रेम-प्यार और सहानुभूति होगी, वह उन्नति प्राप्त करेगी, समृद्धशाली हो जाएगी। हममें जातीयता, राष्ट्रीयता, प्रेम-प्यार, स्नेह और सहानुभूति नहीं है, हम इसीलिए पिछड़ गए हैं।

उस लड़के ने पुनः मुझसे पूछा, "यदि वह जर्मन मुझसे प्रश्न करे कि तुम लोगों में भाईचारा क्यों नहीं पैदा हुआ, तो फिर मैं उसे क्या उत्तर दूं ?"

मैंने उस लड़के से कहा, "उत्तर यह है कि दूसरी जातियों में ऐसे लोग पैदा हो गए, जिन्होंने अपने देश और जाति के लिए प्राण और धन-सम्पत्ति का बलिदान कर दिया। हममें ऐसे लोग पैदा नहीं हुए, और, यदि कभी कोई पैदा हुआ भी, तो हमने उसे काफ़िर बनाया है, वहाबी गरदाना है और उसे हिन्दू घोषित किया है।" विचित्र बात यह है कि आप मुझे देखें कि मैं अभी तक 'हिन्दू' हूं! यह मुझे हिन्दू किसने बनाया है ? वह कौन-सा क़ाज़ी है, जिसने मुझे हिन्दू घोषित किया है ? यह फिरंगी ही वह क़ाज़ी है, जिसकी ओर से मुझे हिन्दू कहा गया है और अभी तक कोई भी मुझे मुसलमान नहीं बना सका !

हमारी जाति के नौजवानों, बूढ़ों, पुरुषों और महिलाओं में भूख और दरिद्रता ने हीनता का भाव पैदा कर दिया है। अब अनुभव होने लगा है कि हम अपनी मंज़िल पर पहुंच सकते हैं। लेकिन शर्त यह है कि हम पग उठा लें। यदि हमने पग उठा लिया, तो हम उन्नत और समृद्ध हो जाएंगे और हमारे बच्चे भी समुन्नत हो जाएंगे।

मज़हब के हाथों हम कितने अपमानित व तिरस्कृत हुए हैं, लेकिन देखिए, मैं आपको एक बात बताता हूं, इसे ध्यान से सुनिए। संसार में धर्म किसलिए आविर्भूत होता है? मनुष्य को मनुष्यता सिखाने, मानव में मानवता अक्षुण्ण रखने के लिए। जिस समय संसार और संसार की जातियां मानवता से गिर गईं, तो उन्हें मानवता की शिक्षा देने के लिए पैग़म्बर आया है और वह अपने साथ धर्म लाया है, ताकि जाति के अन्दर प्रेम-प्रीति, राष्ट्रीयता और भ्रातृभाव उत्पन्न कर दे। जिन जातियों में यह प्रेम-प्रीति, भाईचारा, त्याग और बलिदान के भाव उत्पन्न हो जाते हैं, वे आकाश पर जा पहुंचती हैं और जिन जातियों में ये चीज़ें पैदा न हुईं, वे तबाह और बरबाद रहती हैं। धर्म का उद्देश्य मनुष्य को सत्य, न्याय और नेकी का ज्ञान कराना है; लोगों में ख़ुदा के बंदों की सेवा का भाव पैदा करना है और मनुष्य के आध्यात्मिक और नैतिक बोध को विकसित करना है।

आइए, देखें कि जो धर्म हमारी धार्मिक, आध्यात्मिक और भौतिक उन्नति के ज़ामिन अथवा उत्तरदायी हैं, हम उन्हीं धर्मों के हाथों क्यों तबाह हुए हैं? आज आप जो धर्म देख रहे हैं यह ख़ुदा और रसूल का धर्म नहीं है, यह पूंजीपतियों का धर्म है। हज़रत मुहम्मद साहब आए, वे हमारे लिए एक अच्छी-ख़ासी व्यवस्था लेकर आए। उन्होंने कहा, "मुसलमान वह है, जिसके हाथ और ज़ुबान से दूसरे को हानि न पहुंचे, ताकि प्रभु के जीवों—मानवों को नेकी, श्रेय, लाभ और सुख मिले।"

दूसरी बात उन्होंने हमें यह बताई है कि देश व जाति से प्रेम ईमान है। भाइयो! मैं आपको एक अजीब बात बातता हूं। यह जो मैं हिन्दू घोषित हुआ हूं, तो इसी प्रेम के कारण; इसलिए कि मेरे हृदय में देश, जाति और प्रभु के जीवों, जन-मानवों के लिए प्रेम-प्रीति है। एक और अद्भुत् बात आपको बताता हूं: एक दिन हम जलालाबाद में बैठे थे। वहां एक महिला आई और बैठ गई। देश और जाति की बातें आरम्भ हो गईं। उस महिला ने कहा, "मुझे ख़ुदा, देश और जाति पर क़ुरबान कर दो।" उसने यह भी कहा, "यदि मैं जाति के जंग में मरती

हूं तो मुझे इसपर गौरव है कि छाती में गोली खाऊं और शहीद हो जाऊं।"

जब वह महिला चली गई, तो मुझे जन्नत के उन ठेकेदारों में से कुछेक ने कहा कि यह महिला काफ़िर है। मुझे जन्नत के ठेकेदारों की इस बात पर बड़ा आश्चर्य और दुःख भी हुआ। उनका इस महिला को काफ़िर घोषित करना कहां रसूल-अल्लाह की शिक्षा के अनुकूल है? अल्लाह के रसूल का कहना है, कि देश से प्यार-प्रेम ईमान है।...मैं पूछता हूं कि यह ईमान जन्नत व धर्म के ठेकेदारों में है या उस महिला में? यह बात आप आप लोगों से इसलिए कहता हूं कि अब भी इस प्रकार के लोग हमारे इस देश में मौजूद हैं। जाति और देश के वे शत्रु अब भी यहां मौजूद हैं। वे पठानों को नहीं छोड़ते। वे धर्म के नाम पर आज हमें धोखा देना चाहते हैं। आप जानते हैं कि हज़रत ईसा ने अपनी उम्मत से क्या कहा था? आइए, ईसाई धर्म के प्रवर्तक की एक महत्त्वपूर्ण बात सुनिए। हज़रत ईसा ने कहा है कि यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम उसके आगे दूसरा गाल कर दो। अब ज़रा उनकी उम्मत के कारनामे देखिए—ये जो भारत में लाखों की संख्या में लोग तबाह हुए। यह तबाही घृणा और युद्ध-विग्रह किसने पैदा किए? आप लोग फ़िलस्तीन को देखिए और क़िबरस को देखिए। इन स्थानों पर इसाई धर्म के लोग क्या कर रहे हैं? उधर वीतनाम (विएतनाम) को देखिए। यह वीतनाम में क्या हो रहा है? और किस चीज़ के लिए हो रहा है? अमरीका की सेनाएं, विमान वहां क्या कर रहे हैं? यह अमरीका भी ईसाई धर्म को माननेवाला है। देख लीजिए, वह अपने धर्म पर क्या अमल कर रहा है?—अपने धर्म का कैसे पालन कर रहा है? इसीलिए मैं कहता हूं कि आज संसार में खुदा और रसूल का वह दीन (धर्म) नहीं है, जो प्रेम-प्रीति, सचाई, सौहार्द और प्रभु की प्रजा—प्राणिमात्र की सेवा के लिए है।

आज आप पाकिस्तान को देखें, वहां इस्लाम-इस्लाम की रट लगाई जा रही है। आप लोग उसके अमल को देखिए। क्या मैं पाकिस्तान के जन-साधारण से पूछ सकता हूं कि 'ऐ पाकिस्तानी भाइयो! बाजोड़ के पख़्तूनों ने क्या गुनाह अथवा अपराध किया था कि आपने उनपर बमवर्षा की; औरतों, बच्चों और बूढ़ों को तबाह कर दिया, क्या यह इस्लाम है? और आज हमारे बलूची भाइयों पर बमवर्षा हो रही है, उन्होंने कौन-सा पाप किया है? ऐ भाइयो! क्या हम मुसलमान नहीं हैं? इस्लाम क्या कहता है कि अपना अधिकार न मांगो? यदि

एक बाप के पांच बेटे हों और उनमें से चार उठकर अपने बड़े भाई से कहते हैं कि हमें अपना अधिकार दे दो, तो इस विषय में इस्लाम क्या कहता है कि अधिकार न दो, या दे दो ?

यहां पाकिस्तान के एजेण्ट हैं। भांति-भांति की बातें करते हैं और कहते हैं, "ऐ बाचाखान ! पाकिस्तान भी तो मुसलमान है।"

मैं उत्तर में कहता हूं, "किसने कहा है कि पाकिस्तान मुसलमान नहीं है और अय्यूब तो हमारा भाई है—पख़्तून है। लेकिन इस्लाम क्या कहता है ? क्या इस्लाम यह कहता है कि अपना हक़ मत मांगो ? हम भी अपना हक़—अधिकार—ही मांगते हैं। हम यही तो कहते हैं कि इस्लाम में भाईचारा है, हमें भाई बना लो, ग़ुलाम मत बनाओ, क्योंकि हम ग़ुलामी सहन नहीं कर सकते।"

अन्त में मैं पख़्तूनिस्तान के बारे में कुछ बातें कहता हूं। अठारह वर्ष हो गए हैं। लेकिन हम अभी तक अपनी मंज़िल पर नहीं पहुंचे हैं। इसका कारण यह है कि हमने पख़्तूनिस्तान को अपनी चीज़ नहीं समझा है। अब ख़ुदा का फ़ज़्ल है कि पख़्तूनों के लोटे भर रहे हैं। पख़्तूनों में अपना भाव पैदा हो चुका है—राष्ट्रीयता और भाईचारा पैदा हो चुका है। हमने संकल्प कर लिया है कि यह पख़्तून हमारा देश है। हम इसका निर्माण करेंगे। हमारे पकिस्तान में हमारे पश्चिमी पाकिस्तान के एक गवर्नर हैं, जिनका नाम अमीर मुमिद खां है। उनसे किसीने कहा था कि पख़्तूनों को अपना अधिकार दे दीजिए। वे उस व्यक्ति के सामने हंस पड़े और बोले कि, "पख़्तूनों में कौन-सा ऐसा व्यक्ति है, जिसके सिर का मोल न हो ? और जब किसी जाति के नेता पैसो में बिकते हों, तो उसका देश में क्या अधिकार है ?" मैं अपने उन गवर्नर महोदय से केवल इतना निवेदन करना चाहता हूं कि वे ज़रा संसार को देखें कि संसार किस तरह बोल रहा है···।

यही गवर्नर साहब हमारे जिन क़बाइली भाइयों के विषय में कहा करते थे कि पैसों पर ईमान रखते हैं, वे क़बाइली आज वैसे ही नहीं रहे। गवर्नर साहब उन आक्रान्त, बेबस, दयनीय बाजोड़ियों को देखें, उन्होंने जाति के बदले में पैसा नहीं लिया है। मैं आशा करता हूं कि जैसे ख़रबूज़े को देखकर ख़रबूज़ा रंग पकड़ता है, उसी प्रकार बाजोड़ के आत्मसम्मानी भाइयों ने जो पग उठाया है, उसका दूसरे पख़्तूनों पर प्रबल प्रभाव पड़ेगा। आपको मालूम है कि मैं अहिंसा के सिद्धान्त का माननेवाला हूं। हमारी यह मान्यता है कि यदि कोई संसार में शान्ति चाहता है, तो शान्ति इसके बिना नहीं हो सकती कि पख़्तूनों की

इस समस्या का समाधान कर दिया जाए। मैं रूस और अमरीका दोनों से कहता हूं कि इस समस्या में शान्ति भंग होने की आशंका है और वे यथार्थ रूप में विश्व-शान्ति चाहते हैं, तो समस्या को हल कर दें। हम क्या चाहते हैं? हम तो पाकिस्तान से भ्रातृ-प्रेम रखते हैं और उसे कहते हैं कि हमें भाई बना लो, हमें ग़ुलाम मत बनाओ। क्योंकि हमने यदि फिरंगी की ग़ुलामी नहीं की, तो तुम्हारी ग़ुलामी कैसे कर सकते हैं?

जब भारत और पाकिस्तान में युद्ध छिड़ गया, तो समाचारपत्रों में मेरे विषय में चर्चाएं आरम्भ हो गईं। उस समय पाकिस्तान के दूतावास के आदमी मेरे पास आए और उन्होंने कहा, "हमने सुना है कि आप हिन्दुस्तान जा रहे हैं?"

मैंने उनसे कहा, "आप देखते नहीं क्या कि मैं यहां बैठा हूं? आप लोग मेरे भाई हैं। मैं आपकी ओर आशा-भरी दृष्टि से देखता हूं, लेकिन जब आप मेरे साथ भाईचारे का बर्ताव नहीं करेंगे और पख़्तूनों को अपना अधिकार नहीं देंगे, तो मैं कब तक आपका मुंह देखता रहूंगा? मैं भारत नहीं जाता, आप लोग मुझे बलपूर्वक भारत भेजते हैं। यदि आप मुझे मेरा अधिकार दे दें, तो मैं भारत क्यों जाऊंगा?"

मैं यहां उपस्थित श्रोताओं को यह बात बताना चाहता हूं, क्योंकि आज तो इस्लाम धोखे के लिए है। इसलिए मैं आपसे कहता हूं कि न्याय आप ही कीजिए। पख़्तून भाइयो! न्याय आप ही कीजिए। हम तो नदी में डूब ही चुके हैं। मैं अपने इन मुसलमान भाइयों से कहता हूं कि ख़ुदा के लिए हमारी ओर हाथ बढ़ाइए, लेकिन वे हाथ नहीं बढ़ाते। एक हिन्दू खड़ा है, वह कहता है, 'लो मैं हाथ बढ़ाता हूं, इसे पकड़ लो और डूबने से बच जाओ।' इस अवस्था में आप लोग क्या कहते हैं? अपना हाथ पकड़वा दूं या पख़्तूनों को नदी में बहा दूं?"

(लोगों ने नारे लगाए कि, "हाथ बढ़ा दो!")

मैं वह आदमी हूं कि मेरी जाति नदी में डूब रही है। हिन्दू को छोड़िए, यदि मुझे लाल काफ़िर भी हाथ लगा दे, तो भी मैं उसके हाथ में अपना हाथ दे दूंगा। मैं उस मुसलमान और पाकिस्तान से कहता हूं कि मैं यह समस्या भाईचारे से हल करना चाहता हूं। इसे भाईचारे से हल करो। मैं पख़्तूनों से कहता हूं कि यदि आपने अपना घर बना लिया और आपने राष्ट्रीयता, प्यार-प्रेम, भाईचारा और सौहार्द पैदा कर लिया, तो हम युद्ध के बिना ही अपने पवित्र उद्देश्य में सफल हो जाएंगे।

जनसमूह (जिरगा) में से एक व्यक्ति उठ खड़ा हुआ और उच्च

स्वर में मुझे कहने लगा, "ठीक है, बाचाखान......और यदि फिर भी पाकिस्तान ने हमें हमारा अधिकार न दिया, तो क्या करेंगे ?"

मैंने कहा, "जो आपकी इच्छा हो कीजिएगा।"

(३१ अगस्त, १९६६)

तीसरा भाषण

मैं सबसे पहले महामहिम और उनकी सरकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं कि उन्होंने हम बिखरे हुए बदक़िसमत पख़्तूनों को एक स्थान पर एकत्र किया है, ताकि हम अपने भाईचारे, प्रेम और राष्ट्रीयता के विषय में बैठकर आपस में आवश्यक बातें करें। भाइयो और प्रिय जनो ! आप लोग पठानों का इतिहास देखिए कि जब कभी पख़्तूनों पर कोई विपत्ति आ पड़ी, तो इस जाति में एक महापुरुष पैदा हुआ और इसी अफ़ग़ानिस्तान में पैदा हुआ। उसने पख़्तूनों के बिखरे हुए क़बीलों को इकट्ठा किया। उनके साथ विचार-विमर्श किया। उनका संगठन किया और जब मंगल-कामना करके आगे बढ़ा, तो फिर कोई शक्ति उसका क़दम पीछे न हटा सकी। आप लोग स्वयं देख लीजिए कि पहले हम ईरान के ग़ुलाम थे। हममें से उस समय मीरवस खां नामक एक पुरुष पैदा हुआ। उसने क़बीलों को एक स्थान पर एकत्र किया और उन्हें समस्त विपत्ति-विघ्नों से मुक्त करा दिया। फिर इसी अफ़ग़ानिस्तान में मीर अहमदशाह बाबा ने जन्म लिया। उसने पख़्तूनों को संगठित किया और इसके बाद अफ़ग़ानिस्तान से दिल्ली जा पहुंचा। वहां अपना झंडा लहरा दिया। जब वह दिल्ली से वापस आ रहा था, तो मार्ग में जेहलम पहुंचकर रुक गया। उसने अपने साथी पख़्तूनों से कहा, "देखो, यह जेहलम से लेकर आमू नदी तक, हरात तक तुम्हारा ही देश है।"

ऐ भाइयो ! ज़रा विचार कीजिए कि यहां अंग्रेज आया, तो उसने एक लकीर खींच दी और जब वह जा रहा था तो उसने अपने उत्तराधिकारियों को यह देश दे दिया। आप अपने बाप-दादा के देश को नहीं संभाल सके। जेहलम आपके हाथ से गया, तोरखम तुम्हारे हाथ से निकल गया। ऐसा क्यों हुआ ? मैं आपको यही समझाने आया हूं। ज़रा सोचिए कि क्या हम मीरवस खां या अहमदशाह बाबा की सन्तान नहीं हैं ? क्या कारण है कि वे तो जहां जाते थे, अपने देश का झण्डा गाड़ आते थे। अब दूसरे लोग आपके देश में आकर अपना झंडा

गाड़ देते हैं। यह तमाशा क्यों होता है? मैं इसलिए आपके पास आया हूं कि आप ज़रा इन बातों पर विचार करें। भाइयो! इसका कारण स्पष्ट है कि पख़्तूनों में भ्रातृ-भाव, प्रेम और विचार-विमर्श की बात नहीं रही। हममें आपाधापी—स्वार्थपरता आ गई है। यही कारण है कि दूसरे लोगों ने हमारे देश में अपने झण्डे लहरा दिए हैं।

मुझे तीन वर्ष हो गए हैं यहां आए हुए। मैं अफ़ग़ानिस्तान के प्रत्येक छोर और क़बीले में गया हूं। मुझे हर्ष है कि आज अफ़ग़ानिस्तान के वीर पुरुषों में राष्ट्रीयता के भाव जाग उठे हैं। भाईचारे और आत्मीयता की भावना पैदा हो गई है और मैं आशा करता हूं कि यह अनुभूति एक दिन अवश्य रंग लाएगी। मुझे उम्मीद है कि हम अपने उद्देश्य में सफल हो जाएंगे।

भाइयो! मैं आपको हर बार पख़्तून, पख़्तून कहता हूं, कहीं ऐसा न हो कि आपके दिल में यह विचार आ जाए कि मैं केवल पख़्तून ही को पख़्तून समझता हूं। मैं तो इस सिद्धान्त और विचार का आदमी हूं कि जेहलम से आमू तक और हरात तक, जितने भी लोग बसते हैं, वे सब अफ़ग़ान हैं। सब पश्तून हैं और यह देश उनका साझा देश है। इसलिए मैं आप लोगों से कहता हूं कि आप ज़रा बाहर की दुनिया को देखिए। मैं जब यूरोप गया था, तो किसी भी अंग्रेज़ से पूछता था, "तुम कौन हो?" उत्तर मिलता, "मैं अंग्रेज़ हूं।"

मैं जब कभी किसी जर्मन को देखता, तो मेरे पूछने पर वह भी यही उत्तर देता था कि "जर्मन हूं।" ऐसा ही उत्तर रूसी और अमरीकन से भी मिलता था।

आज संसार तो आबाद है और हम आबाद नहीं हो सके, इसका क्या कारण है? जब मैं अफ़ग़ानिस्तान में आया और एक व्यक्ति से मैंने पूछा, "तुम कौन हो?" उत्तर मिला, "मैं हज़ारा हूं।" दूसरे से पूछा, "तुम कौन हो?" उत्तर मिला, "मैं तुर्कमन हूं।" किसीने कहा, "मैं पख़्तून हूं—फ़ारसी-दान हूं।" यह चीज़ हमारी बरबादी का कारण है। इन्हीं बातों ने हममें फूट पैदा कर दी है। इन्हीं बातों से हम कमज़ोर हो गए हैं। और जो भी आपसे इस प्रकार की पृथक्ता के भाव की बातें कहता है, वह आपका मित्र नहीं है। आप ज़रा अमरीका चले जाइए। वहां अंग्रेज़ हैं, फ्रांसीसी बसते हैं, हस्पानवी रहते हैं, अफ्रीका के काले हब्शी भी आबाद हैं। इनकी संख्या तीन करोड़ के लगभग है। लेकिन जिस किसीसे भी पूछिएगा कि, "तुम कौन हो?" वह कहेगा, "मैं अमरीकन हूं।" वहां कोई अंग्रेज़ भी

नहीं कहेगा कि मैं अंग्रेज़ हूं। बल्कि वह अपने-आपको अमरीकन ही कहेगा। इसी प्रकार कोई भी जर्मन अपने-आपको जर्मन नहीं कहेगा, प्रत्युत बड़े गौरव से कहेगा कि मैं अमरीकन हूं। इसलिए यह बात याद रखिए कि हम जिस देश के रहनेवाले हैं, उस देश को अफ़ग़ानिस्तान कहते हैं। यहां का प्रत्येक व्यक्ति अपने-आप को अफ़ग़ान कहे।

मैं आपसे एक बात और कहता हूं और वह यह है कि संसार की जातियां तो आगे बढ़ रही हैं, परन्तु हम नीचे गढ़े में गिर रहे हैं। संसार की जातियां आकाश पर जा पहुंची हैं और हम भूमि पर आ गए हैं। आखिर इसका क्या कारण है? ऐसा क्यों है? क्या हम एक जाति नहीं हैं? प्रत्येक सबल और अच्छी जाति हैं। ख़ुदा ने हमें एक अत्यन्त सुन्दर देश दिया है, जो ऐश्वर्य से भरपूर है। फिर हम संसार की जातियों से पीछे क्यों हैं? इसका कारण मैं आप लोगों को बताता हूं। हमें महान रसूल ने उपदेश दिया था, "ऐ मुसलमानो! यदि तुमको दुनिया से ज़्यादा प्यार होने लगा, तो इसका परिणाम यह होगा कि तुम्हारी यह दुनिया बरबाद हो जाएगी और परलोक में भी अपमानित और तिरस्कृत हो जाओगे।" ये बातें मैं आपको अपनी ओर से नहीं कह रहा हूं। चौदह सौ वर्ष हो गए हैं, ये बातें आपसे रसूलिल्लाह ने कही थीं। जब आपने इसे भुला दिया, तो अब देखिए कि इस संसार में हमसे अधिक कोई प्रतिष्ठाहीन और अनादृत नहीं है। इस रमणीक देश में तो अब मक्की की रोटी भी नहीं है कि हम पेट भरकर खा सकें। आप एक बार इस्लाम के इतिहास को देखिए, उस समय के इतिहास को जब हज़रत उमर इस संसार से सिधार गए थे। आप इस बात को भी सोचिए-समझिए कि वे मुसलमान, जिन्हें अल्लाह के रसूल ने शिक्षा दी थी, इस शिक्षा को भूल गए। वह कौन-सी चीज़ है, जिसने रसूल-मुबारक की शिक्षा भी विस्मृत करा दी है? वह चीज़ है—पैसे का लालच, पैसे से प्यार और सत्ता की भूख!

ये दो चीज़ें हैं जो जिस क़ौम और देश में पैदा हो जाती हैं, वह क़ौम और देश संसार में उन्नत नहीं हो सकते। हम जो आज तबाह व बरबाद हैं, तो इन्हीं चीज़ों के हाथों। आप ज़रा मुसलमानों के इतिहास को देखिए। धन से प्यार और सत्ता के शौक़ का परिणाम क्या निकला? साफ़ ज़ाहिर है कि मुसलमानों में दलबन्दी पैदा हो गई। मुसलमानों में और उनके सम्प्रदाय में विघटन पैदा हो गया और इसका परिणाम युद्ध-विग्रह के भयानक रूप में निकला। वे मुसलमान, जिन्हें अल्लाह के महान रसूल ने प्रेम-प्रीति की शिक्षा दी थी, गृहयुद्ध में उलझ गए।

हज़ारों की संख्या में मुसलमान परस्पर लड़कर क़त्ल हो गए। दौलत से प्यार और सत्ता के लिए स्पर्द्धा ने उन्हें ख़ुदा और महान रसूल की शिक्षा से विमुख कर दिया। मैं आज भी देखता हूं कि मुसलमानों ने अभी अपने धर्म को पुन: तलाश नहीं किया है।

एक समय था, जब सारे संसार में अंधेरा छाया हुआ था और मदीना में लोकतन्त्र का एक नन्हा-सा दीप जल रहा था। मैं यह मानता हूं कि वह लोकतन्त्र केवल मदीना के नगर तक ही सीमित था, लेकिन संसार-भर में अंधकार था और मदीना में आलोक था। लेकिन अल्लाह के महान रसूल की शिक्षा से विमुखता और धर्म को पुन: तलाश न करने का परिणाम यह निकला कि लोकतन्त्र का वह नन्हा-सा दीप भी बुझ गया और उसे अभी तक मुसलमानों ने नहीं जलाया—वह लोकतन्त्र उन्होंने फिर प्राप्त नहीं किया। आप ज़रा पाकिस्तान को देखिए और ज़रा हम पख्तूनों को भी देखिए। उन बलूचों को भी देखिए। सिन्धियों, बंगालियों और पंजाबियों को भी देखिए कि हम लोगों को उस फिरंगी ने जो नाममात्र का लोकतन्त्र दिया था, वह भी हमारे भाई अय्यूब खां ने हमसे छीन लिया और हमें उसके बदले में क्या दिया? उसने भी एक 'लोकतन्त्र' दिया, जिसे लोग निराधार लोकतन्त्र नाम से पुकारते हैं। ये लोग अभी तक इस बात को भी नहीं समझ सके। इस्लाम को नहीं पहचान पाए। लोकतन्त्र को नहीं जान सके। इसलिए मैं आपको कहता हूं कि यह हमारी नासमझी और सत्ता की भूख का परिणाम है। आप इसपर ख़ूब विचार करें, मैं संसार के अधिक उदाहरण प्रस्तुत नहीं करना चाहता। केवल भारत की मिसाल पेश करता हूं। भारत को देखिए!

बर्मा में भी एक जरनैल पैदा हुआ। उसका नाम जनरल नेविन है। वह 'काफ़िर' है और पाकिस्तान में एक जरनैल उठा, जिसका नाम अय्यूब खां है। वह कहता है: "मैंने भी इन्क़लाब पैदा कर दिया है।" अब आप इन दोनों के इन्क़लाब पर विचार कीजिए। इन्क़लाब तो परिवर्तन को कहते हैं, आगे ले जाने को कहते हैं। पीछे हटने को तो कोई इन्क़लाब नहीं कह सकता। ज़रा अय्यूब खां के इन्क़लाब और उस काफ़िर के इन्क़लाब को देखिए। नेविन ने लोगों को लोकतन्त्र दे दिया और इधर हमारे इन्क़लाब को भी देखिए!—मुसलमानों और अय्यूब खां के इन्क़लाब को देखिए। मैंने तो आपसे कई बार कहा है कि अय्यूब खां हमारा भाई है। आप विचार करें, जो लोकतन्त्र हमें फिरंगी ने दिया था, हमारे भाई अय्यूब खां ने वह भी हमसे छीन लिया

है। मैं आपसे यहां तक कहता हूं कि केवल लोकतन्त्र ही नहीं, हमारी अर्थनीति या आर्थिक स्थिति को देखिए, हमारी भाषा को देखिए, हमारी सभ्यता को देखिए, हमारे रहन-सहन, व्यापार-वाणिज्य और नागरिकता को देखिए—हमसे सब कुछ छीन लिया गया है और इस प्रकार इन सब चीज़ों को देखते हुए ज़रा हमारे मदरसों और विद्यालयों को भी देखिए और हमारे बच्चों के शिक्षण और प्रशिक्षण को देखिए और फिर उनके आचरण को भी देखिए। मैं तो इन लोगों पर आश्चर्यचकित होता हूं जो चिल्ला-चिल्लाकर कहते नहीं थकते कि "हमने बड़ी उन्नति की है। पाकिस्तान उन्नति की मंज़िलें तय कर रहा है।" वास्तव में हमारे साथ वह मज़ाक़ हुआ है, जिसके सिलसिले में मैं आपको एक कहानी सुनाता हूं। कहते हैं एक महिला ने अपने पति से कहा—'प्यारे! मुझे नाक के लिए नथ बनवा दो।' कहकर उसने पति को दृढ़ता से पकड़ लिया। पति ने उससे कहा, कि 'मैं तो तुम्हारी नाक काटने की चिन्ता में हूं!'

आप पाकिस्तान को देखिए और फिर अपने पख़्तून भाइयों को देखिए। वह (पाकिस्तान) तो हमारी नाक काटने की चिन्ता में है और आप हैं कि उससे नाक के लिए नथ बनवा देने के लिए कह रहे हैं। दूसरी बात जो मैं आपसे कहना चाहता हूं वह अय्यूब खां की पुस्तक के बारे में है। अय्यूब खां ने एक पुस्तक लिखी है। उस पुस्तक में अफ़ग़ानिस्तान के विषय में बहुत बातें कही हैं। उनका उत्तर सदरे आज़म साहब (अफ़ग़ानिस्तान के प्रधान मन्त्री) ने दे दिया है। मैं आपसे उस पुस्तक के बारे में यह बात कहना चाहता हूं कि जिसका सम्बन्ध हम पख़्तूनों से है। अय्यूब खां ने उस पुस्तक में लिखा है कि पख़्तूनिस्तान में जनमत संग्रह (रेफरेण्डम) हुआ है और पख़्तूनों ने अपना मत पाकिस्तान के पक्ष में दिया है। यह बात सर्वथा ग़लत और झूठ है! संसार को मालूम है कि हम पख़्तूनों ने जनमत संग्रह में भाग नहीं लिया था और मैं इस बात को नहीं समझ सकता कि ये पुरानी बातें हैं, इनपर अब कुछ लिखने की आवश्यकता ही क्या है। हम तो कहते हैं—'गुज़श्ता रा, सलवात् (गुज़री बातों को जाने दो)—और यदि तुम अपनी हठ पर अड़े हो, तो मैं तुम्हें कहूंगा कि आओ, जनमत संग्रह करा लो और पख़्तूनों की राय ले लो। हम इस बात के लिए तैयार हैं कि पख़्तूनों की राय मालूम कर लें।

हमारे कुछ स्वार्थी, मतलबपरस्त और धन के भूखे भाई ऐसे भी हैं, जो प्रचार करते हैं, "पाकिस्तान भी तो मुसलमान है। आप उससे

क्या मांगते हैं ?"

मैं कहता हूं—यह किसने कहा है कि पाकिस्तान मुसलमान नहीं है। हम तो कहते हैं कि पाकिस्तान मुसलमान है और हमारा भाई है। लेकिन ऐ भाइयो ज़रा यह तो समझने का प्रयत्न कीजिए कि हम उससे क्या मांगते हैं ? हम तो केवल यह कहते हैं कि पाकिस्तान मुसलमान है, हम भी मुसलमान हैं। इस्लाम में ग़ुलामी नहीं है, भाईचारा है, प्रेम और प्रीति है। हम डंके की चोट से कहते हैं कि "ऐ पाकिस्तानियो ! हम पश्तून मुसलमान हैं और तुम भी मुसलमान हो—इस्लाम में भाईचारा है। तुम हमें अपना भाई बना लो। लेकिन वे चाहते हैं कि हम उनके ग़ुलाम बने रहें !

भाइयो ! जब पाकिस्तान में मार्शल ला था, तो आपको याद होगा कि उस समय रूस के प्रधान मन्त्री ख्रुश्चोव आए थे। उन्होंने पश्तूनी में भाषण किया था और उस भाषण के कारण पाकिस्तान के लोगों में एक भूकम्प आ गया था। सदर साहब मुहम्मद अय्यूब खां ने मुझे बुलाया था। मैं जब उनके पास गया, तो पूछा—"कुशल तो है ? मुझे किसलिए बुलाया है ?"

अय्यूब खां ने उत्तर दिया, "मालूम नहीं ?"

मैंने पूछा, "क्या बात है ?"

उन्होंने कहा, "ख्रुश्चोव के भाषण का खण्डन करो।"

मैं हंस पड़ा और बोला, " पख़्तूनों को उनका अधिकार दे दीजिए, मैं उसका खण्डन कर दूंगा और जब आप पश्तूनों को उनका अधिकार नहीं देते, तो मैं क्योंकर उसका खण्डन करूं ?"

मेरे पास पाकिस्तान का परराष्ट्र मन्त्री मंज़ूर क़ादिर भी आया था। उससे साढ़े चार घंटे तक बातचीत होती रही। पहले तो लोकतन्त्र पर बातचीत चली। उसने कहा, "यहां (पाकिस्तान में) चूंकि लोकतन्त्र असफल हो गया है, इसलिए हमने इन लोगों से वापस ले लिया है।"

मैंने उससे कहा, "लोकतन्त्र था ही कहां, जो आपने वापस ले लिया है ? पाकिस्तान में लोकतन्त्र था ही कहां जो असफल हो गया...... हिन्दुस्तान में तो तीन-चार चुनाव हो चुके हैं और यहां पाकिस्तान में किसने चुनाव किया है ? और किसने इन लोगों से पूछा है ?"

मैंने अय्यूब खां से भी यह कहा, "हम पाकिस्तान में पांच भाई हैं, एक पंजाबी है, एक बंगाली है, एक सिंधी है, एक बलूच है और एक पश्तून है। हम यह चाहते हैं कि हमारे ये पृथक्-पृथक् घर हैं। इन घरों

में उन्हींका अधिकार है जिनके ये घर हैं। पंजाबी का जो घर है, उस-पर अधिकार पंजाबी का हो, सिन्ध के घर पर अधिकार का सूत्र सिन्धी के हाथ में हो। बलूच के घर पर बलूच को प्रभुत्व प्राप्त हो। बंगाली अपने घर का शासक और मालिक हो। पख्तूनों के घर की बागडोर पख्तूनों के हाथ में होनी चाहिए।"

उन्होंने उत्तर दिया, "इन्हें अलग-अलग घर मत कहो।"

मैंने पूछा, "फिर क्या कहूं?"

उन्होंने उत्तर दिया, "यही कहो कि हम सबका एक घर है।"

मैंने कहा, "निःसंदेह हमारा एक घर है, लेकिन आपसे पूछना चाहता हूं कि इस घर में मुझे भी कोई कमरा देंगे या नहीं?"

उन्होंने कहा, "हां, कमरा दूंगा।"

मैंने कहा, "मुझे स्वीकार है। लेकिन मेरे कमरे पर मेरा अधिकार होगा या आपका? मैं मानता हूं कि मेरा और आपका साथ साझे का है। हम आपके भाई हैं। हम सबका एक ही घर है, लेकिन घर में मेरा जो कमरा है, उसपर अधिकार या प्रभुत्व तो मेरा होगा न कि आपका···"

भाइयो! मैं आपसे अब स्पष्ट शब्दों में कहता हूं कि हम पाकि-स्तान से क्या मांगते हैं? हम केवल यह चाहते हैं कि हम और वह दोनों भाई-भाई हैं, दोनों मुसलमान हैं। और, पाकिस्तान तो उन्हें दिलवाया भी पश्तूनों ने ही है। यदि पश्तूनों ने इस देश के लिए और इस देश की स्वाधीनता के लिए युद्ध न किया होता और फिरंगी को इश देश से निकाला न होता, तो पाकिस्तान कहां होता? पाकिस्तान तो पख्तूनों के खून से बना है। लेकिन खेद की बात है कि जब अंग्रेज़ जाने लगा, तो वह हमसे अत्यन्त क्रुद्ध था। वह कहता था, "दस करोड़ मुसलमान थे, मेरे विरुद्ध किसीने कमर नहीं कसी थी, लेकिन पख्तूनों ने कमर बांधकर मेरा मुक़ाबला किया।" अंग्रेज़ ने जाते हुए हमारे देश में आग लगा दी। लेकिन किसके हाथों से? हमारे अपने भाइयों के हाथों से, जिनके लिए हमने पाकिस्तान प्राप्त किया था और उन्हें फिरंगियों की ग़ुलामी से मुक्ति दिलाई थी। खेद है कि जिसने देश को स्वतन्त्र कराया और असीम बलिदान किए, जेलों को अपना घर बनाया, तबाह और बर-बाद हुआ, पख्तूनों को दासता से मुक्त कराया, वह अब हिन्दू कहलाता है! और मुसलमान कौन है?—वही जो अंग्रेज़ के उच्छिष्टभोक्ता (थालीचट) हैं, जिन्होंने देश और जाति को अंग्रेज़ का ग़ुलाम बनाया था।

मैं इसीलिए बार-बार कहता हूं कि हम भाईचारा चाहते हैं। हम पाकिस्तान के पांच भाई हैं—पंजाबी, पश्तून, बंगाली, सिन्धी और बलूच। इन चारों भाइयों के नाम तो अलग-अलग हैं, लेकिन हमारा कोई नाम नहीं है। हम भी एक नाम चाहते हैं।

लियाक़त अली ने पार्लियामेंट में मुझसे पश्तूनस्तिान के बारे में पूछा था, तो मैंने उसे भी यही बात कही थी कि "भाई! हम यहां पांच भाई हैं, प्रत्येक भाई का अपना नाम है। यदि पंजाब का नाम ले लो, तो लोग समझते हैं कि यह पंजाबी है। यदि बंगाल का नाम ले लो तो मालूम हो जाता कि यह बंगाली है। यदि सिन्ध का नाम आए तो पता लग जाता है कि यह सिन्धी है। बलूचिस्तान का नाम लो तो मालूम हो जाता है कि यह बलूची है। हम सीमा प्रान्त के हैं और क़बाइली हैं, लेकिन हमारा कोई नाम नहीं। हमारा भी एक नाम रख दो।" आप लोग देख लीजिए कि वे हमें एक नाम देना भी सहन नहीं कर सकते और फिर भी रट लगाई जाती है कि पाकिस्तान मुसलमान है—इस्लाम है।

हमने पाकिस्तान के साथ कभी लड़ाई नहीं की, हम तो जंग के घोर विरोधी हैं। हम जंगबाज़ नहीं हैं। हमें जंग पसन्द नहीं है। भाइयो, यह बात अच्छी तरह मन में धारण कर लो कि एक व्यक्ति आपको अपना भाई भी नहीं बनाता। वह आपके यथार्थ नाम से पुकारना भी सहन नहीं करता और आप उसके लिए प्रचार करते हैं। मैं आप और पाकिस्तान के नेताओं से यह बात कहता हूं कि हमारे जो भाई बलूचिस्तान में रहते हैं, आप उनकी दुर्दशा को देखिए। उन लोगों ने निरन्तर २० वर्ष से पुकार की है कि हम मुसलमान हैं, हम तुम्हारे भाई हैं, हमें हमारा अधिकार दे दो। जब उनका उचित अधिकार भी न दिया गया, तो उसका परिणाम क्या हुआ? वे लोग विवश हो गए और बन्दूक संभाल ली। आपको मालूम होगा कि उन बेचारों पर कितने अत्याचार ढाए गए—कितने ज़ुल्म किए गए। अब जबकि पाकिस्तान को मालूम हो गया है कि यह समस्या ज़ोर-ज़ुल्म से हल नहीं हो सकती, तो अब उनसे कहा जाता है कि आओ आपस में मिलकर फ़ैसला कर लें। मैं जब पाकिस्तान की अवस्था पर दृष्टि डालता हूं, तो मालूम होता है कि उसके दिल में न बलूचों के लिए स्थान है, न सिंधी के लिए और न ही पख़्तून या बंगाली के लिए। इसलिए मैं अपने उस बलच भाई को भी सावधान कर देना चाहता हूं जिस प्रकार वह आक्रांत हैं—अत्याचार का शिकार हैं, उसी प्रकार सिन्धी भी आक्रान्त

हैं और जिस प्रकार सिन्धी आक्रान्त व पीड़ित हैं, उसी प्रकार पश्तून भी अत्याचार का शिकार हैं। और हम तीनों आक्रान्तों का उद्देश्य और लक्ष्य एक है।

याद रखिए, उन (पाकिस्तानी शासकों) पर विश्वास न कर बैठिए। उनकी अब यह कोशिश है कि इस तरह हमें अपने घर में पृथक्-पृथक् कर दें, हमें दुर्बल बना दें। यह बात मैं अपने बलूच भाइयों के पास भी पहुंचाना चाहता हूं। पाकिस्तान की नीयत का पता तो इस बात से लगता है कि अब पंजाब के नेता इकट्ठे हो गए हैं और उन्होंने अपनी सभा में विचार-विमर्श कर लिया है और कह दिया है कि पश्तूनों को देखो, उनके पास तो बड़ी दौलत है। उनके पास बिजली है। फिर कहा कि उन सिन्धियों को देखो, उनके पास बड़ी-बड़ी भूमियां हैं। बलूचों के विषय में कहा कि उनके पास सुप्त गैस के भण्डार हैं और उनका देश खनिज पदार्थों की दौलत से भरपूर है। भाइयो! ये सब लूट-खसोट की चालें हैं। वे पश्तूनों की बिजली, सिन्धियों की उपजाऊ भूमियां, बलूचों के ख़निज पदार्थ—सबको अपनी सम्पत्ति बनाना चाहते हैं। इसके साथ ही उन्होंने एक यूनिट का सुझाव भी रखा है। अब सोच लीजिए कि एक यूनिट इस्लाम के सिद्धान्त या मान्यता के अनुकूल है? क्या इस्लाम ने यह कहा है कि एक भाई के पास जो बिजली है, उससे छीन लो। यदि दूसरे भाई के पास खनिज पदार्थ है, तो वे उससे हथिया लो, और यदि किसी भाई के पास उपजाऊ भूमियां हैं, तो भी अपने कब्ज़े में ले लो?

मैं इन भोले नासमझ पख़्तूनों को देखता हूं कि इनसे किसीने कह दिया कि यह इस्लामी देश है और यह इस्लाम है, तो यह समझने का प्रयत्न नहीं करते कि यह इस्लाम है भी या नहीं। मैंने तो यह बात कई बार पाकिस्तान से कही है कि हमारा मामला भाईचारे और आपस के समझौते से शान्तिपूर्वक हल कर दो, हम शान्तिपूर्वक फ़ैसला चाहते हैं। यदि सुलह-सफ़ाई, समझौते और भाईचारे से इस बात का समाधान नहीं होता, तो मैं इन पख़्तूनों से कहता हूं कि मैं तो अहिंसा पर विश्वास रखता हूं, मैं तो हिंसा को पख़्तूनों और सारे संसार के लिए ध्वंस व विनाश का कारण समझता हूं। अहिंसा प्रेम है और हिंसा घृणा।...मेरी तो प्रत्येक समय यही चेष्टा रहेगी कि हर बात शांतिपूर्वक हो। मैं पाकिस्तान से कहता हूं कि यदि उसने इस बात का समाधान या फ़ैसला शान्तिमय तरीक़े और भाईचारे से कर दिया, तो अच्छा होगा। मैं इस समस्या का फ़ैसला शान्ति से चाहता हूं। क्योंकि

जब मैं पश्तूनों को देखता हूं तो दिन-प्रतिदिन उनके विचारों में परि-वर्तन अनुभव करता हूं। मैं कहता हूं कि कहीं वह दिन न आ जाए कि पश्तून बन्दूक थाम ले।...

पाकिस्तान यह भी समझ ले कि पहले तो यह बात केवल मर्दों तक ही सीमित थी, अब हमारी महिलाओं ने भी हमारे कंधे से कंधा मिला कमर कस ली है। मुझे यहां एक लड़की ने कहा है, "क: द ज़लमो न पूरा न श्वा फ़ख्रि अफ़ग़ाना; जिनाकै व दे गटिना।" अर्थात् —यदि युवा पुरुष सफल न हुए, तो ऐ फ़ख्र-ए-अफ़ग़ान हम लड़कियां अपने देश को विजय करेंगी।"

हाथ कंगन को आरसी क्या! तुम नौजवानों ने सफलता प्राप्त नहीं की, तो ये लड़कियां मैदान में उतर आई हैं। इसलिए मैं पाकि-स्तान से कहता हूं कि पश्तूनों को विवश न करें। कहीं ये भी बलूचों की भांति बन्दूक न थाम लें। मैं उसे कहता हूं कि उसने पश्तूनों को विवश कर दिया, तो इस समस्या की रूपरेखा ही बदल जाएगी और इसका समस्त उत्तरदायित्व पाकिस्तान पर होगा। भाइयो! यहां भी मेरे विषय में यह प्रचार होता है और वहां पश्तूनिस्तान में भी पाकि-स्तान यह प्रचार करता है कि, "देखो, बाचाख़ान हिन्दुस्तान जा रहा है।" यहां आपको यह बात बता दूं कि जब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में युद्ध आरम्भ हुआ था, उस समय समाचारपत्रों में यह प्रचार बड़े ज़ोर-शोर से हो रहा था—भारत और पाकिस्तान—दोनों देशों के समाचारपत्र यह प्रचार कर रहे थे। मैं यह कहूंगा कि इसमें तनिक भी सचाई नहीं थी। मेरे पास पाकिस्तानी दूतावास के कुछ लोग आए और उन्होंने मुझसे कहा, 'बाचाख़ान! हमने सुना है कि आप हिन्दु-स्तान जा रहे हैं?"

मैंने उन्हें कहा, "मैं तो यहां बैठा हूं। देख लो हिन्दुस्तान या और कहीं नहीं गया। मुझे किसीने बांधकर तो नहीं रखा है। मैं न हिन्दुस्तान गया हूं और न ही जाना चाहता हूं, मैं तो आपकी प्रतीक्षा में बैठा हूं कि तुम मेरा अधिकार दे दो। तुम्हारी ओर देख रहा हूं। यदि तुम मुझे हिन्दुस्तान भेजना चाहते हो, तो तुम ही भेजनेवाले हो। मैं तो भारत नहीं जा रहा—यदि मैं भारत चला भी गया, तो तुम्हारे ही भेजने से जाऊंगा, क्योंकि तुम मुझे मेरा अधिकार नहीं देते। मैं तो पख़्तूनों के लिए भिक्षा-पात्र अपने हाथों में ले लूंगा और संसार में जितनी जातियां हैं, उन सबके दरवाज़ों पर अलख जगाऊंगा कि पख़्तूनों के भिक्षा-पात्र में भिक्षा डाल दें।

"तुम जो कहते हो कि भारत मत जाओ, तो तुम मेरा हक़ मुझे दे दो। मैं किसी दूसरे से तो अपना अधिकार नहीं मांगता। तुम जब मेरा अधिकार नहीं दोगे, तो तुम्हारे सामने कब तक पड़ा रहूंगा और कब तक तुम्हारी ओर ही देखता रहूंगा? तुम इस बात को समझने का प्रयत्न करो कि ये जो लोग इस प्रकार का मिथ्या प्रचार करते हैं, इन्हें पहचान लो, वे तुम्हारे मित्र नहीं। वे जाति के हितैषी नहीं।"

उपस्थित भाइयो! आपको याद होगा कि पिछले वर्ष इसी अवसर पर मैंने आपके सामने एक भाषण किया था और आपका अभिमत मालूम किया था। आप मेरी जाति हैं, मेरे भाई हैं, मेरे प्रिय हैं। मैंने आपसे कहा था कि आप नहीं देखते, लेकिन मैं देख रहा हूं, कि हम पख़्तून एक प्रवाह में डूबे जा रहे हैं। प्रवाह के किनारे मुसलमान खड़ा हुआ है। मैं उसे कहता हूं, "ऐ मेरे मुसलमान भाई! मुझे अपना हाथ दे दो।"

वह कहता है, "नहीं, मैं तुम्हें हाथ नहीं दूंगा।"

आगे एक हिन्दू खड़ा है। मैं उससे कहता हूं, "ऐ हिन्दू! तुम मुझे हाथ दे दो।"

वह कहता है, "लो पकड़ लो।"

मैंने आपसे पूछा था कि क्या हिन्दू का हाथ पकड़ लूं या न पकड़ूं? भाइयो! मैं आज फिर आपसे पूछता हूं, क्योंकि आप कहते कि मुसल-मान तो मेरा भाई है। अय्यूब ख़ां भी मेरा भाई है और पख़्तून भी है, वह मेरा हाथ पकड़ता है या नहीं पकड़ता। और जब वह मुझे अपना हाथ नहीं देता, तो मैंने आपसे कह दिया है कि मैं निकल पड़ूंगा—सारे संसार में जाऊंगा। जो भी मेरा हाथ थामेगा, मैं उसके हाथ में अपना हाथ दे दूंगा, चाहे वह लाल काफ़िर ही क्यों न हो। यह बात फिर लोगों से कहता हूं और दोबारा आपसे पूछता हूं कि हम तो प्रवाह में बहे जा रहे हैं। यदि मुसलमान हाथ नहीं बढ़ाता और एक काफ़िर हाथ बढ़ाता है, तो बताइए कि मैं उसके हाथ में हाथ दूं या न दूं? एक बात भी मेरी सुन लीजिए कि मैं यदि बेघर, बरबाद, बेबस, असहाय और परेशान फिरूंगा, तो ऐ नादान भाइयो! आप ही के लिए फिरूंगा। अतः मेरी बात पर विचार कीजिए और मुझे वचन दीजिए कि फिर कोई आपको इस्लाम के नाम पर धोखा नहीं दे सकेगा। मैं फिर कहता हूं कि पहले तो मुसलमान भाई से कहूंगा कि हाथ बढ़ा दो। यदि उसने हाथ बढ़ा दिया, तो फिर आपको दूसरे लोगों के पीछे घूमने की आवश्यकता नहीं रहेगी और यदि वह हाथ नहीं बढ़एगा, तो हम यूं ही थोड़े बैठे रहेंगे। हम तो आगे बढ़ेंगे। मैंने आपसे कह दिया है कि यदि लाल काफ़िर

भी हमें हाथ देगा, तो हम उसका हाथ थाम लेंगे।···और ऐसा पख्तून के लिए करेंगे, ताकि वह पख्तून को नदी में डूब जाने से बचा ले। हम भी उसके हाथ में अपना हाथ दे देंगे। यह मैं इसलिए आपसे कहता हूँ कि फिर कोई आपको इस्लाम के नाम पर धोखा न दे सके, जैसाकि सारी उम्र आपको धोखा दिया गया है। यही बात मैं आज रूस और अमरीका से भी कहता हूं कि यदि तुम वास्तव में इस देश में शान्ति चाहते हो, तो यह जो आग लगनेवाली है, इससे पहले कि वह भड़क उठे, तुम इस समस्या का समाधान कर दो—इस बात का फ़ैसला कर दो।

भाइयो और बहनो! मैं आपके इस प्रेम-प्यार के लिए आपका हार्दिक धन्यवाद करता हूं कि आपने मेरी बातें मनोयोग, श्रद्धा और शौक़ से सुनीं और अब मैं आप लोगों से विदा होता हूं।

(३१ अगस्त, १९६७)

○ ○ ○

मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-६

आत्मकथा

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां

महात्मा गांधी के प्रिय शिष्य और साथी खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां को राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के एक प्रमुख नेता के रूप में भारत-वासियों के हृदय में आदर और श्रद्धा का स्थान प्राप्त है। इन्होंने अन्याय और परतंत्रता के विरुद्ध जीवन-भर संघर्ष किया है और इस ढलती उम्र में भी पाकिस्तान की जेलों में पन्द्रह वर्ष अत्याचार सहन किया है। बादशाह खान की यह आत्मकथा संसार की किसी भी भाषा में पहली बार प्रकाशित हो रही है।

श्री कुवरभानु नारंग (बायें) और श्री रामसरन नगीना (दायें) जिनके माध्यम से बादशाह खान ने अपनी आत्मकथा प्रस्तुत की।
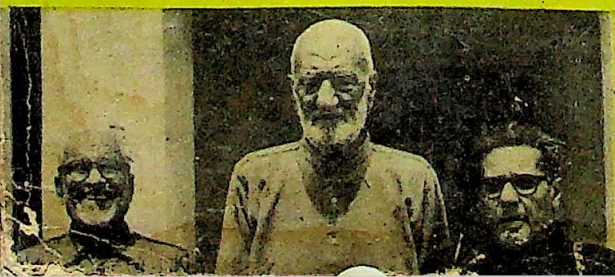
भारत की सर्वप्रथम
पॉकेट बुक्स
हिन्द पॉकेट बुक्स